आधुनिक गद्य (उपन्यास एवं कहानी)

शिल्प और प्रयोग

**(Modern Prose (Novel and Story):
Craft and Experiment)**

कुनाल आहुजा

आधुनिक गद्य (उपन्यास एवं कहानी) : शिल्प और प्रयोग

आधुनिक गद्य (उपन्यास एवं कहानी) : शिल्प और प्रयोग

(Modern Prose (Novel and Story): Craft and Experiment)

कुनाल आहुजा

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5569-4

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

सामाजिक जीवन की विशद् व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरूप अर्जित व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ जुड़ी हुई है। इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जिसे अब तक समाज की इकाई के रूप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतिष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्त्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही थी। पात्र या तो पूर्णतया भले होते थे या एकदम गए गुजरे। अच्छाइयों और त्रुटियों का सम्मिश्रण, जैसा वास्तविक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलता है, उस समय के कथाकारों की कल्पना के परे की बात थी। उपन्यास में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद् एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिली।

कहानी हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ, जिसे कहानी के नाम से जाना गया। बंगला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अंग्रेजी से हिंदी तक की यात्रा बंगला के माध्यम से की। कहानी गद्य कथा साहित्य का एक अन्यतम भेद तथा उपन्यास

से भी अधिक लोकप्रिय साहित्य का रूप है। मनुष्य के जन्म के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वाभाव बन गया। इसी कारण प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**उपन्यास**	**1**
	उपन्यासिका	3
	हिंदी साहित्य में उपन्यास	3
	प्रथम उपन्यास	3
	भारतीय भाषाओं में उपन्यास	3
	कहानी के तत्त्व	6
2.	**हिन्दी उपन्यास**	**10**
	हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास	12
	हिंदी उपन्यास की शुरुआत और 'परीक्षागुरु'	14
3.	**हिन्दी उपन्यास का इतिहास**	**21**
	भारतेन्दु युग	21
	द्विवेदी युग	22
	प्रेमचन्द युग	24
	प्रेमचन्दोत्तर युग	28
4.	**भारतेन्दु युग**	**35**
	भारतेन्दु मण्डल	36
	भारतेन्दुयुगीन कविता की मुख्य विशेषताएँ	36

भारतेन्दुकालीन कथा 40
5. प्रसाद-युगीन 42
कंकाल 49
6. प्रेमचंद युग 115
गोदान 118
आहुति 126
कश्मीरी सेब 136
दुनिया का सबसे अनमोल रत्न 138
प्रेम की होली 146
रक्षा में हत्या 150
सांसारिक प्रेम और देश प्रेम 157
7. प्रेमचन्दोत्तर युग 167

1

उपन्यास

अर्नेस्ट ए. बेकर ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसे गद्यबद्ध कथानक के माध्यम द्वारा जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बताया है। यों तो विश्वसाहित्य का प्रारंभ ही संभवत–कहानियों से हुआ और वे महाकाव्यों के युग से आज तक के साहित्य का मेरुदंड रही हैं, फिर भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन कहना अधिक समीचीन होगा। साहित्य में गद्य का प्रयोग जीवन के यथार्थ चित्रण का द्योतक है। साधारण बोलचाल की भाषा द्वारा लेखक के लिए अपने पात्रों, उनकी समस्याओं तथा उनके जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना आसान हो गया है। जहाँ महाकाव्यों में कृत्रिमता तथा आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है, आधुनिक उपन्यासकार जीवन की विशृंखलताओं का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है।

यथार्थ के प्रति आग्रह का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि कथा साहित्य के अपौरुषेय तथा अलौकिक तत्त्व, जो प्राचीन महाकाव्यों के विशिष्ट अंग थे, पूर्णतया लुप्त हो गए। कथाकार की कल्पना अब सीमाबद्ध हो गई। यथार्थ की परिधि के बाहर जाकर मनचाही उड़ान लेना उसके लिए प्राय–असंभव हो गया। उपन्यास का आविर्भाव और विकास वैज्ञानिक प्रगति के साथ हुआ। एक ओर जहाँ विज्ञान ने व्यक्ति तथा समाज को सामान्य धरातल से देखने तथा चित्रित करने की प्रेरणा दी वहीं दूसरी ओर उसने जीवन की समस्याओं के प्रति एक

नए दृष्टिकोण का भी संकेत किया। यह दृष्टिकोण मुख्यत: बौद्धिक था। उपन्यासकार के ऊपर कुछ नए उत्तरदायित्व आ गए थे। अब उसकी साधना कला की समस्याओं तक ही सीमित न रहकर व्यापक सामाजिक जागरूकता की अपेक्षा रखती थी। वस्तुत: आधुनिक उपन्यास सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन का जितना व्यापक एवं सर्वांगीण चित्र उपन्यास में मिलता है, उतना साहित्य के अन्य किसी भी रूप में उपलब्ध नहीं।

सामाजिक जीवन की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरूप अर्जित व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ लगी हुई है। इतिहास के इस महत्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जो अब तक समाज की इकाई के रूप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतिष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्त्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही है। पात्र या तो पूर्णतया भले होते थे या एकदम गए गुजरे। अच्छाइयों और त्रुटियों का सम्मिश्रण, जैसा वास्तविक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलता है, उस समय के कथाकारों की कल्पना के परे की बात थी। उपन्यास में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिली।

अंग्रेजी के महान उपन्यासकार हेनरी फील्डिंग ने अपनी रचनाओं को गद्य के लिखे गए व्यंग्यात्मक महाकाव्य की संज्ञा दी। उन्होंने उपन्यास की इतिहास से तुलना करते हुए उसे अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण कहा। जहाँ इतिहास कुछ विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्वपूर्ण घटनाओं तक ही सीमित रहता है, उपन्यास में प्रदर्शित जीवन के सत्य, शाश्वत और संर्वदेशीय महत्व रखते हैं। साहित्य में आज उपन्यास का वस्तुत: वही स्थान है जो प्राचीन युग में महाकाव्यों का था। व्यापक सामाजिक चित्रण की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्य है। लेकिन जहाँ महाकाव्यों में जीवन तथा व्यक्तियों का आदर्शवादी चित्र मिलता है, उपन्यास, जैसा फील्डिंग की परिभाषा से स्पष्ट है, समाज की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार के लिए कहानी साधन मात्र है, साध्य नहीं। उसका ध्येय

पाठकों का मनोरंजन मात्र भी नहीं। वह सच्चे अर्थ में अपने युग का इतिहासकार है जो सत्य और कल्पना दोनों का सहारा लेकर व्यापक सामाजिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है।

उपन्यासिका

उपन्यास के समानांतर इधर उपन्यासिका नामक नवीन गद्य विधा का सूत्रपात हुआ है

हिंदी साहित्य में उपन्यास

हिंदी साहित्य में उपन्यास शब्द के प्रथम प्रयोग के संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि- 'हिन्दी में नॉवेल के अर्थ में उपन्यास पद का प्रथम प्रयोग 1875 ई. में हुआ।'

प्रथम उपन्यास

बाणभट्ट की कादम्बरी को विश्व का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है। कुछ लोग जापानी भाषा में 1007 ई. में लिखा गया "जेन्जी की कहानी" नामक उपन्यास को दुनिया का सबसे पहला उपन्यास मानते हैं। इसे मुरासाकी शिकिबु नामक एक महिला ने लिखा था। इसमें 54 अध्याय और करीब 1000 पृष्ठ हैं। इसमें प्रेम और विवेक की खोज में निकले एक राजकुमार की कहानी है।

यूरोप का प्रथम उपन्यास सेर्वैन्टिस का "डोन क्विक्सोट" माना जाता है जो स्पेनी भाषा का उपन्यास है। इसे 1605 में लिखा गया था।

अंग्रेजी का प्रथम उपन्यास होने के दावेदार कई हैं। बहुत से विद्वान 1678 में जोन बुन्यान द्वारा लिखे गए "द पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस" को पहला अंग्रेजी उपन्यास मानते हैं।

भारतीय भाषाओं में उपन्यास

जिसे बँगला और हिंदी में उपन्यास कहा जाता है गोपाल राय के अनुसार उसे 'उर्दू में 'नाविल', मराठी में 'कादम्बरी' तथा गुजराती में 'नवल कथा' की संज्ञा प्राप्त हुई है।'

हिन्दी का प्रथम उपन्यास

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार परीक्षा गुरु हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। इसके लेखकलाला श्रीनिवास दास हैं। 'देवरानी जेठानी की कहानी' (लेखक-पंडित गौरीदत्त- सन् 1870)। श्रद्धाराम फिल्लौरी के उपन्यास भाग्यवती को भी हिन्दी के प्रथम उपन्यास होने का श्रेय दिया जाता है।

मलयालम

इंदुलेखा-रचनाकाल, 1889, लेखक चंदु मेनोन

तमिल

प्रताप मुदलियार-रचनाकाल 1879, लेखक, मयूरम वेदनायगम पिल्लै

बंगाली

दुर्गेशनंदिनी-रचनाकाल, 1865, लेखक, बंकिम चंद्र चटर्जी

मराठी

यमुना पर्यटन-रचनाकाल, 1857, लेखक, बाबा पद्मजी।

इसे भारतीय भाषाओं में लिखा गया प्रथम उपन्यास माना जाता है।

इस तरह हम देख सकते हैं कि भारत की लगभग सभी भाषाओं में उपन्यास विधा का उद्भव लगभग एक ही समय दस-बीस वर्षों के अंतराल में हुआ।

कहानी

कहानी हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ जिसे कहानी के नाम से जाना गया। बंगला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अंग्रेजी से हिंदी तक की यात्रा बंगला के माध्यम से की। कहानी गद्य कथा साहित्य का एक अन्यतम भेद तथा उपन्यास से भी अधिक लोकप्रिय साहित्य का रूप है। मनुष्य के जन्म के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वाभाव बन गया। इसी कारण से प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है।

वेदों, उपनिषदों तथा ब्राह्मणों में वर्णित 'यम-यमी', 'पुरुरवा-उर्वशी', 'सौपर्णी-काद्रव', 'सनत्कुमार- नारद', 'गंगावतरण', 'श्रृंग', 'नहुष', 'ययाति', 'शकुन्तला', 'नल-दमयन्ती' जैसे आख्यान कहानी के ही प्राचीन रूप हैं।

प्राचीनकाल में सदियों तक प्रचलित वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, समुद्री यात्रा, अगम्य पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्त्व आदि की कथाएँ, जिनकी कथानक घटना प्रधान हुआ करती थीं, भी कहानी के ही रूप हैं। 'गुणढ्य' की 'वृहत्कथा' को, जिसमें 'उदयन', 'वासवदत्ता', समुद्री व्यापारियों, राजकुमार तथा राजकुमारियों के पराक्रम की घटना प्रधान कथाओं का बाहुल्य है, प्राचीनतम रचना कहा जा सकता है। वृहत्कथा का प्रभाव 'दण्डी' के 'दशकुमार चरित', 'बाणभट्ट' की 'कादम्बरी', 'सुबन्धु' की 'वासवदत्ता', 'धनपाल' की 'तिलकमंजरी', 'सोमदेव' के 'यशस्तिलक' तथा 'मालतीमाधव', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'रत्नावली', 'मृच्छकटिकम्' जैसे अन्य काव्यग्रंथों पर साफ-साफ परिलक्षित होता है। इसके पश्चात् छोटे आकार वाली 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'शुक सप्तति', 'कथा सरित्सागर', 'भोजप्रबन्ध' जैसी साहित्यिक एवं कलात्मक कहानियों का युग आया। इन कहानियों से श्रोताओं को मनोरंजन के साथ ही साथ नीति का उपदेश भी प्राप्त होता है। प्रायः कहानियों में असत्य पर सत्य की, अन्या, पर न्याय की और अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई हैं।

अमेरिका के कवि-आलोचक-कथाकार 'एडगर एलिन पो' के अनुसार कहानी की परिभाषा इस प्रकार है–'कहानी वह छोटी आख्यानात्मक रचना है, जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके, जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने के लिये लिखी गई हो, जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्त्वों के अतिरिक्त और कुछ न हो और जो अपने आप में पूर्ण हो।' हिंदी कहानी को सर्वश्रेष्ठ रूप देने वाले 'प्रेमचन्द' ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार से की है–'कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।' हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने तीन लेखों में कहानी के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं-'कहानी (गल्प) एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य

रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का संपूर्ण तथा बृहत रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।' कहानी की और भी परिभाषाएँ उद्धृत की जा सकती हैं। पर किसी भी साहित्यिक विधा को वैज्ञानिक परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता, क्योंकि साहित्य में विज्ञान की सुनिश्चितता नहीं होती। इसलिए उसकी जो भी परिभाषा दी जाएगी वह अधूरी होगी।

कहानी के तत्त्व

रोचकता, प्रभाव तथा वक्ता एवं श्रोता या कहानीकार एवं पाठक के बीच यथोचित सम्बद्धता बनाये रखने के लिये सभी प्रकार की कहानियों में निम्नलिखित तत्त्व महत्वपूर्ण माने गए हैं कथावस्तु, पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, देशकाल अथवा वातावरण, भाषा-शैली तथा उद्देश्य। कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। प्रत्येक कहानी के लिये कथावस्तु का होना अनिवार्य है क्योंकि इसके अभाव में कहानी की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कथानक के चार अंग माने जाते हैं-आरम्भ, आरोह, चरम स्थिति एवं अवरोह। कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है तथा पात्रों के गुण-दोष को उनका 'चरित्र चित्रण' कहा जाता है। चरित्र चित्रण से विभिन्न चरित्रों में स्वाभाविकता उत्पन्न की जाती है। संवाद कहानी का प्रमुख अंग होते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वंद्व एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिये देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग-अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। कहानी में केवल मनोरंजन ही नहीं होता, अपितु उसका एक निश्चित उद्देश्य भी होता है।

हिन्दी कहानी का इतिहास

1910 से 1960 के बीच हिन्दी कहानी का विकास जितनी गति के साथ हुआ उतनी गति किसी अन्य साहित्यिक विधा के विकास में नहीं देखी जाती।

सन 1900 से 1915 तक हिन्दी कहानी के विकास का पहला दौर था। मन की चंचलता (माधवप्रसाद मिश्र) 1907, गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी) 1902, पंडित और पंडितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी) 1903, ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल) 1903, दुलाईवाली (बंगमहिला) 1907, विद्या बहार (विद्यानाथ शर्मा) 1909, राखीबंद भाई (वृन्दावनलाल वर्मा) 1909, ग्राम (जयशंकर 'प्रसाद') 1911, सुखमय जीवन (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1911, रसिया बालम (जयशंकर प्रसाद) 1912, परदेसी (विश्वम्भरनाथ जिज्जा) 1912, कानों में कंगना (राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह) 1913, रक्षाबंधन (विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक') 1913, उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1915, आदि के प्रकाशन से सिद्ध होता है कि इस प्रारंभिक काल में हिन्दी कहानियों के विकास के सभी चिह्न मिल जाते हैं। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी का कथा-साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर मुड़ा और प्रसाद के आगमन से रोमांटिक यथार्थवाद की ओर। चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' में यह अपनी पूरी रंगीनी में मिलता है। सन 1922 में उग्र का हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रवेश हुआ। उग्र न तो प्रसाद की तरह रोमैंटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। वे केवल यथार्थवादी थे-प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया। 1927-1928 में जैनेन्द्र ने कहानी लिखना आरंभ किया।

उनके आगमन के साथ ही हिन्दी-कहानी का नया उत्थान शुरू हुआ। 1936 प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्त्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। यशपाल राष्ट्रीय संग्राम के एक सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे। अतः वह प्रभाव उनकी कहानियों में भी आया। अज्ञेय प्रयोगधर्मा कलाकार थे, उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की ओर मुड़ी, जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती है, उसके प्रथम पुरस्कर्ता अज्ञेय ही ठहरते हैं। अश्क प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। अश्क के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है। किन्तु इनका वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है कहानी नहीं। इसके बाद सन 1950 के आसपास से हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुजरने लगीं। आधुनिकता बोध की कहानियाँ या नई कहानी नाम दिया गया।

समालोचना

कहानी एक अत्यंत लोकप्रिय विधा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में, पाठकीय माँग के फलस्वरूप, कहानियों का छापा जाना अनिवार्य हो गया है। इस देश की प्रत्येक भाषा में केवल कहानियों की पत्रिकाएँ भी संख्या में कम नहीं हैं। रहस्य, रोमांस और साहस की कहानियों के अतिरिक्त उनमें जीवन को गंभीर रूप में लेने वाली कहानियाँ भी छपती हैं। साहित्यिक दृष्टि से इन्हीं का महत्व है। ये कहानियाँ चारित्रिक विशेषताओं, 'मूड', वातावरण, जटिल स्थितियों आदि के साथ सामाजिक-आर्थिक जीवन से भी संबंद्ध होती हैं। सामानयतः कहानी मीमांसा के लिए छः तत्त्वों का उल्लेख किया जाता है –

1. कथावस्तु
2. चरित्र-चित्रण
3. कथोपकथन
4. देशकाल
5. भाषाशैली और
6. उद्देश्य।

किंतु इन प्रतिमानो का प्रयोग नाटक और उपन्यासों के लिए भी होता है। ऐसी स्थिति में भ्रांति की सृष्टि हो सकती है। लेकिन इसका परिहार यह कह कर लिया जाता है कि कहानी की कथावस्तु इकहरी होती है। चरित्र के लिए किसी पहलू का चित्रण होता है। कथोपकथन अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म तथा मर्मस्पर्शी होता है। कहानी में एक देश और एक काल की जरूरत होती है। सन साठ के बाद की कहानियों का तेवर बदला हुआ है। इन कहानियों को साठोत्तरी कहानी कहा जाता है। इस दौर में कई कहानी आंदोलन चले, जिनमें अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी और सक्रिय कहानी आंदोलन प्रमुख थे। बाद में जनवादी कहानी आंदोलन में इनका समाहार हो जाता है। नब्बे के दशक की कहानी और 21 वीं सदी के पहले दशक की कहानी का अभी तक समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है, लेकिन उनमें वैश्वीकरण, सूचना तंत्र और बाजारवाद की अनुगूँज साफ सुनी जा सकती है। नब्बे का दशक दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के उभार का दशक भी था। इस दशक में स्त्री सशक्तिकरण, उसके अधिकारों की लड़ाई और अभिव्यक्ति

की छटपटाहट की अनुगूंज स्त्री रचनाकारों की कहानियों में बखूबी सुनाई देती है। इसी तरह दलित रचनाकारों ने भी अपनी स्वानुभूतियों के रंग से हिंदी कहानी को नया रंग और मोड़ दिया। आज के दौर में तकनीकी विकास को रेखांकित करती हुई और उससे उत्पन्न खतरों को व्याख्यायित करने वाली कहानियां भी खूब लिखी जा रही हैं।

2

हिन्दी उपन्यास

हिंदी उपन्यास का आरम्भ श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (1843 ई.) से माना जाता है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यास अधिकतर ऐयारी और तिलस्मी किस्म के थे। अनूदित उपन्यासों में पहला सामाजिक उपन्यास भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'पूर्णप्रकाश' और चंद्रप्रभा नामक मराठी उपन्यास का अनुवाद था। आरम्भ में हिंदी में कई उपन्यास बँगला, मराठी आदि से अनुवादित किए गए।

हिंदी में सामाजिक उपन्यासों का आधुनिक अर्थ में सूत्रपात प्रेमचंद (1880-1936) से हुआ। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में हिंदी की ओर मुड़े। आपके 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'निर्मला', 'गोदान', आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जिनमें ग्रामीण वातावरण का उत्तम चित्रण है। चरित्रचित्रण में प्रेमचंद गांधी जी के 'हृदयपरिवर्तन' के सिद्धांत को मानते थे। बाद में उनकी रुझान समाजवाद की ओर भी हुई, ऐसा जान पड़ता है। कुल मिलाकर उनके उपन्यास हिंदी में आधुनिक सामाजिक सुधारवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' और 'तितली' उपन्यासों में भिन्न प्रकार के समाजों का चित्रण है, परंतु शैली अधिक काव्यात्मक है। प्रेमचंद की ही शैली में, उनके अनुकरण से विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अनेक लेखकों ने सामाजिक उपन्यास लिखे, जिनमें एक प्रकार का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अधिक था। परंतु पांडेय

बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री आदि ने फ्रांसीसी ढंग का यथार्थवाद और प्रकृतवाद (नैचुरॉलिज्म) अपनाया और समाज की बुराइयों का दंभस्फोट किया। इस शैली के उपन्यासकारों में सबसे सफल रहे 'चित्रलेखा' के लेखक भगवतीचरण वर्मा, जिनके 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' बहुत प्रसिद्ध हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क की 'गिरती दीवारें' का भी इस समाज की बुराइयों के चित्रणवाली रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। अमृतलाल नागर की 'बूँद और समुद्र' इसी यथार्थवादी शैली में आगे बढ़कर आंचलिकता मिलाने वाला एक श्रेष्ठ उपन्यास है। सियारामशरण गुप्त की 'नारी' की अपनी अलग विशेषता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैनेंद्रकुमार से शुरू हुए। 'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी' आदि से भी अधिक आप के 'त्यागपत्र' ने हिंदी में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया। जैनेंद्र जी दार्शनिक शब्दावली में अधिक उलझ गए। मनोविश्लेषण में स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने 'शेखरः एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने अपने अजनबी' में उत्तरोत्तर गहराई और सूक्ष्मता उपन्यासकला में दिखाई। इस शैली में लिखने वाले बहुत कम मिलते हैं। सामाजिक विकृतियों पर इलाचंद्र जोशी के 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'जहाज का पंछी' आदि में अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस शैली के उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' और नरेश मेहता का 'वह पथबंधु था' उत्तम उपलब्धियाँ हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक बहुत मनोरंजक कथाप्रयोग है जिसमें प्राचीन काल के भारत को मूर्त किया गया है। वृंदावनलाल वर्मा के 'महारानी लक्ष्मी बाई', 'मृगनयनी' आदि में ऐतिहासिकता तो बहुत है, रोचकता भी है, परंतु काव्यमयता द्विवेदी जी जैसी नहीं है। राहुल सांकृत्यायन (1895-1963), रांगेय राघव (1922-1963) आदि ने भी कुछ संस्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास दिए हैं।

यथार्थवादी शैली सामाजिक यथार्थवाद की ओर मुड़ी और 'दिव्या' और 'झूठा सच' के लेखक भूतपूर्व क्रांतिकारी यशपाल और 'बलचनमा' के लेखक नागार्जुन इस धारा के उत्तम प्रतिनिधि हैं। कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में प्रचार का आग्रह बढ़ गया है। हिंदी की नवीनतम विधा आंचलिक उपन्यासों की है, जो शुरु होती है फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' से और उसमें अब कई लेखक हाथ आजमा रहे हैं, जैसे राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, शैलेश मटियानी, राजेंद्र अवस्थी, मनहर चौहान, शिवानी इत्यादि।

हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास

हिंदी के मौलिक कथासाहित्य का आरम्भ ईशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। भारतीय वातावरण में निर्मित इस कथा में लौकिक परंपरा के स्पष्ट तत्त्व दिखाई देते हैं। खाँ साहब के पश्चात् पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान' नामक उपन्यासों का निर्माण किया। इन उपन्यासों का विषय समाज सुधार है।

भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने राजनीतिज्ञ या समाज सुधारक के रूप में लिखा। बाबू देवकीनंदन सर्वप्रथम ऐसे उपन्यासलेखक थे जिन्होंने विशुद्ध उपन्यास लेखक के रूप में लिखा। उन्होंने कहानी कहने के लिए ही कहानी कही। वह अपने युग के घात प्रतिघात से प्रभावित थे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में खत्री जी ने जो परंपरा स्थापित की वह एकदम नई थी। प्रेमचंद ने भारतेंदु द्वारा स्थापित परंपरा में एक नई कड़ी जोड़ी। इसके विपरीत बाबू देवकीनंदन खत्री ने एक नई परंपरा स्थापित की। घटनाओं के आधार पर उन्होंने कहानियों की एक ऐसी शृंखला जोड़ी जो कहीं टूटती नजर नहीं आती। खत्री जी की कहानी कहने की क्षमता को हम इंशाकृत 'रानी केतकी की कहानी' के साथ सरलता पूर्वक संबद्ध कर सकते हैं।

वास्तव में कथा साहित्य के इतिहास में खत्री जी की 'चंद्रकांता' का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है। यह हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। खत्री जी के उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। मर्यादा आपके उपन्यासों का प्राण है।

उपन्यास साहित्य की विकासयात्रा में पं. किशोरीलाल गोस्वामी के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। यह उपन्यासों की दिशा में घर करके बैठ गए। आधुनिक जीवन की विषमताओं के चित्र आपके जासूसी उपन्यासों में पाए जाते हैं। गोस्वामी जी के उपन्यास साहित्य में वासना का झीना परदा प्रायः सभी कहीं पड़ा हुआ है।

जासूसी उपन्यासलेखकों में बाबू गोपालराम गहमरी का नाम महत्वपूर्ण है। गहमरी जी ने अपने उपन्यासों का निर्माण स्वयं अनुभव की हुई घटनाओं के आधार पर किया है, इसलिए कथावस्तु पर प्रामाणिकता की छाप है। कथावस्तु हत्या या लाश के पाए जाने के विषयों से संबंधित है। जनजीवन से संपर्क होने के कारण उपन्यासों की भाषा में ग्रामीण प्रयोग प्रायः मिलते हैं।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यास लेखकों में बाबू हरिकृष्ण जौहर का तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास लेखकों में महत्वपूर्ण स्थान है। तिलस्मी उपन्यासों की दिशा में जौहर ने बाबू देवकीनंदन खत्री द्वारा स्थापित उपन्यासपरंपरा को विकसित करने में महत्वपूर्ण योग दिया है। आधुनिक जीवन की विषमाओं एवं सभ्य समाज के यथार्थ जीवन का प्रदर्शन करने के लिए ही बाबू हरिकृष्ण जौहर ने जासूरी उपन्यासों का निर्माण किया है। 'काला बाघ' और 'गवाह गायब' आपके इस दिशा में महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों का निर्माण लोकसाहित्य की आधारशिला पर हुआ। कौतूहल और जिज्ञासा के भाव ने इसे विकसित किया। आधुनिक जीवन की विषमताओं ने जासूसी उपन्यासों की कथा को जीवन के यथार्थ में प्रवेश कराया। असत्य पर सत्य की सदैव ही विजय होती है यह सिद्धांत भारतीय संस्कृति का केंद्रबिंदु है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति मूल रूप से पाई जाती है।

हिंदी उपन्यास की परंपरा इतनी तो गहरी और विभिन्न रंगो से भरपूर है कि इस छोटे से लेख में इस विषय को न्याय देना असंभव ही है। मगर फिर भी, अगर हिंदी उपन्यास की बात करनी ही हैं, तो उसके लिए एक विशिष्ट पद्धति का विनियोग करना अनिवार्य होगा। मैं समझता हूँ कि हिंदी उपन्यास के विकास की बात मील के पत्थर समान कुछ चुने हुए उपन्यास लेकर की जा सकती है। प्रस्तुत लेख में यही मेरी पद्धति और उपक्रम होंगे। इस लेख की संरचना कुछ इस प्रकार हैं-पहले मैं हिंदी में उपन्यास लिखने की जब शुरुआत हुई उस वक्त का ऐतिहासिक संदर्भ दूँगा और उस संदर्भ के प्रकाश में मैं मील के पहले पत्थर समान श्रीनिवासदास लिखित उपन्यास परीक्षागुरु (1843) की बात करूँगा। उसके बाद चर्चा राष्ट्रवाद के समय का संदर्भ देगी और उसके प्रकाश में हिंदी कथा-साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान देने वाले प्रेमचंद के उपन्यास गोदान (1936) की बात की जायेगी। प्रेमचंद के बाद आने वाली पीढ़ी में सच्चिदानंद हिरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का नाम प्रमुख हैं। 'अज्ञेय' का उपन्यास शेखर: एक जीवनी (1941-44) हिंदी में लिखे गए सर्व-श्रेष्ठ उपन्यासों में से एक हैं। प्रेमचंद की परंपरा से हटकर शेखर: एक जीवनी द्वारा हिंदी-उपन्यास में कौनसे बदलाव आए उसकी बात होगी। अंत में नयी कहानी के बारे में कुछ बात करके इस युग में कैसे उपन्यास का भी रूपान्तर हुआ उसकी चर्चा के साथ इस लेख का समापन किया जायेगा द्य

हिंदी उपन्यास की शुरुआत और 'परीक्षागुरु'

लाला श्रीनिवासदास व्यवसाय से एक व्यापारी थे और अपने जीवन अनुभव को उन्होंने बखूबी रूप से इस उपन्यास में ढाला हैं। परीक्षा-गुरु मदनमोहन नाम के एक रईस व्यापारी की कहानी हैं। वह दिल से अच्छा इन्सान है पर गलत संगत में आकर वह पतन को न्योता देता हैं। कर्जे में डूब जाने की वजह से उसे कारावास भुगतना पड़ता है और उसका वकील दोस्त ब्रजकिशोर उसे मुक्ति दिलाता हैं जिसके बाद उसका हृदय-परिवर्तन होता हैं।

इस उपन्यास को 41 सर्गो में बाँटा गया हैं। इस दौरान लिखे गए उपन्यासों के कुछ सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं -

1. कर्म के सिद्धांत में अत्यंत श्रद्धा
2. धर्म का पुनर्वास
3. पाप कितने गहरे हैं, उसके हिसाब से उसका फल मिलना
4. राजा एवं खुद के धर्म के प्रति एक तरह का भक्तिभाव।

आखिरी लक्षण के अलावा परीक्षा-गुरु में और सभी लक्षण मौजूद है। यह उपन्यास अंग्रेज उपनिवेश के दौरान लिखा गया था। उपन्यास को एक आधुनिक स्वरूप माना जाता है और जहा तक हिंदी उपन्यास की बात है, तो हम कह सकते है कि हिंदी उपन्यास की गाथा परंपरा और आधुनिकता के बीच के द्वंद्व की गाथा है। परीक्षा-गुरु में भी यह द्वंद्व साफ दिखाई देता हैं।

आधुनिकता की पहली निशानी हैं, उपन्यास का समय, जो कि सिर्फ पाँच दिनों तक सीमित हैं। पुराने कथानकों की तरह पूरी जिंदगी की बात करने की जगह यहाँ मदनमोहन के जीवन के पाँच महत्वपूर्ण दिनों का चित्रण हैं। मध्कालीन रूमानी कथाओं की जगह वास्तविक चरित्रों ने ली हैं और भाषा-कर्म विविध रंगों से खिला हैं। उपन्यास की भाषा में भी परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व दिखाई दे पड़ता हैं। अंग्रेजी पात्रों की प्रस्तुति के कारण कुछ अंग्रेजी शब्दों का उपयोग हैं, तो साथ ही प्रारंभिक हिंदी, एवं संस्कृत और फारसी का भी उपयोग हैं। श्रीनिवासदास भाषा-प्रयोजन के प्रति अति-जागरूक मालूम होते हैं और अलग अलग परिस्थितियों में वह उचित भाषा का प्रयोग करना जानते हैं। जैसे की नैतिक और उपदेशात्मक सर्गो में संस्कृत-फारसी का ज्यादा उपयोग हैं, तो सामान्य बातचीत में बोल-चाल की हिंदी का उपयोग हैं।

जहाँ तक चरित्रों की बात हैं, तो प्रस्तुत उपन्यास पहली बार चरित्रों को उनके मनुष्य-स्वरूप में समझने की कोशिश करता हैं। वसुधा दालमिया ने अपने

लेख में निर्देश किया हैं कि कैसे परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व चरित्रों को एक-दूसरे के ध्रुवीय विपरीत रखकर दिखाया गया हैं।

मदनमोहन को अंग्रेजी जीवन-पद्धति अपनाते हुए दिखाया हैं जो उसके पतन का कारण बनती हैं, जबकि ब्रजकिशोर के चरित्र का आदर्श चित्रण किया गया हैं। वह समझदार हैं और वह अंग्रेजी जीवन-पद्धति का अँधा अनुकरण करने में नहीं मानता, बल्कि अंग्रेजों से जो चीजे सीखने लायक हैं, वही अपनाता हैं। ब्रजकिशोर कचेरी (कोर्ट) में काम करता हैं, जो की एक आधुनिक और उपनिवेशी संस्था हैं, मगर अपनी परंपरा को वह बिलकुल नहीं भूला। जहाँ तक स्त्री-पात्रों का सवाल हैं, उपन्यास अपने स्त्री-चरित्रों को उतना उजागर नहीं कर पाया। मदनमोहन की पत्नी उसको कारावास होने पर उसे छोड़ कर चली जाती हैं, पर जब मदनमोहन का ह्रदय-परिवर्तन होता हैं, तब वह वापस भी आ जाती हैं। इसके सिवा उसके हिस्से में ज्यादा कुछ नहीं हैं करने को।

परीक्षा-गुरु का मुख्य उद्देश्य नैतिक मूल्यों का चित्रण एवं शिक्षण था। कलाकृति बनाने का मोह इसमें इतना नहीं मौजूद जितना उपदेश मौजूद हैं। यह मानसिकता आने वाले युग में बदल जाएगी।

परीक्षा-गुरु पर अनेक, विध-विध कथाओं व् पुस्तकों का असर था। श्रीनिवासदास अंग्रेजी उपन्यासकार ओलिवर गोल्डस्मिथ से प्रभावित थे और साथ ही संस्कृत साहित्य की नीति-कथाओं और जातक-कथाओं से भी उन्होंने उतना ही ग्रहण किया था। इससे भी साफ नजर आता हैं कि परीक्षा-गुरु पर आधुनिकता व व परंपरा दोनों का प्रभाव था।

वास्तववादी धरातल पर लिखे गए इस उपन्यास के बाद उपन्यास की वास्तु एवं रूप में किस प्रकार और किस तरह के बदलाव आए? किस ऐतिहासिक संदर्भो ने नए उपन्यास को जन्म दिया?

सामाजिक वास्तव या आदर्श यथार्थवाद? प्रेमचंद युग में हिंदी उपन्यास के प्रश्न

लाला श्रीनिवासदास के समय के कुछ नामांकित उपन्यासकारों में बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गह्मारी और भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम लिया जा सकता हैं। उनके बाद की पीढ़ी में आए धनपतराय उर्फ 'प्रेमचंद', जो उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में लिखते थे। भारतेंदु युग में हिंदी को हिंदुओं की भाषा जाहिर कर उसे संस्कृत

के करीब लाने के प्रयत्न हुए थे, मगर प्रेमचंद उन सबसे अलग थे। उन्होंने अपनी अधिकतर कहानियाँ और कई उपन्यास प्रथम उर्दू और उसके बाद हिंदी में लिखे थे।

प्रेमचंद का जीवन उनकी कहानियों की तरह ही दिलचस्प हैं। यहाँ उनके जीवन की कुछ बातें करनी इसलिए आवश्यक हैं क्योंकि उनका सीधा संबंध उनकी रचनओं से एवं उस समय की भारत की स्थिति से हैं। प्रेमचंद का जन्म बनारस के करीब लमही नामके एक गाँव में हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में गरीबी देखी, सौतेली माँ से अन्याय का अनुभव किया, अपने आसपास के टूटते हुए लोगों को देखा और साथ ही अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को भी देखा। यह सभी अनुभव उनके सर्जन-विश्व का बड़ा हिस्सा बनने वाले थे। बचपन से ही उन्हें पढने-लिखने का बड़ा शौक था और उन पर चार्ल्स डिकन्स, मेक्सिम गोर्की, टॉलस्टॉय जैसे लेखकों का प्रभाव अधिक था।

प्रेमचंद पहले ऐसे लेखक थे जिन्होंने 'वास्तव' का सही ढंग से अपनी रचनाओं में विनियोग किया। 1900-1930 तक भारत में साम्यवादी विचारधारा का सामाजिक एवं राजनैतिक प्रभुत्व रहा। इसका असर उस समय के साहित्य पर भी हुआ। साहित्य-लेखन की प्रमुख धारा थी 'सामाजिक वास्तव' और प्रेमचंद उसके प्रमुख कर्ता थे। सामाजिक वास्तव की धारा का लेखन किसानों और गरीबों के जीवन को वस्तु बनाता था और शुद्ध साहित्यिक हिंदी से दूर हटकर बोल-चाल की हिंदी को प्राधान्य देता था। यह समय गाँधी का भी समय था और गाँधीवाद एवं राष्ट्रवाद का प्रभाव उतना ही प्रबल था जितना साम्यवाद का। गाँधी द्वारा की गई समाज के निम्न वर्ग और किसानों के उद्धार की बात का समर्थन प्रेमचंद ने अपनी रचनओं द्वारा दिया और गाँधी के शुरू किये गए 'असहयोग' आंदोलन के समर्थन में उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी से त्यागपत्र भी दे दिया।

प्रेमचंद सामजिक वास्तव के अग्रहारी तो थे ही, लेकिन उन्होंने 'आदर्श यथार्थवाद' को भी प्राधान्य दिया, बल्कि अपनी रचनाओं में 'आदर्श यथार्थवाद' का विनियोग करने का हमेशा प्रयत्न किया। इससे उनका मतलब यह था कि रचना यथार्थ का चित्रण करते हुए भी किसी आदर्श की तरफ अंगुलिनिर्देश करनी चाहिए।

यहाँ पर प्रेमचंद के उपन्यास गोदान (1963) के द्वारा यह देखा जाएगा कैसे हिंदी उपन्यास में भारी बदलाव आए और कैसे राष्ट्रवाद, साम्यवाद जैसे आंदोलनों ने इस रचना को प्रभावित किया।

गोदान होरी नाम के एक किसान की कहानी हैं, जो गोदान करना चाहता हैं। होरी और उसकी पत्नी धनिया गोदान के लिए एक के बाद एक मुश्किलों का सामना करते हैं और गोदान की संभावना के साथ उपन्यास समाप्त होता हैं। यह बात प्रेमचंद के 'आदर्श यथार्थवाद' का नमूना हैं, क्योंकि पूरा उपन्यास नग्न यथार्थ का चित्रण कर होरी के दर्द और मुश्किलों का दस्तावेज हैं, लेकिन अंत में होरी के मौत के साथ गोदान की संभावना खड़ी होती हैं। गोदान की स्थिति होरी के लिए एक आदर्श स्थिति हैं जहाँ वह कभी पहुँच नहीं पाता, लेकिन उस स्थिति का अंगुलिनिर्देश जरूर किया गया हैं। उल्का अंजारिया के अनुसार प्रेमचंद के लेखन को भिन्नता युक्त यथार्थ और समानता युक्त आदर्श के बीच के तकरार का लेखन माना जा सकता हैं (Anjaria, 2012)।

यह उपन्यास अनेक तरीके से आधुनिक हैं। भाषा, जैसा कि आगे सूचित किया गया हैं, बोल-चाल की और रोज-ब-रोज की हैं। उपन्यास में होरी की कथा मुख्य हैं, जो गाँव में स्थित हैं, पर गोदान में इसके समान्तर शहर के कथानक का भी उपयोग किया गया हैं। यह दोनों अंतिम एक दूसरे के पूरक साबित होते हैं। प्रेमचंद काफी प्रगतिशील थे। 'ऑल इण्डिया प्रोग्रेसिव राईटर्ज एसोसिएशन' के उद्घाटन के दौरान अपने वक्तव्य में उन्होंने निर्देश किया था कि लेखक और वकील का काम एक-सा होता हैं, क्योंकि दोनों का धर्म निम्न-वर्ग के शोषित और पीड़ित के लिए लड़ना हैं (प्रेमचंद 1936)। यह प्रगतिशीलता उनके इस उपन्यास में भी नजर आती हैं। अपने कथानक में वह अंतरजातीय शादी को समर्थन देते हुए मिलते हैं। यह बात उस समय में बहुत ही क्रांतिकारी थी।

पहली बार निम्न-वर्ग के चरित्रों का बड़ी संकुलता से चित्रण हुआ मिलता हैं। इस उपन्यास में स्त्री-चरित्र का चित्रण भी पहले के उपन्यासों से अलग हैं। धनिया, होरी की पत्नी, एक अत्यंत सबल चरित्र हैं। उसकी आंतरिकता को उजागर करने में भी प्रेमचंद सफल रहे हैं। यह कहा जा सकता हैं कि अगर धनिया न होती तो होरी ने जल्द ही जीवन की विषमताओं के सामने हार मान ली होती। मगर फिर भी, धनिया का पात्र होरी के पात्र का साथ देने के लिए ही हैं-होरी से हटकर उसकी अपनी अलग पहचान नहीं मिलती।

हम देख सकते हैं कि कैसे प्रेमचंद ने 'वास्तव' का बखूबी निरूपण किया और अनेक चरित्रों को मिलकर एक संकुल वास्तविक सृष्टि की रचना की, जिसका नाता परंपरा से जरूर हैं, मगर बहुत तरीके से वह आधुनिक हैं।

प्रेमचंदोत्तर युग में उपन्यास और शेखरः एक जीवनी

प्रेमचंद के बाद आई पीढ़ी के लेखकों में जैनेन्द्र कुमार, सच्चिदानंद हिरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ अश्क और यशपाल का नाम बड़े आदर से लिया जाता हैं। जैनेन्द्र कुमार को मनोवैज्ञानिक उपन्यास की शुरुआत करने का श्रेय दिया जाता हैं। उनके उपन्यास सुनीता और त्यागपत्र इसके प्रमाण हैं। जैनेन्द्र के दोस्त 'अज्ञेय' ने भी उनकी राह पर चलकर शेखरः एक जीवनी द्वारा मनोवैज्ञानिक उपन्यास को एक नयी ऊंचाई पर पहुँचाया। अज्ञेय की बात करने में जैनेन्द्र की बात करनी भी आवश्यक हैं, क्योंकि जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास सुनीता और त्यागपत्र से जो हिंदी भाषा को तोडा-मरोड़ा और पात्रों की आंतरिकता, खास करके भय, काम-वासना और यादों की अनेक परतों को उजागर करने के लिए नयी हिंदी का प्रयोग किया, उसी से प्रभावित होकर 'अज्ञेय' ने उस भाषा, वातावरण एवं स्वरूप के नवोन्मेष को शेखरः एक जीवनी द्वारा नया आयाम दिया।

कौन-सी परिस्थियों की वजह से हिंदी साहित्य में एसे बदलाव आए? उस समय की सामाजिक और राजकीय स्थिति क्या थी? यह जानने से शायद हिंदी उपन्यास में अचानक आए परिवर्तन का पता चले द्य

अज्ञेय की पीढ़ी गाँधी के विचारों से प्रभावित जरूर थी, मगर साथ ही वह गाँधी का अँधा अनुकरण करने में नहीं मानती थी। गाँधी से हटकर यह क्रांतिकारियों की पीढ़ी हिंसा को देश की आजादी के लिए इस्तेमाल करने में हिचकिचाती नहीं थी। अज्ञेय को कारावास की सजा मिली थी क्योंकि वह चंद्रशेखर आजाद और साथियों के साथ बम बनाते हुए पकड़े गए थे। कारावास का अनुभव शेखर का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा हैं क्योंकि यह उपन्यास अज्ञेय ने कारावास में ही लिखा था, जो बाद में दो हिस्सों में प्रकाशित हुआ।

उस समय के अज्ञेय जैसे क्रांतिकारियों को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, क्योंकि वे लोग न तो गाँधी के असहयोग और अहिंसा के मार्ग पर चलने को तैयार थे और न ही अपनी क्रान्ति छोड़ देने को। साथ ही यह क्रांतिकारी मार्क्सवादी विचारधारा में मानते थे और जितना तीव्र उनका राष्ट्रवाद था, उतनी ही तीव्र उनकी सामाजिक चेतना भी थी। यह क्रांतिकारियों की जिंदगी भी कायदे-कानून से बचने के लिए रास्तों पर या जंगलों में गुजरी और इन असामान्य विस्तारों में युवा स्त्री-पुरुष क्रांतिकारियों ने काफी समय साथ में

बिताया, जिससे प्रेम और कामावेग की अभिव्यक्ति के नए पहलू उन्मुक्त हुए। एक विस्तार था यह कामावेग और प्रेम का विस्तार, एक विस्तार था कारावास का जो इन्हें अपनी जिंदगी के बारे में सोचने और चिंतन करने के लिए आवश्यक समय एवं जगह देता था।

शेखर: एक जीवनी कारावास में ही शुरू होती हैं, जहाँ शेखर अपनी फाँसी के लिए इंतजार कर रहा हैं। उपन्यास सामयिक और स्थानिक आयामों को तोड़ मरोड़ देता हैं, क्योंकि कथा वर्तमान और भूतकाल के बीच घूमती रहती हैं और इसी की वजह से स्थल भी बदलते रहते हैं। शेखर खुद क्रांतिकारी होने के साथ एक लेखक भी हैं और इसी वजह से उपन्यास की भाषा हिंदी एवं संस्कृत शब्दों से संपन्न हैं और उसकी काव्यात्मकता उपन्यास खत्म होने पर भी पाठक को पूरी तरह नहीं छोड़ती। यह उपन्यास प्रेमचंद के उपन्यासों से बहुत ही अलग हैं क्योंकि 'यहाँ व्यक्ति का मनश्लोक आख्यान की अग्रभूमि में है, जबकि सामाजिक जीवन पृष्ठभूमि में' (कुमार 2012)।

कथानक प्रथम पुरुष एकवचन और तृतीय पुरुष एकवचन के बीच झोंके खाता रहता हैं जिससे बाहर का सामाजिक वास्तव और अंदर का आंतरिक वास्तव दोनों की बात कही जा सके। यह प्रयोग शेखर को गोदान से अधिकतर आधुनिक स्थापित कर देते हैं। प्रेम और कामावेग का कथानक में जिस तरह अन्वेषण हुआ हैं वह भी नयेपन का ही प्रमाण हैं। क्रांतिकारी पहलू यह हैं कि यह प्रेम और वासना का संबंध दूर के भाई-बहन शेखर और शशी के बीच स्थापित होता हैं, जिससे कई पारंपरिक मूल्यों का ह्रास होता दिखता हैं।

शशी हिंदी साहित्य के सबसे चहेते और सबसे करुण चरित्रों में से एक हैं। शेखर में मुख्य पात्र शेखर का विकास शशी के पतन के साथ ही होता हैं (Sawhney, 2012)। शशी का चरित्र मजबूत हैं, वह अपने पति को छोड़कर शेखर के साथ एक गुन्हेगार की जिंदगी जीने लगती हैं और आखिर शेखर के लिए अपनी जान दे देती हैं। जो उपन्यास शेखर की मृत्यु की बात से शुरू होता हैं, वह शशी के मृत्यु के साथ समाप्त होता हैं। निखिल गोविन्द सूचित करते हैं कि कैसे अपनी मृत्यु के मूल्य के कारण शशी उपन्यास के केंद्र में आ जाती हैं (Govind, 2014) और अंत में वह शशी ही हैं जो पाठक के साथ रहती हैं, न कि शेखर।

यह देखा जा सकता हैं कि कैसे शेखर: एक जीवनी से हिंदी उपन्यास ने एक नयी दिशा में ही प्रस्थान किया, जिस दिशा में नयी कहानी के लेखकों की पीढ़ी बढती हैं।

निष्कर्ष

हमने इस लेख में तीन मील के पत्थर समान उपन्यासों की मदद से देखा कि कैसे हिंदी उपन्यास में परिवर्तन आए। अज्ञेय के बाद की पीढ़ी में नयी कविता और नयी कहानी के आंदोलन ज्यादा प्रचलित रहे, हालाँकि उपन्यास की विधा में भी इन लेखकों का उतना ही बड़ा योगदान रहा। यहाँ कुछ बात नयी कहानी के बारे में भी करना आवश्यक हैं।

नयी कहानी आंदोलन हिंदी साहित्य के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा हैं। पश्चिम के 'हाई-मोडर्निज्म' (आधुनिकतावाद) से यह आंदोलन प्रभावित जरूर था, मगर नयी कहानी के लेखक अपनी भारतीयता को भूलकर पश्चिम का अँधा अनुकरण नहीं कर रहे थे। उनके लिए पश्चिम एक संदर्भ मात्र था। नयी कहानी आंदोलन अपने पूर्व-सूरिओं से नाता तोड़ता भी हैं और जोड़ता भी है। प्रगतिवादी लेखकों का 1936 में जो आंदोलन हुआ, उसके बाद बहुत से प्रगतिवादी लेखक सामाजिक चेतना के साहित्य को ही सच्चा साहित्य मानने लगे थे। उनकी कहानियाँ निम्न और गरीब वर्ग की, स्त्रियों की बात करती जरूर थी, मगर मार्क्सवादी विचारधारा रखने वाले लेखक और वैसी मानसिकता वाले साहित्य को ही अच्छा साहित्य समझना उनकी बहुत बड़ी भूल थी। प्रगतिवादी लेखकों में अहमद अली, उपेन्द्रनाथ अश्क, प्रेमचंद, मुल्कराज आनंद इत्यादि लेखक शामिल थे।

3

हिन्दी उपन्यास का इतिहास

भारतेन्दु युग

इस युग का नाम भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाम पर रखा गया था।इसी युग में हिंदी में पहली उपन्यास 'परीक्षा गुरु' लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखी गयी थी। हिंदी में भारतेंदु से पूर्व जो कथात्मक पुस्तकें लिखी गईं। वे आधुनिक उपन्यास और कहानी से मिलती-जुलती होने पर भी उनसे भिन्न थीं। वास्तव में उपन्यास और कहानी पश्चिमी साहित्य की देन है। भारतेन्दु-युग में जो उपन्यास लिखे गये, उनमें उपन्यास विद्या का उचित निर्वाह न होने के कारण उन्हें सच्चा उपन्यास नहीं कहा जा सकता है। सच तो यह है कि हिन्दी में वास्तविक उपन्यास की रचना सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही की। यों, ऐतिहासिक दृष्टि से लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा-गुरु' (1882 ई.) ही हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। यह पश्चिमी उपन्यास की शैली पर आधारित है और यथार्थ जीवन का चित्र भी प्रस्तुत करता है, परन्तु कला की दृष्टि से बहुत अपरिपक्व है। इसमें उपदेश की प्रवृत्ति प्रधान है। 'परीक्षा-गुरु' के पूर्व भी 'देवरानी-जेठानी' (1872 ई.) 'रीति-रत्नाकर', 'वामा शिक्षक', 'भाग्यवती' आदि कुछ उपन्यास जैसी कथा-पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं परन्तु वे भी मुख्यत: शिक्षात्मक तथा अपरिपक्व हैं। भारतेन्दु ने भी 1866 ई. में कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' लिखने का यत्न

किया था और 'चन्द्र प्रभा और पूर्ण प्रकाश शीर्षक मराठी उपन्यास का अनुवाद व संशोधन भी किया था। उनकी प्रेरणा से राधा चरण गोस्वामी, गदाधर सिंह, राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने बंगला के बहुत से उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया और मौलिक उपन्यास भी लिखे। इन लेखकों के अतिरिक्त बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, रामकृष्ण वर्मा आदि और भी कई लेखकों ने बंगला उपन्यासों का अनुवाद किया। अंग्रेजी से भी कुछ उपन्यासों का अनुवाद हुआ।

भारतेन्दु काल के मौलिक कथा-ग्रन्थों और उपन्यासों में महत्वपूर्ण हैं: ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न' (काव्यात्मक गद्य-कथा), पं. बालकृष्ण भट्ट रचित 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' किशोरी लाल गोस्वामी का 'स्वर्गीय कुसुम', राधाचरण गोस्वामी का 'विधवा-विपत्ति', राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू', अयोध्या सिंह उपाध्यायो आदि के निवास।

द्विवेदी युग

द्विवेदी युग में भी मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। इस समय अधिकतर तिलिस्म, ऐयारी, जासूसी और रोमांस के कथानक प्रस्तुत किए गए। उपन्यास घटना-प्रधान बना रहा। अंग्रेजी से भी साहसिक, जासूसी तथा प्रेमचर्या-प्रधान उपन्यासों का अनुवाद हुआ। इस युग के तीन उपन्यासकार बहुत प्रसिद्ध हैं: देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी। खत्री जी ने 'चन्द्रकांता', 'चन्द्रकांता-संतति' तथा 'भूतनाथ' नामक तिलस्म और ऐयारी के रोचक उपन्यास कई भागों में प्रकाशित किए। इन उपन्यासों के पहले भी भारतेन्दु काल में उन्होंने 'नरेन्द्रमोहनी', वीरेन्द्र वीर' आदि उपन्यास लिखे थे। हरेकृष्ण जोहरी आदि कई लेखकों ने उनके अनुकरण पर तिलस्मी उपन्यास लिखे। बहुत लोगों ने उनके मनोरंजक उपन्यास पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी।

किशोरीलाल गोस्वामी ने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। गोस्वामी जी के सामाजिक उपन्यास वस्तुत: नाम के ही सामाजिक हैं। उनमें समाज की बहुत ही स्थूल और ऊपरी झलक है, यथार्थ चित्रण नहीं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के तथ्यों का उचित निर्वाह नहीं हुआ। देशकाल का भी ध्यान उन्होंने कहीं-कहीं नहीं रखा। कुछ उपन्यासों में समाज की कुरीतियों पर प्रहार करने का यत्न किया गया और यत्र-तत्र राष्ट्र-प्रेम की भावना

भी है। परन्तु गोस्वामी जी के अधिकांश उपन्यास उत्तेजक श्रृंगार से युक्त हल्के मनोरंजन के साधन हैं। गोस्वामी जी ने लगभग पैंसठ उपन्यास लिखे हैं। उनमें कुछ उपन्यासों के नाम हैं 'कुसुमकुमारी', 'हृदयहारिणी', 'लबंगलता', 'रजिया बेगम', 'तारा', 'कनक कुसुम', 'मल्लिका देवी', 'राजकुमारी', लखनऊ की कब्र', 'चपला', 'प्रेममयी'। जैसा कि नामों में प्रकट है ये उपन्यास नारी-प्रधान और श्रृंगारिक हैं। वास्तव में उनमें समाज और इतिहास के संदर्भ में कामुकता तथा विलासिता का अंकन हुआ है। उन्होंने 'उपन्यास' नामक पत्रिका भी निकाली थी जिसमें उनके पैंसठ छोटे-बड़े उपन्यास प्रकाशित हुए थे। आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी जी के सम्बन्ध में लिखा है कि 'इस द्वितीय उत्थानकाल के भीतर उपन्यासकार इन्हीं को कह सकते हैं, परन्तु वस्तुतः उपन्यासकार की सच्ची प्रतिभा इनमें भी नहीं है।'

गोपालराम गहमरी 'जासूस' नामक पत्रिका प्रकाशित करते थे, जिसमें उनके साठ के लगभग उपन्यास छपे। अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों के अनुकरण पर उन्होंने 'जासूस की भूल', 'घर का भेदी', 'अद्‌भुत खून', 'भोजपुर की ठगी', आदि रहस्यपूर्ण, साहसिक और डकैती तथा ठगी की कथाएं निर्मित कीं। वैसे उन्होंने जासूसी उपन्यासों के क्षेत्र में भी आदर्श के निर्वाह और लोकोपकार की भावना के समावेश का यत्न किया और आदर्श जासूसों की सृष्टि की। गहमरी जी ने बंगला से गृहस्थ जीवन-सम्बन्धी कुछ उपन्यासों का अनुवाद भी किया था। दूसरी ओर द्विवेदी युग में कुछ ऐसे उपन्यासकार भी हुए, जिन्होंने अपनी रचनाओं में नैतिकता का ध्यान रखते हुए स्वच्छ-स्वस्थ सामग्री प्रस्तुत की। इस तरह के उपन्यासकारों में उल्लेखनीय हैं: हरिऔध, लज्जाराम मेहता और ब्रजनन्दन सहाय। हरिऔध जी ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' लिखकर इनमें मुहावरेदार ठेठ भाषा का नमूना भी पेश किया। मेहता जी ने सुधारवादी दृष्टिकोण से 'आदर्श हिन्दू', 'आदर्शदम्पति' और 'हिन्दू गृहस्थ आदि उपन्यास लिखे। ब्रजनन्दन सहाय के 'सौन्दर्योपासक' में काव्य का आनन्द मिलता है। स्पष्ट है कि गोस्वामी जी, गहमरी जी और खत्री जी के उपन्यासों में जहाँ स्थूल सौन्दर्य और उत्तेजक श्रृंगारिकता प्रस्तुत है वहाँ इन उपन्यासकारों के ग्रन्थ 'उपदेशात्मक भावना की छटा दिखाने वाले या काव्यात्मक है। मानव चरित्र और मानव जीवन के सच्चे चित्रण और उपन्यास-काल की पूर्णता की ओर इस समय तक किसी का भी यथोचित ध्यान नहीं गया था। इस काल में किशोरीलाल गोस्वामी के अतिरिक्त कुछ और लेखकों ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखें। इनमें

उल्लेखनीय हैं: गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर पत्नी' और 'मिश्रबंधुओं के विक्रमादित्य', चन्द्रगुप्त मौर्य' तथा 'पुष्य मित्र'।

द्विवेदी युग में भी अधिकतर साधारण जनता के मनोरंजन और मनोविनोद के लिए घटना प्रधान उपन्यास ही लिखे गये। उनमें कथा का रस तो है, किन्तु चरित्र-चित्रण का सौन्दर्य, समाज का सही अंकन और उपन्यास का परिपक्व शिल्प नहीं। इस समय के उपन्यासकारों को न तो मानव-जीवन का और न मानव-स्वाभाव का सूक्ष्म एवं व्यापक ज्ञान था और न उपन्यास की कला से ही उनका अच्छा परिचय था। इस काल में अधिकतर प्रेमप्रधान, साहसिक तथा विस्मयकारक (तिलस्मी-जासूसी) उपन्यास ही लिखे गये। ऐतिहासिक, शिक्षात्मक और काव्यात्मक उपन्यास भी लिखे गये, परन्तु कम। पात्र अधिकतर सौंदर्य के प्रति आकर्षित होने वाले विलासी प्रेमी-प्रेमिका और राजकुमार-राजकुमारी हैं या फिर ऐयार तथा जासूस। इस काल के उपन्यास भारतेन्दु काल के उपन्यासों की अपेक्षा रोचक और मनोरंजक अधिक हैं। शिक्षा देने की प्रवृत्ति भी कम है। प्रतापनारायण मिश्र, गोपालराम गहमरी, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, हरिऔध, कार्तिकप्रसाद खत्री, रूपनारायण पाण्डेय, रामकृष्ण वर्मा आदि साहित्यकारों ने बंगला, अंग्रेजी और उर्दू आदि भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद किया। आचार्य शुक्ल का कथन है कि हिन्दी के मौलिक उपन्यास-सृजन पर इन अनुवाद कार्यों का अच्छा प्रभाव पड़ा और इसके कारण हिन्दी उपन्यास का आदर्श काफी ऊँचा हुआ।

प्रेमचन्द युग

द्विवेदी युग के अन्त तक (1917 ई. तक) हिन्दी के मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यास काफी संख्या में लिखे जा चुके थे। मौलिक उपन्यास अनेक प्रकार के और अनेक विषयों पर थे। उपन्यास क्रमशः जीवन और समाज के निकट आ रहा था, परन्तु अब भी उसमें बहुत-सी, त्रुटियां थी। प्रेमचन्द के समय से विशेष कर उनके 'सेवासदन' के प्रकाशन काल (सन् 1918 ई.) से हिन्दी-कथा साहित्य में एक नये युग का आरम्भ होता है। प्रेमचंद ने ही उपन्यास में मानव मन का स्वाभाविक एवं सजीव अंकन आरम्भ किया। उन्होंने ही पहली बार हिन्दी उपन्यास में घटना और चरित्र का संतुलन स्थापित कर मनोविज्ञान का उचित समावेश किया। उन्होंने ही समाज की समस्याओं को सर्वप्रथम कथा-साहित्य में स्थापित किया। उन्होंने जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों का, समाज के विभिन्न वर्गों का ग्रामीण तथा नागरिक क्षेत्रों की बहुत-सी दशाओं तथा

परिस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर व्यापक अनुभव प्राप्त किया था। मनोविज्ञान के वे पंडित थे। मानव-स्वाभाव के विविध पक्षों से भली-भांति परिचित थे। उपन्यास-कला का भी उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। पश्चिम के ताल्सताय, दोस्तोवस्की, तुर्गनेव, गोर्की, अनातोले फांस आदि महान उपन्यासकारों की रचनाओं का भी उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था।

प्रेमचन्द प्रारम्भ में उर्दू के लेखक थे और कहानियां लिखते थे। उर्दू में उनके कुछ उपन्यास भी प्रकाशित हुए थे। बाद में उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया। उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं: सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र (अपूर्ण)। प्रेमचन्द उपन्यास को मनोरंजन की वस्तु नहीं मानते थे। वे अपने उपन्यासों द्वारा भारतीय जनता के जागरण और सुधार तथा निर्माण की भावना का प्रसार करना चाहते थे। प्रेमचन्द मानवतावादी सहृदय व्यक्ति थे। वे गरीबी में पले थे, गरीबों के दु:ख-दर्द को समझते थे। समाज के निम्न वर्ग से उन्हें सहानुभूति थी। जीवन के अन्तिम समय में, जैसा कि उनके अन्तिम उपन्यासों ('गोदान' और 'मंगलसूत्र') से प्रकट है, उनका झुकाव साम्यवाद की ओर हो गया था और वे सच्चे अर्थ में यथार्थवादी और प्रगतिशील हो गये थे। अपनी पुस्तकों में प्रेमचन्द ने किसानों की आर्थिक दशा, जमीदारों और पुलिस के अत्याचारों, ग्रामीण जीवन की कमजोरियों, समाज की कुरीतियों, शहरी समाज की कमियों, विधवाओं और वेश्याओं की समस्याओं, नारी की आभूषणप्रियता, मध्यवर्ग की झूठी शान और दिखावे की प्रवृत्ति, सम्मिलित हिन्दू-परिवार में नारी की दयनीय स्थिति आदि प्रश्नों और पक्षों पर प्रकाश डाला। उन्होंने अपने कई उपन्यासों में गांव और शहर की कहानी, ग्रामीण और नागरिक जीवन की झांकी साथ-साथ प्रस्तुत की है। उनके उपन्यासों में कथानक सुगठित है चरित्र-चित्रण प्राय: मनोविज्ञान के अनुकूल सजीव और स्वाभाविक है। संवाद पात्रों और परिस्थितियों के अनुसार हैं और भाषा सरल एवं व्यवहारिक है।

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला की मुख्य विशेषताएं हैं। व्यापक सहानुभूति-विशेषकर शोषित किसान, मजदूर और नारी का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण, यथार्थवाद अर्थात् उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण, मानव-जीवन और मानव-स्वाभाव की अच्छी जानकारी होने से सजीव पात्रों और सजीव वातावरण का निर्माण, चरित्र-चित्रण में नाट्कीय कथोपकथनात्मक तथा घटनापरक पद्धतियों का उपयोग, समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्रों की सृष्टि,

अपने व्यक्तित्त्व को पात्रों से पृथक रखकर उन्हें प्रायः अपनी सहज-स्वच्छन्द गति से चलने देना, अनेकानेक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का चित्रण, समाज के साथ पारिवारिक जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति, मानव-कल्याण की ओर संकेत करने वाले नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा और सरल व्यावहारिक भाषा का संग्रह। प्रेमचन्द युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, प्रसाद, निराला, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, सियारामशरण गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', भगवती प्रसाद वाजपेयी, गोविन्दवल्लभ पंत, राहुल सांकृत्यायन और जैनेन्द्र। कोशिक जी के उपन्यास 'माँ' और भिखारिणी नारी-हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। आचार्य चतुरसेन ने नारी की समस्या पर 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा' आदि उपन्यास प्रारम्भ में लिखे थे। बाद में उनके बहुत से सामाजिक ऐतिहासिक और वैज्ञानिक उपन्यास प्रकाशित हुए। उनके कुछ उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'गोली', 'वैशाली की नगर वधू' 'वयं रक्षामः' 'सोमनाथ' 'महालय', 'सोना और खून' तथा 'खग्रास'। वृन्दावनलाल वर्मा ने इतिहास के तथ्यों की पूर्णतः रक्षा करते हुए कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। उन्होंने 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'माधवजी सिंधिया' आदि उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। हिन्दी के कुछ अन्य उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास हैं। जयशंकर प्रसाद का 'इरावती' (अधूरा), हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चन्द्रलेख', चतुरसेन का 'वैशाली की नगरवधू', 'राजसिंह', 'सोमनाथ', 'सह्याद्रि की चट्टानें', सेठ गोविन्ददास का 'इन्दुमती', राहुल सांकृत्यायन के 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', सत्यकेतु विद्यालंकार का 'आचार्य चाणक्य', रांगेय राघव का 'अंधा रास्ता', उमाशंकर का 'नाना फड़नवीस' तथा 'पेशवा की कंचना'।

प्रसाद जी ने 'इरावती' के पहले 'कंकाल' और 'तितली' नामक दो उपन्यास और लिखे थे, 'कंकाल' में हिन्दू नारी की असहाय स्थिति और धार्मिक पाखंड पर प्रकाश डाला गया है। 'तितली' में नारी-हृदय की महत्ता के उद्घाटन के साथ-साथ ग्राम-सुधार और यथास्थिति के विरुद्ध आन्दोलन की भावना है। प्रसाद जी मूलतः कवि हैं। उनके उपन्यासों में भी प्रायः जीवन की काव्यात्मक और भावपूर्ण व्याख्या मिलती है। निराला जी ने भी 'अप्सरा' 'अल्का', 'निरूपमा' आदि उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में भी प्रसाद जी की भांति

रोमांटिक वातावरण है। नारी को निराला जी ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के प्रारम्भिक उपन्यासों में 'विदा', 'विसर्जन' और 'विजय' उल्लेखनीय हैं।

सियारामशरण गुप्त के 'गोद', 'अन्तिम आकांक्षा' और 'नारी' उपन्यासों में नारी-जीवन और उसकी सामाजिक स्थिति का मार्मिक अंकन हुआ है। साधारण मनुष्य में भी उच्च गुण दिखाने में गुप्त जी निपुण है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के प्रारम्भिक उपन्यासों में पत्रात्मक शैली में लिखे 'चन्द हसीनों के खतूत' का विशिष्ट स्थान है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न उपस्थित करते हुए प्रेम का महत्व दिखाया गया है। उनके 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', 'जीजी जी' आदि उपन्यासों में दुष्टों द्वारा भोली युवतियों को फंसाएं जाने की कथाएं हैं। सभ्य समाज की भीतरी दुर्बलताओं और दुष्प्रवृत्तियों का उन्होंने अच्छा उद्घाटन किया है। भगवती प्रसाद वाजपेयीके 'प्रेममयी', 'अनाथ स्त्री', 'त्यागमयी', 'पतिता की साधना' आदि शुरू के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के रूपाकर्षण और प्रेम के चित्र हैं। उनके 'गुप्त धन', 'चलते-चलते', 'पतवार', 'उनसे न कहना', 'रात और प्रभाव', 'टूटते बन्धन' आदि कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। गोविन्दवल्लभ पंत के 'सूर्यास्त', 'प्रतिमा', आदि उपन्यास काफी पहले प्रकाशित हुए थे। बाद में भी उनके 'जल समाधि', 'नारी के सपने', 'मैत्रेय' आदि उपन्यास निकले हैं।

जैनेन्द्र के परख (सन् 1929 ई.) से हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नई प्रवृत्ति का आरम्भ होता है। वस्तुतः यह उपन्यास एक लम्बी कहानी है जिसमें कट्टो नाम की देहातिन बालविधवा के भावुकतापूर्ण आत्मसमर्पण का चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र ने आगे चलकर कई महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'सुनीता', 'सुखदा', 'त्यागपत्र', विवर्त्त' आदि लिखे, जिनमें प्रायः स्त्री का पर-पुरुष की ओर झुकाव दिखाकर आधुनिक नारी के कुण्ठाग्रस्त मन पर प्रकाश डाला है। मनोविश्लेषण की इस प्रवृत्ति का विकास किया इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेयने। प्रेमचन्द काल के उत्तरार्ध में इस क्षेत्र में आने वाले अन्य प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं। ऋषभचरण जैन (कैंदी, गदर, भाई, भाग्य, रहस्यमयी, तपोभूमि, बादशाह की बेटी, सत्याग्रह, दिल्ली का व्यभिचार आदि), भगवतीचरण वर्मा (पतन, तीन वर्ष, चित्रलेखा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सबहिं नचावत राम गुसाईं) राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह (राम-रहीम, पुरुष और नारी, टूटा तारा, सूरदास, संस्कार आदि)

इस काल में जो उपन्यास लिखे गए, उन्हें चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास, स्वच्छन्दतापरक उपन्यास और मनोवैज्ञानिक उपन्यास। उपन्यास-लेखन की बहुत-सी शैलियों (ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक आदि) का प्रयोग हुआ है। इस काल में यूरोप की अनेक समृद्ध भाषाओं (रूसी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि) से उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ।

प्रेमचन्दोत्तर युग

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है। सन् '40 से' 50 तक की कालावधि के उपन्यास मुख्यतः फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से, सन् '50 से' 60 तक के उपन्यास प्रयोगात्मक विशेषताओं से और सन् '60 से अब तक के उपन्यास आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द समाज की स्वीकृत मान्यताओं के भीतर संघर्ष करते रहे। किन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद पश्चिम के पुराने मूल्यों का तेजी के साथ विघटन हुआ। फ्रायड ने काम-सम्बन्धी मान्यताओं को नैतिकता-अनैतिकता से परे बताकर सामाजिक नैतिकता के आगे प्रश्नचिह्न लगा दिया। पूंजीवादी समाज में व्यक्ति-चेतना उभर कर सामने आई। मार्क्स ने समष्टि चेतना पर विशेष बल दिया। हिन्दी उपन्यास इन विचारधाराओं से प्रभावित हुए बिना न रहा। फलस्वरूप सन् '50 के बाद उपन्यासकारों का ध्यान व्यक्ति और समाज की मुक्ति की ओर गया। किन्तु स्वतंत्रता के बीस वर्षों बाद भी मानव जीवन में एक विशेष प्रकार की कुण्ठा, निराशा, त्रास, अर्थहीनता आदि की अनुभूति होने के कारण सन् '60 के बाद के उपन्यासों में इन्हीं मनोदशाओं का चित्रण किया गया। प्रेमचन्द-युग में ही जैनेन्द्र ने फ्रायड से प्रभावित होकर मानव-चरित्र के स्थान पर व्यक्ति-चरित्र की सृष्टि की थी। किन्तु सन् '51 में अज्ञेय के 'शेखरः एक जीवनी' के प्रकाशन के साथ ही हम उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ पाते हैं। अज्ञेय के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं।: 'शेखरः एक जीवनी' (दो भाग), 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी'। पहले दो उपन्यासों में व्यक्तिपात्रों के मनो विश्लेषण की प्रवृत्ति है। तीसरी रचना में कोई सम्बद्ध कथानक नहीं है। अज्ञेय ने उपन्यास को पात्र-प्रधान बनाया और सामाजिक मानव के स्थान पर व्यक्ति-मानव के अन्तर्मन का विश्लेषण करने का यत्न किया।

इलाचन्द्र जोशी को उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा 'संन्यासी' (1914) उपन्यास-प्रकाशन के द्वारा मिली। इस उपन्यासो में ही पहली बार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की विकृति देखी जा सकती है। 'संयासी' के अतिरिक्त 'पर्दे की रानी' (1941), 'प्रेत और छाया' 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ' (1950) 'सुबह के भूले' (1957), 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी' (1955) और 'ऋतुचक्र' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों की विकास-यात्रा में 'मुक्तिपथ' एक नए मोड़ की सूचना देता है। 'मुक्तिपथ' के पूर्ववर्ती उपन्यास ग्रन्थियों के विश्लेषण पर आधारित है। उनकी भाव-भूमियाँ एकांगी, संकुचित और छोटी हैं। 'मुक्तिपथ' तथा उसके बाद जो उपन्यास लिखे गये, उनमें परिदृष्य का विस्तार और सामाजिकता का समावेश दिखाई पड़ता है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा, ईमानदारी और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व बना लिया। ऐतिहासिक दृष्टि से यशपाल को प्रेमचन्द उपन्यास-परम्परा की अगली कड़ी के रूप में माना जा सकता है। यशपाल का प्रारम्भिक जीवन क्रांतिकारी दल से सम्बद्ध था। वे इसके सक्रिय सदस्य थे, इसके लिए उन्हें चौदह वर्ष का कारावास भी मिला। कारावास काल में उनका सारा समय अध्ययन-मनन में व्यतीत हुआ। इसी समय मार्क्सवादी विचारधारा का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। साहित्य के क्षेत्र में उतरने पर उन्होंने इसी विचारधारा को आगे बढ़ाया। उनके उपन्यास हैं। 'अमिता', 'दिव्या', 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'पार्टी कामरेड' (1946), 'मनुष्य के रूप में' (1949), 'झूठा सच'–प्रथम भाग, 'वतन और देश' (1958), दूसरा भाग 'देश का भविष्य' (1960)।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' यशपाल की परम्परा में आते हैं। चढ़ती धूप, नई इमारत, उल्का और मरुप्रदीप उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। पर इनमें द्वन्द्वात्मक चेतना पूरे तौर पर नहीं उभरती। भगवतीचरण वर्मा प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं। सन् '50 तक यह परम्परा चलती रही प्रेम चन्द ने अपने साहित्य में समसामयिक समस्याओं को चित्रित किया और वर्मा जी परिवर्तमान ऐतिहासिक धारा को मध्यमवर्ग के माध्यम से अंकित करते रहे हैं। मुख्यतः '40 के बाद लिखे गये उपन्यासों में। इनमें टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाव' 'भूले-बिसरे-चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गुसाईं', मुख्य हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क को प्रेमचन्द-परम्परा का उपन्यासकार कहा जाता है। पर वे समग्र रूप से प्रेमचन्दीय परम्परा से नहीं जुड़ पाते। जहाँ तक मध्यवर्गीय परिवारों और व्यक्तियों की

परिस्थितियों, समस्याओं और परिवेश का सम्बन्ध है, वहाँ तक वे प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं प्रेमचन्द की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी, इसलिए प्रामाणिक भी। प्रेमचन्द के वैविध्य और जीवन-चेतना का इनमें अभाव है। 'सितारों के खेल' के बाद इनके कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। गिरती दीवारें, 'गर्म राख' 'बड़ी-बड़ी आँखे', पत्थर अल पत्थर', 'शहर में घूमता आइना' और 'एक नन्हीं किन्दील'। 'गिरती दीवारें' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। गर्म राख, बड़ी-बड़ी आँखे, पत्थर अल पत्थर सुगठित उपन्यासों की श्रेणी में रखे जायेंगे। अन्तिम दोनों उपन्यास 'गिरती दीवारें' का विस्तार हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के आवर्त में पड़ा व्यक्ति कभी अपने को उनके अनुरूप ढालता है कभी उनसे आहत होता है, कभी छोटे-मोटे सुधारों के द्वारा समाज का परिष्कार करता है। वहाँ समाज प्रधान है, व्यक्ति गौण। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने व्यक्ति की सनकों, अन्तर्द्वंद्वों को समाज से अधिक महत्व दिया है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक सम्बन्धों को चित्रित किया गया है। 'नवाबी मसनद', 'सेठ बाँकेमल', 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' उनके प्रकाशित उपन्यास हैं। अपने विस्तार और गहराई के कारण 'बूंद और समुद्र' विशेष महत्वपूर्ण बन पड़ा है।

'50 के बाद के दशक को आंचलिक उपन्यासों का दशक मान लिया जाता है। वस्तुतः इस समय के उपन्यासों वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनों हैं। वैयक्तिक इसलिए कि वह पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्त होकर खुले वातावरण में सांस लेना चाहता है, सामाजिक इसलिए कि अभी समाज को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने में लम्बी मंजिल तय करनी थी। देश के विभाजन के कारण जो नई समस्याएं उत्पन्न हुई, उन्हें भी औपन्यासिक रूप दिया गया। प्रवृत्तिक दृष्टि से इस दशक के उपन्यासों को तीन प्रवृत्तियों में बांटा जा सकता है। ग्रामांचल के उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास और प्रयोगशील उपन्यास।

ग्रामांचल को ही समग्रता से चित्रित करने वाले उपन्यासों को ही आंचलिक कहकर आंचलिकता के अर्थ को सीमित कर दिया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' के प्रकाशन के पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952) प्रकाशित हो चुका था। पर इसे आंचलिक नहीं कहा गया। यद्यपि इसमें आंचलिकता का कम रंग नहीं है। नागार्जुन के उपन्यासों में दरभंगा-पूर्णिया जिले

का राजनीतिक-सांस्कृतिक साक्षात्कार होता है। इनका मार्क्सवादी दृष्टिकोण गाँव की कहानी पर आरोपित प्रतीत होता है। कथानक स्वयं विकसित न होकर पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार चलता है। इसके फलस्वरूप उपन्यासों की सर्जनात्मकता शिथिल और अवरुद्ध हो जाती है। 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दु:खमोचन', 'वरुण के बेटे' आदि उनके प्रकाशित उपन्यास हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों को ही सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी गयी क्योंकि स्वयं रेणु ने ही 'मैला आंचल' को आंचलिक उपन्यास कहा। 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद 'परती परिकथा' प्रकाशित हुआ।

उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य' (1955) में बम्बई के पश्चिमी तट पर बसे हुए बरसोवा गांव के मछुओं की जीवन-गाथा वर्णित है। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' में जरायमपेशा नटों की जिन्दगी को उजागर किया गया है। नट-जीवन और आधुनिक जीवन की असंगतियों को चित्रित करते हुए लेखक ने उज्ज्वल भविष्य का संकेत किया है कि शोषण की घुटन सदैव नहीं रहेगी। भैरवप्रसाद गुप्त का 'सत्ती मैया का चौरा' मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखा गया ग्रामांचल का ही उपन्यास है।

सातवें दशक में भी ग्रामांचल को आधार बना कर राही मासूम रजा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र आदि ने उपन्यास लिखे। राही का 'आधा गांव' शिया मुसलमानों की जिन्दगी पर लिखा गया है और शिवसाद सिंह की 'अलग-अलग वैतरणी' में आधुनिकता-बोध को सन्निविष्ट करने का प्रयास किया गया है। किन्तु इनके मूल स्वर त्रासद (ट्रेजिक) हैं। रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' तथा 'सूखता हुआ तालाब' और देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये' ग्रामांचलीय उपन्यास हैं। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' पारंपरिक अर्थ में उपन्यास नहीं हैं। यद्यपि इसकी कथा ग्रामांचल से सम्बद्ध है। फिर भी यह आंचलिक नहीं है। रिपोर्ताज शैली में लिखे गये इस उपन्यास में स्वतंत्र देश की नवीन व्यवस्थाओं का मखौल उड़ाया गया है।

छठे दशक में देवराज मुख्यत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार की श्रेणी में आते हैं। धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास है, यद्यपि वह पांचवे दशक में प्रकाशित हुआ। भारती और देवराज दोनों के उपन्यासों का वातावरण महाविद्यालयीय है। 'गुनाहों का देवता' अपनी कैशोर्य भावुकता तथा रूमानियत के कारण काफी लोकप्रिय हुआ। 'पथ की खोज', 'बाहर

भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी' और 'मैं, वे और आप' देवराज के उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों की मूलवर्तिनी धारा है, विवाह के बाहर का प्रेम।

मन्मथनाथ गुप्त, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र यादव आदि नवीन सामाजिक चेतना के उपन्यासकार हैं। भैरवप्रसाद गुप्त के 'मशाल', 'गंगा मैया', 'सती मैया का चौरा', अमृतराय के 'बीज', 'नागफनी का देश', 'हाथी के दांत' संघर्ष और प्रगति के मिथक के सूचक हैं। लक्ष्मीनारायण लाल के 'धरती की आँखें', 'काले फूलों का पौधा', रूपाजीवा' में उपर्युक्त स्तर की सामाजिक चेतना को उभारने की कोशिश है। 'काले फूलों का पौधा' चरित्र-चित्रण, संस्कृति-संघर्ष और नव्यतर तकनीक के कारण विशिष्ट बन पड़ा है।

'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग' और 'एक इंच मुस्कान' राजेन्द्र यादव के उपन्यास हैं। 'एक इंच मुस्कान' यादव और मन्नू भंडारी का सहयोगी लेखन है। इसमें खंडित व्यक्तित्त्व वाले आधुनिक व्यक्तियों की प्रेम-त्रासदी (ट्रेजिडी) है। आधुनिक जीवन की इस त्रासदी को अंकित करने के कारण यह उपन्यास यादव के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कहीं अधिक समकालीन और महत्वपूर्ण है।

कविता में नए प्रयोगों के साथ-साथ कहानी-उपन्यास आदि में भी नये प्रयोग हुए हैं। अब कहानी का तत्त्व क्षीण हो गया है, कथानक का पुराना रूप विघटित होकर नया हो गया है। अब जिन्दगी पूरे तौर पर विश्लेषित न होकर चेतना प्रवाह, स्वप्न सृष्टि के साथ जुड़ गई है, प्रतीक, कालांतर आदि के द्वारा उपन्यासों में नए शिल्प के दर्शन हुए हैं। इस प्रयोग-संपर्क में प्रभाकर माचवे के परन्तु', 'साँचा' और आभा', भारतीका 'सूरज का सांतवा घोड़ा', गिरधर गोपाल का 'चाँदनी रात के खंडहर', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल', नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' आदि अनेक प्रकार की विसंगतियों से भरे हुए प्रयोगशील उपन्यास हैं। उद्योगीकरण, महानगरीय सभ्यता, बदले हुए मानसिक परिवेश और भ्रष्ट व्यवस्था के कारण आज व्यक्ति यांत्रिक, अजनबी, अकेला या विद्रोही हो गया है। इसकी अभिव्यक्ति मुख्यत: साठोत्तरी साहित्य में होती है, भले ही उपन्यास, नाटक की अपेक्षा इसका तेवर कविता और कहानी में ही अधिक तेजस्वितापूर्ण दिखाई देता है। इस प्रकार के उपन्यासों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

(1) यौन विकृतियों में पनाह खोजने वाले उपन्यास: मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अन्तराल', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स' राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' और 'शहर था शहर नहीं था', श्री कान्त वर्मा का 'दूसरी बार', ममता कालिया का 'बेघर', गिरिराज किशोर का 'यात्राएं' मणिमधुकर का 'सफेद मेमने', कृष्णा सोबती का' सूरजमुखी अंधेरे के' आदि उपन्यास इसी कोटि के हैं। इन उपन्यासों के प्राय: सभी नायक मानसिक दृष्टि से अनिर्णयात्मक, आत्म-निर्वासित और नपुंसक हैं। वे मुक्त होने की प्रक्रिया में ऐसी उलझन में फंस जाते हैं, जहां से उन्हें निष्कृति नहीं मिलती। इन उपन्यासों से आधुनिकता का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें स्त्री-शरीर 'नशे' या 'ड्रग' का काम करता है। राकेश को छोड़कर शेष उपन्यासों में प्रामाणिकता की भी कमी है।

(2) दी हुई मानवीय स्थितियों में बेमेल व्यक्तियों को चित्रित करने वाले उपन्यास: इस श्रेणी में उषा प्रियंवदा का 'रुकोगी नहीं राधिका' और मन्नू भंडारी के 'आपके बंटी' की गणना की जाएगी। इन उपन्यासों की आधारभूमियां ठोस और प्रामाणिक हैं।

(3) व्यवस्था की घुटन को अपनी नियति मानने या उसके विरुद्ध युद्ध करने वाले उपन्यास: नरेश मेहता का 'वह पथ बन्धु था', गोविन्द मिश्र का वह 'अपना चेहरा', बदीउज्जमा का 'एक चूहे की मौत', काशीनाथ सिंहका 'अपना मोर्चा,नरेन्द्र कोहली का 'आश्रितों का विद्रोह' आदि उपन्यास इस कोटि के अन्तर्गत आते हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने भी कई प्रयोगशील और प्रतिबद्ध उपन्यास लिखे हैं।

इनके अतिरिक्त गिरिराज किशोर का 'जुगलबन्दी' और 'ढाई आखिर', लेख बख्शी का 'वैशाखियों वाली इमारत', देवराज उपाध्याय का 'दूसरा सूत्र' और 'अजय की डायरी' कमलेश्वर का 'डाक बंगाला' और 'काली आंधी' और मन्नू भंडारी का 'महाभोज' श्री लाल शुक्ल का 'मकान' शिवप्रसाद सिंह का 'नीला चाँद' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। रमेश चौधरी आरिगमूडि, ओंकार शरद, मार्कण्डेय, मुद्राराक्षस, आनन्द प्रकाश चौबे, श्रीलाल शुक्ल, मोहन सिंह सेंगर, सत्येन्द्र गुप्त, राजेन्द्र अवस्थी, हंसराज रहबर, रामदरश मिश्र, मनहर चौहान, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, शिवानी आदि उपन्यास के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे हैं। यूरोप के पुराने और नये उपन्यासों के अनुवाद का कार्य भी हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास का युग प्रयोग का युग रहा। जीवन-मरण सम्बन्धी पुराने सभी मत मतान्तरों को चुनौती दी गई है। महानगरीय अकेलापन, अत्यधिक निकटता में अजनबी पन, विसंगति, संत्रास यांत्रिक तटस्थता आदि का चित्रण किया गया है। बाह्य यथार्थ की अपेक्षा आन्तरिक यथार्थ को अधिक महत्ता दी गई है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ लाल', लक्ष्मी नारायण लाल का 'हरा समन्दर गोपी चन्दर' जैसे आधुनिक उपन्यासों में कथा का ह्रास हुआ है कथानक का नहीं। उपन्यासों में पीढ़ियों का वैचारिक मतभेद, पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बाप के सम्बन्ध में दोहरा व्यक्तित्त्व, अन्त:बाह्य संघर्ष, मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष, कृषकों का जागरूक होना पुलिस की धांधलियाँ, महाजनों के धन शोषण के तरीके महानगर, कस्बे और गांवों के परिवर्तन को समग्रता में रेखांकित किया गया है। उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली, आत्म कथात्मक शैली, संकेत शैली, प्रतीक शैली द्वारा मानवीय संवेदना को उभारा गया है। विषय और शैली दोनों दृष्टियों से आज के उपन्यास समृद्ध दिखाई देते हैं।

4

भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। भारतेन्दु का व्यक्तित्त्व प्रभावशाली था, वे सम्पादक और संगठनकर्ता थे, वे साहित्यकारों के नेता और समाज को दिशा देने वाले सुधारवादी विचारक थे, उनके आसपास तरुण और उत्साही साहित्यकारों की पूरी जमात तैयार हुई। अतः इस युग को भारतेन्दु-युग की संज्ञा देना उचित है। डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि 'प्राचीन से नवीन के संक्रमण काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारतवासियों की नवोदित आकांक्षाओं और राष्ट्रीयता के प्रतीक थे, वे भारतीय नवोत्थान के अग्रदूत थे।'

जिस समय खड़ी बोली गद्य अपने प्रारिम्भक रूप में थी, उस समय हिन्दी के सौभाग्य से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्होंने राजा शिवप्रसाद तथा राजा लक्ष्मण सिंह की आपस में विरोधी शैलियों में समन्वय स्थापित किया और मध्यम मार्ग अपनाया।

इस काल में हिन्दी के प्रचार में जिन पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष योग दिया, उनमें उदन्त मार्तण्ड, कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन अग्रणी हैं। इस समय हिन्दी गद्य की सर्वांगीण प्रगति हुई और उसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना, जीवनी आदि विधाओं में अनूदित तथा मौलिक रचनाएं लिखी गयीं।

भारतेन्दु मण्डल

बहुमुखी प्रतिभा के धनी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रभूत साहित्य रचा एवं अनेक साहित्यकारों को अपनी प्रतिभा से प्रभावित एवं प्रेरित किया। इन लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाचरण गोस्वामी एवं रायकृष्णदास प्रमुख हैं। इन्होंने हिन्दी-साहित्य को समृद्ध बनाया। यही भारतेन्दु का समकालीन एवं सहयोगी साहित्यकार मण्डल 'भारतेन्दु मण्डल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हिन्दी साहित्य में यह समय भारतेन्दु युग के नाम से अभिहित किया जाता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885), बाबा सुमेर सिंह, बदरी नारायण प्रेमघन (1855-1923), प्रताप नारायण मिश्र (1856-1894), राधाकृष्ण दास (1865-1907), अम्बिका दत्त व्यास (1858-1900) और ठाकुर जगमोहन सिंह (1857-1899) इस युग के प्रमुख कवि हैं। अन्य कवियों में रामकृष्ण वर्मा, श्री निवासदास, लाला सीताराम, राय देवी प्रसाद, बालमुकुन्द गुप्त, नवनीत चौबे आदि हैं।

भारतेन्दुयुगीन कविता की मुख्य विशेषताएँ

इस युग की अधिकांश कविता वस्तुनिष्ठ एवं वर्णनात्मक है। छंद, भाषा एवं अभिव्यंजना पद्धति में प्राचीनता अधिक है, नवीनता कम। खड़ी बोली का आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु कविता के क्षेत्र में ब्रज ही सर्वमान्य भाषा रही।

भारतेन्दुयुगीन कविता की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

देश-भक्ति और राष्ट्रीय-भावना–इस काल की कविता की मुख्य प्रवृत्ति देशभक्ति की है। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारत का शासन कंपनी के हाथ ब्रिटिश सरकार ने ले लिया था, जिससे जनता को शांति और सुरक्षा की आशा बँधी। इसलिए कविता में राज-भक्ति का स्वर सुनाई पड़ता है। इसमें ब्रिटिश शासकों की गुलामी के साथ-साथ देश की दशा सुधारने की प्रार्थना भी है। जैसे,

करहु आज सों राज आप केवल भारत हित,
केवल भारत के हित साधन में दीजे चित। (प्रेमघन)

इस युग के कवि देश की दयनीय दशा से उत्पन्न क्षोभ के कारण ईश्वर से प्रार्थना करते हैं-

कहाँ करुणानिधि केशव सोए?
जानत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए। (भारतेन्दु)

तो कहीं-कहीं उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए स्वतंत्रता का महत्व बताया है-

सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहिं चुप लातै खाव।
राजा करै सो न्याव है, पाँसा परे सो दाँव॥

जनवादी विचारधारा: भारतेन्दुयुगीन कविता की दूसरी प्रमुख विशेषता है- जनवादी विचारधारा। डॉ. रामविलास शर्मा के मतानुसार भारतेन्दु युग की जनवादी भावना उसके समाज-सुधार में समायी हुई है। इस युग का साहित्य भारतीय समाज के पुराने ढाँचे से संतुष्ट न होकर उसमें सुधार चाहता था। इस युग के कवियों ने समाज के दोष युक्त अंग की आलोचना की है-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
भारतेन्दु मेम-मेहरानी के बारे में कहते हैं-
का भवा, आवा है ए राम जमाना कैसा।
कैसी महरारू है ई, हाय जमाना कैसा।

भारतेन्दु युगीन कविता में साम्प्रत समाज की दशा का, विदेशी सभ्यता के संकट का, पुराने रोजगार के बहिष्कार का स्वर दिखाई देता है। इस युग में दो विचार-धाराएँ दिखाई देती हैं–1.पुराणवादी परंपरा के समर्थकों की और 2. आधुनिक व्यापक दृष्टि वालों की। किन्तु भारतेन्दु ने मध्यम मार्ग अपनाया था। भारतेन्दु ने सामाजिक दोषों, रूढ़ियों, कुरीतियों का घोर विरोध किया है। उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाले ढोंग की पोल खोल दी है। छुआछूत के प्रचार के प्रति क्षोभ के स्वर कवि में हैं। प्रतापनारायण मिश्र स्त्रियों की शिक्षा के पक्षपाती हैं, बाल-विवाह के विरोधी तथा विधवाओं के दु:ख से दु:खी है।

प्राचीन परिपाटी की कविता: भक्ति और शृंगार-इस युग में प्राचीन परिपाटी का कविता का सृजन हुआ था। भक्ति और शृंगार की परंपराएं इस युग तक चलती रही, परिणाम भारतेन्दु तथा अन्य कवियों ने इसका अनुसरण किया। कुछ कवियों ने नख-शिख वर्णन किया तो कुछ ने दान-लीला, मृगया की रीतिकालीन पद्धति अपनायी। इस प्रकार इस युग की कविता में भक्ति,शृंगार एवं प्रेम-वर्णन के सुंदर नमूने मिलते हैं। जैसे,

ब्रज के लता पता मोहि कीजै।
गोपी पद पंकज पावन की रव जायैं सिर घीजै॥ (भारतेन्दु)

साजि सेज रंग के महल में उमंग भरी।
पिय गर लागी काम-कसक मिटायें लेत।

उन्होंने रीति कालीन आचार्यों की तरह स्वरति, समरति, चित्ररति, वस्त्ररति, पपड़ीपन आदि यौन-विकृतियों के चित्र वर्णित किये हैं।

प्रेम-वर्णन- सखी ये नैना बहुत बुरे।
तब सों भये पराये, हरि सों जब सों जाइ जुरे।
मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक बुरे।।

कलात्मकता का अभाव–भारतेन्दुयुगीन कविता की चौथी मुख्य प्रवृत्ति है- कलात्मकता का अभाव। नवयुग की अभिव्यक्ति करने वाली यह कविता कलात्मक न हो सकी, जिसके कारण ये हैं-

(1) इस काल में विचारों का संक्रांति काल था जिसके कारण में इसमें कलात्मकता का अभाव रहा।
(2) इस युग में कवि समाचार-पत्रों द्वारा अपनी कविता का प्रचार करते थे, इसलिए उन्हें इसे काव्यपूर्ण बनाने की चिंता नहीं थी।
(3) भाषा का अस्तित्त्व और नागरी आंदोलन के कारण भी कविता कलात्मकता धारण न कर सकी। क्योंकि इस आंदोलन के लिए कवियों को जनमत जागरित करना था जो कि जनवाणी से ही संभव था।

कहने का मतलब यह है कि इस युग के कवि तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं भाषा संबंधी समस्याओं में इतने व्यस्त थे कि वे नवयुग की चेतना को कलात्मक एवं प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त न कर सके और उसमें सर्वत्र यथार्थ की अनुभूति की सच्चाई सरल भाषा-शैली में अभिव्यक्त हुई। जैसे,

खंडन-मंडन की बातें सब करते सुनी सुनाई।
गाली देकर हाय बनाते बैरी अपने भाई।।
हैं, उपासना भेद न उसके अर्थ और विस्तार।
सभी धर्म के वही सत्य सिद्धांत न और विस्तारो।।

काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग–इस काल की भाषा प्रमुख रूप से ब्रजभाषा ही रही। खड़ीबोली गद्य तक ही रही थी। किन्तु इस युग के अंतिम दिनों में खड़ीबोली में कविता करने का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था, जिसके कारण द्विवेदी युग में कविता के क्षेत्र में खड़ीबोली का प्रयोग शुरू

हो जाता है। बद्रीनारायण चौधरी, अंबिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों ने भारतेन्दु काल में खड़ीबोली में कविता करने का प्रयास किया था। जैसे-

हमें जो हैं चाहते निबाहते हैं प्रेमघन,
उन दिलदारों से ही,मेल मिला लेते हैं। (प्रेमघन)
भारतेन्दु की खड़ी बोली का एक उदाहरण देखें-
साँझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है।

हम सब एक दिन उड़ जायेंगे यह दिन चार सबेरा है। इससे स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग में खड़ी बोली में उच्चकोटि की रचना नहीं मिलती। इसका कारण स्पष्ट है कि इस युग ब्रज भाषा पर रिझे हुए थे। इस प्रकार भाव-व्यंजना का प्रधान माध्यम ब्रजभाषा ही रही।

हास्य-व्यंग्य एवं समस्या पूर्ति: इस युग में हास्य-व्यंग्यात्मक कविताएँ भी काफी मात्रा में लिखी गई। सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों तथा पाश्चात्य संस्कृति पर करारे व्यंग्य किए गए। इस दृष्टि से प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र की रचनाएँ सर्वोत्तम हैं। समस्या-पूर्ति इस युग की काव्य-शैली थी और उनके मंडल के कवि विविध विषयों पर तत्काल समस्यापूर्ति किया करते थे। रामकृष्ण वर्मा, प्रेमघन, ब्रेनी ब्रज आदि कवि तत्काल समस्या-पूर्ति के लिए प्रसिद्ध थे।

प्राचीन छंद-योजना: भारतेन्दु युग में कवियों ने छन्द के क्षेत्र में कोई नवीन एवं स्वतंत्र प्रयास नहीं किया। इन्होंने परम्परा से चले आते हुए छन्दों का उपयोग किया है। भक्ति और रीति काल के कवित्त, सवैया, रोला, दोहा, छप्पय आदि छंदों का इन्होंने प्रयोग किया। जब कि जातीय संगीत का सादारम लोगों में प्रचार करने के लिए भारतेन्दु ने कजली, ठुमरी, खेमटा, कहरवा, गजल, श्रद्धा, चौती, होली, सांझी, लावनी, बिरहा, चनैनी आदि छन्दों को अपनाने पर जोर दिया था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस युग में परम्परा और आधुनिकता का संगम है। कविता की दृष्टि से यह संक्रमण का युग था। कवियों के विचारों में परिवर्तन हो रहा था। परम्परागत संस्कारों का पूर्ण रूप से मोहभंग हुआ भी न था और साथ में नवीन संस्कारों को भी वे अपना रहे थे। काशी नवजारण का प्रमुख केन्द्र था और यहां का साहित्यिक परिवेश भी सर्वाधिक जागरूक था। तत्कालीन परिवर्तनशील सामाजिक मूल्यों का भी उन पर प्रभाव पड़ रहा था।

भारतेन्दुकालीन कथा

कथा साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास एवं कहानी को ग्रहण किया जाता है। भारतेन्दु काल में इन दोनों का लेखन प्रारम्भ हुआ, जिनके पृथक-पृथक विवेचन निम्नलिखित है।

उपन्यास

भारतेन्दु काल में हिन्दी की उप विधा का विकास हुआ। पण्डित बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' इस समय का उपदेश-प्रधान आदर्शवादी उपन्यास है। इसमें उस परिपूर्ण 'यामा-स्वप्न' उपन्यास काव्य-सौन्दर्य से भरा हुआ है। अम्बिकादत्त व्यास का 'आश्चर्य वृत्तान्त', बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रहमचारी' और राधाकृष्णदास का 'नि:सहाय हिन्दू' इस काल के अन्य उपन्यास हैं।

कहानी

कहानी का क्रमबद्ध विकास भारतेन्दु युग से होता है। इस युग में केवल बंगला तथा अंग्रेजी कहानियों के अनुवाद हुए। मौलिक रूप में जो कहानियां लिखी गईं, उन पर इनका प्रभाव दिखाई देता है। भारतेन्दु जी ने एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न नामक कहानी लिखी, जिसे अधिकांश विद्वान हिन्दी की प्रथम साहित्यिक तथा मौलिक कहानी मानते हैं। सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ-साथ हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियां प्रकाश में आयीं। सरस्वती के प्रारम्भिक कहानी लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी, पार्वतीनन्दन, बंग महिला, रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. भगवानदास आदि प्रमुख हैं।

नाटक

इस युग में मौलिक तथा अनूदित दोनों ही प्रकार के नाटक लिखे गये। भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में चन्द्रावली, नीलदेवी, भारत-दुर्दशा प्रमुख हैं। अनूदित नाटकों में कुछ बंगला से और कुछ संस्कृत से अनूदित हैं। इस काल में प्रतापनारायण मिश्र ने गौ संकट, कलि प्रभाव, ज्वारी-ख्वारी, हमीर-हठ, राधाकृष्णदास ने महारानी पद्‌मावती, महाराणा पताप, दुखिनी बाला, बाबू गोकुलचन्द ने बूढ़े मुंह मुहासे, लोग चले तमाशे, आदि नाटक लिखे। श्रीनिवास दास, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास आदि इस काल के अन्य नाटककार हैं।

निबन्ध

हिन्दी में निबन्ध साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु युग की पत्र-पत्रिकाओं से होता है। प्रायः तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उनके सम्पादक उस समय की सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर लेख लिखा करते थे। भारतेन्दु ने सर्वप्रथम कविवचन सुधा तथा हरिश्चन्द्र मैगजीन में साहित्यिक ढंग से निबन्ध लिखे। इसके बाद पं प्रतापनारायण मिश्र तथा पं बालकृष्ण भट्ट तथा बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन ने क्रमषः हिन्दी प्रदीप, ब्राहमण तथा आनन्द कादम्बिनी नामक पत्रिकाओं में निबन्ध लिखे, जिन्हें साहित्यिक कोटि के निबन्ध कहा जाता है। इसी समय पं.बालकृष्ण भट्ट ने विनोदपूर्ण तथा गम्भीर शैली में विवेचनात्मक, आलोचनात्मक तथा भावात्मक निबंध लिखे। बालमुकुन्द गुप्त, प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी इस युग के अन्य प्रसिद्ध निबन्ध लेखक हैं।

आलोचना

भारतेन्दु युग में गद्य के अन्य अंगों के साथ-साथ आलोचना विधा भी नया रूप धारण कर आगे बढ़ी। उसके स्वरूप और प्रकार में नये तत्त्वों का समावेश हुआ। साहित्यिक विवेचना में बौद्धिकता की प्रधानता हो गयी। उपन्यास, कहानी, निबन्ध, नाटक आदि के साथ-साथ उनकी आलोचनाएं भी लिखी जाने लगीं। इस नवीन आलोचना के विकास में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का प्रमुख हाथ रहा। इस समीक्षा के प्रवर्त्तकों में भारतेन्दु, प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट, श्री निवास दास, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री आदि प्रसिद्ध हैं।

'आनन्द कादम्बिनी' नामक पत्रिका के द्वारा प्रेमघन ने पुस्तकों की विस्तृत तथा गम्भीर आलोचना प्रारम्भ की। इन्होंने श्रीनिवास दास के संयोगिता स्वयंवर नाटक की बड़ी विशद् और कड़ी आलोचना लिखकर प्रकशित की।

5

प्रसाद-युगीन

प्रसाद का आगमन नाट्य रचना में व्याप्त गतिरोध को समाप्त करने वाले युग-विधायक व्यक्ति के रूप में हुआ। उन्होंने एक प्रवर्त्तक के रूप में कविता, नाटक तथा निबंध आदि सभी क्षेत्रों में युग का प्रतिनिधित्व किया। डॉ. गुलाबराय का कहना है, 'प्रसाद जी स्वयं एक युग थे।' उन्होंने हिन्दी नाटकों में मौलिक क्रांति की। उनके नाटकों को पढ़कर लोग जितेन्द्र लाल के नाटकों को भूल गये। वर्तमान जगत के संघर्ष और कोलाहलमय जीवन से ऊबा हुआ उनका हृदयस्थ कवि उन्हें स्वर्णिम आभा से दीप्त दूरस्थ अतीत की ओर ले गया। उन्होंने अतीत के इतिवृत्त में भावना का मधु और दार्शनिकता का रसायन घोल कर समाज को एक ऐसा पौष्टिक अवलेह दिया जो ह्रास की मनोवृत्ति को दूर कर उसमें एक नई सांस्कृतिक चेतना का संचार कर सके। उनके नाटकों में द्विजेन्द्रलाल राय की सी ऐतिहासिकता और रवि बाबू की-सी दार्शनिकतापूर्ण भावुकता के दर्शन होते हैं।

प्रसाद की आरम्भिक नाट्य कृतियां-सज्जन (1910), 'कल्याणी परिणय (1912), प्रायश्चित (1912), करुणालय (1913) और राज्यश्री (1918), द्विवेदी-युग की सीमा के अंतर्गत आती हैं। प्रसाद के इन नाटकों में उनका परम्परागत रूप तथा प्रयोग में भटकती हुई नाट्य दृष्टि ही प्रमुखता से उभर कर सामने आती है। नाटक रचना का प्रारम्भिक काल होने के कारण इन कृतियों में प्रसाद की नाट्य कला का स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया है, वह अपनी दिशा खोज

रही है। यह दिशा उन्हें विशाख (1921), अजातशत्रु (1922), कामना (1927), जनमेजय का नागयज्ञ (1926), स्कन्दगुप्त (1928), एक घूँट (1930), चन्द्रगुप्त (1931) और ध्रुवस्वामिनी (1933) में प्राप्त हुई। इन नाटकों में प्रसाद जी ने अपनी गवेषणा शक्ति और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया।

'सज्जन' का कथानक महाभारत की एक घटना पर आधारित है। इस नाटक में प्रसाद जी ने परम्परागत मान्यताओं को स्वीकार करते हुए भारतेन्दु-कालीन नाट्य-प्रणाली को अपनाया है। 'कल्याणी: परिणय' भी प्रसाद का प्रारम्भिक प्रयास है, जिसका अंतर्भाव उन्होंने बाद में 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के रूप में किया है। 'करुणालय' बंगला के 'अमित्रक्षर अरिल्ल छंद' की शैली पर लिखा गया गीति-नाट्य है। 'प्रायश्चित' हिन्दी का प्रथम दु:खांत मौलिक रूपक है। शिल्प-विधान की दृष्टि से प्रसाद ने इसमें सर्वप्रथम पाश्चात्य नाट्य-शिल्प को अपनाने का प्रयास किया है। सही अर्थों में 'राज्यश्री' प्रसाद का प्रथम उत्कृष्ट ऐतिहासिक नाटक है। 'विशाख' प्रसाद की पूर्ववर्ती और परवर्ती नाटकों में एक विभेदक रेखा है। इनका कथानक साधारण होते हुए भी देश की तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति से ओतप्रोत है यद्यपि प्रसाद के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक ही हैं, परन्तु इतिहास की पीठिका में वर्तमान की समस्याओं को वाणी देने का विचार प्रसाद ने सर्वप्रथम इसी नाटक में व्यक्त किया है। भूमिका में वे लिखते हैं मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने में बहुत प्रयास किया है और वह वर्तमान स्थिति परतंत्र भारत के राजनैतिक सामाजिक परिवेश से जुड़ी हुई थी। अपनी सत्ता को स्थायी बनाये रखने के लिए ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीयों में फूट डालने के लिए अपनाये गये साम्प्रदायिकता, प्रांतीयतावाद के हथकण्डे प्रसाद से छिपे नहीं थे। अत: इतिहास की पीठिका पर उन्होंने वर्तमान के इन प्रश्नों को यथार्थ की दृष्टि से उठाते हुए समन्वयवादी आदर्श समाधान प्रस्तुत किये। युगीन साम्प्रदायिक प्रभावों को आत्मसात करते हुए प्रसाद ने अपने नाटकों में ब्राह्मण-बौद्ध धार्मिक संघर्षों को रूपायित किया है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक आर्यों और नागजाति तथा आर्य-नाग-संघर्ष की पृष्ठभूमि में रचा गया है। 'अजातशत्रु' में आर्य जनपदों का पारस्परिक संघर्ष परोक्ष रूप में युगीन साम्प्रदायिक संघर्षों का ही प्रतिरूप है। इस प्रकार अपनी इन प्रौढ़ कृतियों में प्रसाद ने जातीय, क्षेत्रीय तथा वैयक्तिक भेदों को मिटाकर व्यापक राष्ट्रीयता का आह्वान किया है। इस दृष्टि से

'स्कन्दगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'कामना' और 'एक घूंट' भिन्न कोटि के नाटक हैं। इनकी कथावस्तु ऐतिहासिक नहीं है। कथ्य की दृष्टि से भी ये भिन्न हैं। इनमें प्रसाद ने भौतिक विलासिता का विरोध किया है। 'कामना' में विभिन्न भावों को पात्र रूप में प्रस्तुत किया गया है, इसलिए उसे प्रतीक नाटक कहा जा सकता है। 'एक घूट' एकांकी है और उसमें प्रसाद ने यथार्थ और आदर्श की स्थिति, जीवन का लक्ष्य और स्त्री-पुरुष की प्रेम-भावना के सामंजस्य को चित्रित किया है। 'ध्रुवस्वामिनी प्रसाद की अन्तिम कृति है। अन्य नाटकों में प्रसाद विशेष रूप से राजनैतिक प्रश्नों के यथार्थ से जूझते रहे हैं, परन्तु 'ध्रुवस्वामिनी' में सामाजिक जीवन की वर्तमान युगीन नारी समस्या पर बौद्धक विचार विमर्श कर यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया है। नारी-जीवन की इस सामाजिक समस्या के प्रति प्रसाद का आकर्षण वर्तमान नारी-आन्दोलन का ही परिणाम है। आज के समाज में नारी की स्थिति, दासता की शृंखला से उसकी मुक्ति, विशिष्ट परिस्थितियों में पुनर्विवाह की समस्या को बड़े साहस, संयम, तर्क और विचार एवं धर्म की पीठिका पर स्थित करके इस नाटक में सुलझाया गया है।

स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने हिन्दी नाटक की प्रवहमान् धारा को एक नए मोड़ पर लाकर खड़ा किया। वे एक सक्षम साहित्यकार थे। उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध ममता थी। उन्हें विश्वास था कि भारतीय संस्कृति ही मानवता का पथ प्रशस्त कर सकती है। इसी कारण अपने नाटकों द्वारा प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति के भव्य रूप की झांकी दिखाकर राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ अपने देश के अधुनातन निर्माण की पीठिका भी प्रस्तुत की है। भारतेन्दु ने अपने नाटकों में जिस प्राचीन भारतीय संस्कृति की स्मृति को भारत की सोई हुई जनता के हृदय में जगाया था, प्रसाद ने नाटकों में उसी संस्कृति के उदात्त और मानवीय रूप पर अपनी भावी संस्कृति के निर्माण की चेतना प्रदान की। पर यह समझना भी भूल होगी कि उन्होंने केवल भारतीय संस्कृति के गौरव-गान के लिए ही नाटकों की रचना की। वस्तुतः उनका नाट्य साहित्य ऐतिहासिक होते हुए भी सम-सामयिक जीवन के प्रति उदासीन नहीं है, वह प्रत्यक्ष को लेकर मुखर है और उनमें लोक-संग्रह का प्रयत्न है, राष्ट्र के उद्‌बोधन की आकांक्षा है।

प्रसाद से पूर्व साहित्यिक नाटकों का अभाव था, जिस समय भारतेन्दु ने नाटक-रचना की शुरुआत की, उनके सामने पहले से निश्चित, प्रतिष्ठित हिन्दी

का कोई रंगमंच न था। अत: उन्होंने संस्कृत, लोकनाटक एवं पारसी रंगमंच शैली की विभिन्न रंगपरम्पराओं को सुधारवादी यथार्थ कथ्य के अनुरूप मोड़ देने का स्तुत्य प्रयास किया। प्रसाद के युग तक नाटकों में पारसी रंगशिल्प का स्वरूप निर्धारित हो चुका था। अत: पारसी रंगमंच की अतिरंजना, चमत्कार, फूहड़ता, शोखभाषा, चुलबुले संवाद, शेरोशायरी के घटियापन की प्रतिक्रिया में प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक, राष्ट्रीय नाटकों की रचना की। दार्शनिकता, सांस्कृतिक बोध, उदात्त कल्पना, काव्यमय अलंकृति, दुरूह भाषा का विन्यास उनकी उपलब्धि था। फिर भी साहित्यिक और कलात्मक वैशिष्ट्य होते हुए भी प्रसाद में नाट्य शिल्प के अनेक दोष दिखाई देते हैं। एक तथ्य यह है कि प्रकारान्तर से उन्होंने अतिरंजना की रूढ़ि को किंचित परिवर्तन के साथ ग्रहण किया। यह परिवर्तन प्रमुखत: शेक्सपीयर के जीवन-बोध, एवं रंगविधान के प्रभावस्वरूप ही आया था। शेक्सपीयर का रोमानी बोध एवं नियतिवाद संभवत: भारतीय युगीन परिवेश के कारण भी स्वत: उद्भूत होकर प्रसाद की चेतना पर छा गया था। इन्हीं कारणों से प्रसाद मूलत: कवि, दार्शनिक तथा संस्कृति के जागरूक समर्थक थे। जीवन दृष्टि के अनुरूप उन्होंने अपने नाटकों की रचना स्वच्छन्दतावादी नाट्य-प्रणालियों को आधार बनाकर कल्पना, भावुकता, सौन्दर्य-प्रेम, अतीत के प्रति अनुराग, उच्चादर्शों के प्रति मोह तथा शैली शिल्प की स्वच्छन्दता आदि को ग्रहण किया। किन्तु ऐसे साहित्यिक नाटकों के अनुरूप रंगमंच हिन्दी में नहीं था इसलिए अन्य सभी दृष्टियों से सफल होते हुए भी प्रसाद के नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल नहीं हो सके। इधर हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में नए प्रयोग हो रहे हैं जिससे आज के रंगकर्मी, प्रसाद के नाटकों को चुनौती के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। उनके नाटकों को इसीलिए सर्वथा अभिनेय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें से कुछ छुटपुट रूप से उनके जीवन काल में ही खेले गये थे। फिर भी आकार की विपुलता, दृश्यों की भरमार, चरित्र-बाहुल्य और विलक्षण दृश्य-योजना उनके नाटकों को रंगमंच के लिए अति कठिन बना देती है।

आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य के विकास में जयशंकर प्रसाद के बाद हरिकृष्ण प्रेमी को गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रसाद-युग में 'प्रेमी' ने 'स्वर्ण-विहान' (1930), 'रक्षाबन्धन' (1934), 'पाताल विजय' (1936), 'प्रतिशोध' (1937), 'शिवसाधना' (1937) आदि नाटक लिखे हैं। इनमें 'स्वर्ण विहान', गीतिनाट्य है और शेष गद्य नाटक। प्रसाद ने जहाँ प्राचीन भारत का चित्रण करते हुए सत्य, प्रेम, अहिंसा व त्याग का संदेश दिया, वहाँ प्रेमी जी

ने मुस्लिम-युगीन भारत को नाट्य-विषय के रूप में ग्रहण करते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। देश के उत्थान और संगठन के लिए इनके नाटक राष्ट्रीय भावना का प्रचार करने वाले हैं। प्रेमी जी प्रसाद की परम्परा के अनुयायी हैं। परन्तु उन्होंने प्रसाद जी की भांति अपने नाटकों को साहित्यिक और पाठ्य ही न रखकर उनको रंगमंच के योग्य भी बनाया है। साहित्यिकता और रंगमंचीयता का समन्वय है, उनके नाटकों की विशेषता है। उन्होंने संस्कृत नाट्य परम्परा का अनुसरण न करके पाश्चात्य नाट्यकला को अपनाया है। इन नाटकों के कथानक संक्षिप्त एवं सुगठित, चरित्र सरल एवं स्पष्ट, संवाद पात्रानुकूल एवं शैली सरल व स्वाभाविक है।

उपर्युक्त प्रमुख नाट्य कृतियों के अतिरिक्त आलोच्य युग में धार्मिक-पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की रचना अत्यधिक हुई। इन नाटकों में कलात्मक विकास विशेष रूप से नहीं हुआ, किन्तु युग की नवीन प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर कई नाटककारों ने अपनी रचनाओं में नवीन दृष्टिकोण को अपनाया। धार्मिक नाट्यधारा के अन्तर्गत कृष्ण चरित-राम चरित, पौराणिक तथा अन्य सन्त महात्माओं के चरित्रों को लेकर रचनाएं प्रस्तुत की गईं। इस धारा की उल्लेखनीय रचनाएं हैं। अम्बिकादत्त त्रिपाठी कृत 'सीय-स्वयंवर' (1918), रामचरित उपाध्याय-कृत 'देवी द्रौपदी' (1921), राम नरेश त्रिपाठीकृत 'सुभद्रा' (1924) तथा 'जयन्त' (1934), गंगाप्रसाद अरोड़ा-कृत 'सावित्री सत्यवान' गौरीशंकर प्रसाद-कृत- 'अजामिल चरित्र नाटक' (1926), पूरिपूर्णानन्द वर्मा-कृत 'वीर अभिमन्यु नाटक' (1927), वियोगी हरि-कृत (1925), 'छद्मयोगिनी' (1929) और 'प्रबुद्ध यामुन' अथवा 'यामुनाचार्य चरित्र' (1929), जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी-कृत 'तुलसीदास' (1934) लक्ष्मीनारायण गर्ग-कृत' श्री कृष्णावतार', किशोरी दास वायपेयी-कृत 'सुदामा' (1934), हरिऔध-कृत 'प्रद्युम्न विजय व्यायोग' (1939), सेठ गोविन्ददास-कृत 'कर्त्तव्य' (1936) आदि। राष्ट्रीय चेतना की प्रधानता होने के कारण धार्मिक नाटकों में भी राष्ट्रीयता का चित्रण हुआ। नाटकों में अति-नाटकीय और अति-मानवता का बहिष्कार किया गया है। प्राचीन रूढ़ियों और मान्यताओं को पूर्ण रूप से हटाने की चेष्टा की गयी है। इस प्रकार की रचनाओं में नाटककारों ने प्रायः कथावस्तु प्राचीन साहित्य से लेकर उसी पुराने ढांचे में नई बुद्धवादी धाराओं तथा विचारधाराओं के अनुसार आधुनिक युग की समस्याओं को उनमें फिट कर दिया है।

प्रसाद युग में इतिहास का आधार लेकर अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएं प्रस्तुत की गई। इस समय के नाटककारों की दृष्टि इतिहास की ओर विशेष रूप से गई क्योंकि यह युग पुनरुत्थान और नवजागरणवादी प्रवृत्तियों से अनुप्राणित था। फलत: जन साधारण में अपने गौरवपूर्ण इतिहास तथा अपनी महान सांस्कृतिक चेतना का संदेश देना इन नाटककारों ने अपना कर्त्तव्य समझा। इस काल की गौण ऐतिहासिक कृतियों में गणेशदत्त इन्द्र-कृत 'महाराणा संग्रामसिंह' (1911), भंवरलाल सोनी-कृत 'वीर कुमार छत्रसाल' (1923), चन्द्रराज भण्डारी-कृत 'सम्राट' अशोक (1923) ज्ञानचन्द्र शास्त्री-कृत 'जयश्री' (1924) प्रेमचन्द-कृत 'कर्बला' (1928), जिनेश्वर प्रसाद भायल-कृत 'भारत गौरव' अर्थात् 'सम्राट चन्द्रगुप्त' (1928) दशरथ ओझा-कृत 'चित्तौड़ की देवी' (1928) और प्रियदर्शी सम्राट अशोक (1935), जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द-कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा' (1929), चतुरसेन शास्त्री-कृत 'उपसर्ग' (1929) और 'अमर राठौर' (1933) उदयशंकर भट्ट-कृत 'विक्रमादित्य' (1929) और 'दाहर अथवा सिंधपतन' (1943), द्वारिका प्रसाद मौर्य–कृत 'हैदर अली या मैसूर-पतन' (1934), धनीराम प्रेम-कृत 'वीरांगना पन्ना' (1933) जगदीश शास्त्री-कृत 'तक्षशिला' (1937) उमाशंकर शर्मा-कृत 'महाराणा प्रताप' आदि को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। इन नाटककारों ने आदर्शवादी प्रवृत्ति के बावजूद स्वाभाविकता का बराबर ध्यान रखा और कल्पना और मनोविज्ञान की सहायता से प्राचीन काल की घटनाओं और चरित्रों को स्वाभाविकता के साथ चित्रित करने की चेष्टा की। पुरानी मान्यताओं तथा अतिलौकिक वर्णनों के स्थान पर वास्तविक कथा-वस्तु को प्रयोग में लाया गया है। इन चरित्रों में संघर्ष का भी समावेश हुआ। सारांश यह है कि इन नाटकों के कथानक महत् हैं, चरित्र सभी दार्शनिक और आदर्शवादी हैं, शैली कवित्वपूर्ण और अतिरंजित है और नाटकों का वातावरण संगीत और काव्यपूर्ण है। ये नाट्य-कृतियां हिन्दी नाट्य-कला विकास का एक महत्त्वपूर्ण चरण पूरा करती हैं।

इस युग में पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा का महत्त्वपूर्ण स्थान तो रहा ही है, इसके अतिरिक्त सामाजिक नाटकों की रचना भी बहुतायत से हुई है। सामाजिक नाटकों में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' कृत 'अत्याचार का परिणाम' (1921) और 'हिन्द विधवा नाटक' (1935), 'प्रेमचन्द-कृत 'संग्राम' (1922) ईश्वरी प्रसाद शर्मा-कृत दुर्दशा (1922), सुदर्शन-कृत 'अंजना' (1923), 'आनरेरी मैजिस्ट्रेट' (1929) और 'भयानक' (1937),

गोविन्दवल्लभ पन्त-कृत 'कंजूस की खोपड़ी' (1923) और 'अंगूर की बेटी' (1929), बैजनाथ चावला-कृत 'भारत का आधुनिक समाज' (1929), नर्मदेश्वरी प्रसाद 'राम'-कृत 'अछूतोद्धार' (1926), छविनाथ पांडेय-कृत 'समाज' (1929), केदारनाथ बजाज-कृत 'बिलखती 'विधवा' (1930), जमनादास मेहरा-कृत 'हिन्दू कन्या' (1932), महादेव प्रसाद शर्मा-कृत 'समय का फेर', बलदेव प्रसाद मिश्र-कृत 'विचित्र विवाह' (1932) और 'समाज सेवक' (1933) रघुनाथ चौधरी-कृत 'अछूत की लड़की या समाज की चिनगारी' (1934), महावीर बेनुवंश-कृत 'परदा' (1936), बेचन शर्मा 'उग्र'-कृत 'चुम्बन' (1937) और डिक्टेटर' (1937), रघुवीर स्वरूप भटनागर-कृत 'समाज की पुकार' (1937), अमर विशारद-कृत 'त्यागी युवक' (1937) चन्द्रिका प्रसाद सिंह-कृत 'कन्या विक्रय या लोभी पिता' (1937) आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में सामाजिक विकृतियों–बाल विवाह, विधवा-विवाह का विरोध, नारी स्वतंत्रता आदि का चित्रण करते हुए उनके उन्मूलन का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। इन नाटकों में समुन्नत समाज की स्थापना का प्रयास किया गया है, भले ही नाट्यकला की दृष्टि से ये नाटक उच्चकोटि के नहीं हैं।

आलोच्य युग में शृंगार-प्रधान नाटकों का प्रायः ह्रास हो गया था। थोड़ी बहुत प्रतीकवादी परम्परा चल रही थी, किन्तु उसकी गति बहुत धीमी थी। प्रतीक का महत्व वस्तुतः सांकेतिक अर्थ में है। इस अवधि में प्रसाद की 'कामना' के पश्चात् सुमित्रानन्दन पन्त-कृत ज्योत्स्ना' (1934) इस शैली की उल्लेखनीय रचना है। इसमें पंत की रंगीन कल्पनामयी झांकी का मनोरम स्वरूप व्यक्त होता है। इसके अतिरिक्त एक नाट्य-धारा व्यंग्य-विनोद प्रधान नाटकों को लेकर थी। इसको प्रमुख रूप से समाज की त्रुटियों, रूढ़िगत विचारों अथवा किसी व्यक्ति विशेष की विलक्षण प्रवृत्तियों पर चोट करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार से किसी भी समस्या पर किया हुआ प्रहार ऊपर से तो साधारण सा प्रतीत होता है। किन्तु तनिक भी ध्यान देने पर उसके पीछे छिपा हुआ अर्थ-गाम्भीर्य स्पष्ट हो जाता है। हास्य-व्यंग्य प्रधान नाटकों में जी.पी. श्रीवास्तव का 'दुमदार आदमी' (1919), गड़बड़ झाला (1919), नाक में दम उर्फ जवानी बनाम बुढ़ापा उर्फ मियां का जूता मियां के सर (1926) भूलचूक (1928), चोर के घर छिछोर (1933) चाल बेढव (1934), साहित्य का सपूत (1934), स्वामी चौखटानन्द (1936) आदि प्रसिद्ध हैं। जनता में इन नाटकों का खूब प्रचार हुआ, परन्तु रस और कला की दृष्टि से ये निम्नकोटि की रचनाएं

हैं। इस युग में कतिपय गीति-नाटकों की भी रचना हुई। इसमें प्रमुख हैं। मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ' (1928) हरिकृष्ण प्रेमी-कृत 'स्वर्ण विहान' (1937), भगवतीचरण वर्मा-कृत 'तारा', उदयशंकर भट्ट का मत्स्यगंधा (1937) और विश्वमित्र (1938) आदि उल्लेखनीय है। 'स्वर्ण विहान' में जीवन की बहिरंग व्यवस्था की ओर अधिक ध्यान दिया गया है और अन्य में आन्तरिक क्रिया-व्यापारों का चित्रण है। भाव प्रधान होने के कारण इन नाटकों में कार्य-व्यापार तथा घटना चक्र की कमी मिलती है। भावातिरेक ही भाव-नाट्यों की प्राणभूत विशेषता है।

इस प्रकार प्रसाद-युग हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में नवीन क्रांति लेकर आया। इस युग के नाटकों में राष्ट्रीय जागरण एवं सांस्कृतिक चेतना का सजीव चित्रण हुआ है, किन्तु रंगमंच से लोगों की दृष्टि हट गयी थी। जो नाटक इस युग में रचे गये उनमें इतिहास तत्त्व प्रमुख था और रंगमंच से कट जाने के कारण वे मात्र पाठ्य नाटक बनकर रह गए। कथ्य के स्तर पर वे देश की तत्कालीन समस्याओं की ओर अवश्य लिखे गये, किन्तु उनमें आदर्श का स्वर ही प्रमुख रहा। फिर भी इतिहास के माध्यम से अपने युग की यथार्थ समस्याओं को अंकित करने में वे पीछे नहीं रहे।

कंकाल

जयशंकर प्रसाद

तिष्ठान के खँडहर में और गंगा-तट की सिकता-भूमि में अनेक शिविर और फूस के झोंपड़े खड़े हैं। माघ की अमावस्या की गोधूली में प्रयाग में बाँध पर प्रभात का-सा जनरव और कोलाहल तथा धर्म लूटने की धूम कम हो गयी है, परन्तु बहुत-से घायल और कुचले हुए अर्धमृतकों की आर्तध्वनि उस पावन प्रदेश को आशीर्वाद दे रही है। स्वयं-सेवक उन्हें सहायता पहुँचाने में व्यस्त हैं। यों तो प्रतिवर्ष यहाँ पर जन-समूह एकत्र होता है, पर अब की बार कुछ विशेष पर्व की घोषणा की गयी थी, इसलिए भीड़ अधिकता से हुई।

कितनों के हाथ टूटे, कितनों का सिर फूटा और कितने ही पसलियों की हड्डियाँ गँवाकर, अधोमुख होकर त्रिवेणी को प्रणाम करने लगे। एक नीरव अवसाद संध्या में गंगा के दोनों तट पर खड़ी झोंपड़ी पर अपनी कालिमा बिखेर रहा था। नंगी पीठ घोड़ों पर नंगे साधुओं के चढ़ने का जो उत्साह था, जो तलवार

की फिकैती दिखलाने की स्पर्धा थी, दर्शक-जनता पर बालू की वर्षा करने का जो उन्माद था, बड़े-बड़े कारचोबी झंडों को आगे से चलने का जो आतंक था, वह सब अब फीका हो चला था।

एक छायादार डोंगी जमुना के प्रशांत वक्ष को आकुलित करती हुई गंगा की प्रखर धारा को काटने लगी-उस पर चढ़ने लगी। माझियों ने कसकर दौड़ लगायी। नाव झूँसी के तट पर जा लगी। एक सम्भ्रान्त सज्जन और युवती, साथ में एक नौकर उस पर से उतरे। पुरुष यौवन में होने पर भी कुछ खिन्न-सा था, युवती हँसमुख थी, परन्तु नौकर बड़ा ही गंभीर बना था। यह सम्भवत: उस पुरुष की प्रभावशालिनी शिष्टता की शिक्षा थी। उसके हाथ में एक बाँस की डोलची थी, जिसमें कुछ फल और मिठाइयाँ थीं। साधुओं के शिविरों की पंक्ति सामने थी, वे लोग उसकी ओर चले। सामने से दो मनुष्य बातें करते आ रहे थे-

'ऐसी भव्य मूर्ति इस मेले भर में दूसरी नहीं है।'

'जैसे साक्षात् भगवान् का अंश हो।'

'अजी ब्रह्मचर्य का तेज है।'

'अवश्य महात्मा हैं।'

वे दोनों चले गये।

यह दल उसी शिविर की ओर चल पड़ा, जिधर से दोनों बातें करते आ रहे थे। पटमण्डप के समीप पहुँचने पर देखा, बहुत से दर्शक खड़े हैं। एक विशिष्ट आसन पर एक बीस वर्ष का युवक हलके रंग का काषाय वस्त्र अंग पर डाले बैठा है। जटा-जूट नहीं था, कंधे तक बाल बिखरे थे। आँखें संयम के मद से भरी थीं। पुष्ट भुजाएँ और तेजोमय मुख-मण्डल से आकृति बड़ी प्रभावशालिनी थी। सचमुच, वह युवक तपस्वी भक्ति करने योग्य था। आगन्तुक और उसकी युवती स्त्री ने विनम्र होकर नमस्कार किया और नौकर के हाथ से लेकर उपहार सामने रखा। महात्मा ने सस्नेह मुस्करा दिया। सामने बैठे हुए भक्त लोग कथा कहने वाले एक साधु की बातें सुन रहे थे। वह एक छन्द की व्याख्या कर रहा था-'तासों चुप ह्वै रहिये'। गूँगा गुड़ का स्वाद कैसे बतावेगा, नमक की पतली जब लवण-सिन्धु में गिर गई, फिर वह अलग होकर क्या अपनी सत्ता बतावेगी! ब्रह्म के लिए भी वैसे ही 'इदमित्यं' कहना असम्भव है, इसलिए महात्मा ने कहा-'तासों चुप ह्वै रहिये'।

उपस्थित साधु और भक्तों ने एक-दूसरे का मुँह देखते हुए प्रसन्नता प्रकट की। सहसा महात्मा ने कहा, ऐसा ही उपनिषदों में भी कहा है। सम्भ्रान्त पुरुष

सुशिक्षित था, उसके हृदय में यह बात समा गयी कि महात्मा वास्तविक ज्ञान-सम्पन्न महापुरुष हैं। उसने अपने साधु-दर्शन की इच्छा की सराहना की और भक्तिपूर्वक बैठकर 'सत्संग' सुनने लगा।

रात हो गयी, जगह-जगह पर अलाव धधक रहे थे। शीत की प्रबलता थी। फिर भी धर्म-संग्राम के सेनापति लोग शिविरों में डटे रहे। कुछ ठहरकर आगन्तुक ने जाने की आज्ञा चाही। महात्मा ने पूछा– 'आप लोगों का शुभ नाम और परिचय क्या है'।

''हम लोग अमृतसर के रहने वाले हैं, मेरा नाम श्रीचन्द्र है और यह मेरी धर्मपत्नी है।' कहकर श्रीचन्द्र ने युवती की ओर संकेत किया। महात्मा ने भी उसकी ओर देखा। युवती ने उस दृष्टि से यह अर्थ निकाला कि महात्मा जी मेरा भी नाम पूछ रहे हैं। वह जैसे किसी पुरस्कार पाने की प्रत्याशा और लालच से प्रेरित होकर बोल उठी, 'दासी का नाम किशोरी है।'

महात्मा की दृष्टि में जैसे एक आलोचक घूम गया। उसने सिर नीचा कर लिया और बोला, 'अच्छा विलम्ब होगा, जाइये। भगवान् का स्मरण रखिये।'

श्रीचन्द्र किशोरी के साथ उठे। प्रणाम किया और चले।

साधुओं का भजन-कोलाहल शान्त हो गया था। निस्तब्धता रजनी के मधुर क्रोड़ में जाग रही थी। निशीथ के नक्षत्र गंगा के मुकुल में अपना प्रतिबिम्ब देख रहे थे। शांत पवन का झोंका सबको आलिंगन करता हुआ विरक्त के समान भाग रहा था। महात्मा के हृदय में हलचल थी। वह निष्पाप हृदय ब्रह्मचारी दुश्चिन्ता से मलिन, शिविर छोड़कर कम्बल डाले, बहुत दूर गंगा की जलधारा के समीप खड़ा होकर अपने चिरसंचित पुण्यों को पुकारने लगा।

वह अपने विराग को उत्तेजित करता, परन्तु मन की दुर्बलता प्रलोभन बनकर विराग की प्रतिद्वन्द्विता करने लगती और इसमें उसके अतीत की स्मृति भी उसे धोखा दे रही थी, जिन-जिन सुखों को वह त्यागने की चिंता करता, वे ही उसे धक्का देने का उद्योग करते। दूर सामने दिखने वाली कलिन्दजा की गति का अनुकरण करने के लिए वह मन को उत्साह दिलाता, परन्तु गंभीर अर्द्धनिशीथ के पूर्ण उज्ज्वल नक्षत्र बाल-काल की स्मृति के सदृश मानस-पटल पर चमक उठते थे। अनन्त आकाश में जैसे अतीत की घटनाएँ रजताक्षरों से लिखी हुई उसे दिखाई पड़ने लगीं।

झेलम के किनारे एक बालिका और एक बालक अपने प्रणय के पौधे को अनेक क्रीड़ा-कुतूहलों के जल से सींच रहे हैं। बालिका के हृदय में असीम

अभिलाषा और बालक के हृदय में अदम्य उत्साह। बालक रंजन आठ वर्ष का हो गया और बालिका सात की। एक दिन अकस्मात् रंजन को लेकर उसके माता-पिता हरिद्वार चल पड़े। उस समय किशोरी ने उससे पूछा, 'रंजन, कब आओगे?'

उसने कहा, 'बहुत ही जल्द। तुम्हारे लिए अच्छा-अच्छी गुड़िया लेकर आऊँगा।'

रंजन चला गया, जिस महात्मा की कृपा और आशीर्वाद से उसने जन्म लिया था, उसी के चरणों में चढ़ा दिया गया। क्योंकि उसकी माता ने सन्तान होने की ऐसी ही मनौती की थी।

निष्ठुर माता-पिता ने अन्य सन्तानों के जीवित रहने की आशा से अपने ज्येष्ठ पुत्र को महात्मा का शिष्य बना दिया। बिना उसकी इच्छा के वह संसार से-जिसे उसने अभी देखा भी नहीं था-अलग कर दिया गया। उसका गुरुद्वारे का नाम देवनिरंजन हुआ। वह सचमुच आदर्श ब्रह्मचारी बना। वृद्ध गुरुदेव ने उसकी योग्यता देखकर उसे उन्नीस वर्ष की ही अवस्था में गद्दी का अधिकारी बनाया। वह अपने संघ का संचालन अच्छे ढंग से करने लगा।

हरिद्वार में उस नवीन तपस्वी की सुख्याति पर बूढ़े-बूढ़े बाबा ईर्ष्या करने लगे और इधर निरंजन के मठ की भेंट-पूजा बढ़ गयी, परन्तु निरंजन सब चढ़े हुए धन का सदुपयोग करता था। उसके सद्गुणों का गौरव-चित्र आज उसकी आँखों के सामने खिंच गया और वह प्रशंसा और सुख्याति के लोभ दिखाकर मन को इन नयी कल्पनाओं से हटाने लगा, परन्तु किशोरी के मन में उसे बारह वर्ष की प्रतिमा की स्मरण दिला दिया। उसने हरिद्वार आते हुए कहा था-किशोरी, तेरे लिए गुड़िया ले आऊँगा। क्या यह वही किशोरी है? अच्छा यही है, तो इसे संसार में खेलने के लिए गुड़िया मिल गयी। उसका पति है, वह उसे बहलायेगा। मुझ तपस्वी को इससे क्या! जीवन का बुल्ला विलीन हो जायेगा। ऐसी कितनी ही किशोरियाँ अनन्त समुद्र में तिरोहित हो जायेंगी। मैं क्यों चिंता करूँ?

परन्तु प्रतिज्ञा? ओह वह स्वप्न था, खिलवाड़ था। मैं कौन हूँ किसी को देने वाला, वही अन्तर्यामी सबको देता है। मूर्ख निरंजन! सम्हल!! कहाँ मोह के थपेड़े में झूमना चाहता है। परन्तु यदि वह कल फिर आयी तो? भागना होगा। भाग निरंजन, इस माया से हारने के पहले युद्ध होने का अवसर ही मत दे।

निरंजन धीरे-धीरे अपने शिविर को बहुत दूर छोड़ता हुआ, स्टेशन की ओर विचरता हुआ चल पड़ा। भीड़ के कारण बहुत-सी गाड़ियाँ बिना समय भी आ-जा रही थीं। निरंजन ने एक कुली से पूछा, 'यह गाड़ी कहाँ जायेगी?'

'सहारनपुर।' उसने कहा।

देवनिरंजन गाड़ी में चुपचाप बैठ गया।

दूसरे दिन जब श्रीचन्द्र और किशोरी साधु-दर्शन के लिए फिर उसी स्थान पर पहुँचे, तब वहाँ अखाड़े के साधुओं को बड़ा व्यग्र पाया। पता लगाने पर मालूम हुआ कि महात्माजी समाधि के लिए हरिद्वार चले गये। यहाँ उनकी उपासना में कुछ विन होता था। वे बड़े त्यागी हैं। उन्हें गृहस्थों की बहुत झंझट पसन्द नहीं। यहाँ धन और पुत्र माँगने वालों तथा कष्ट से छुटकारा पाने वालों की प्रार्थना से वे ऊब गये थे।

किशोरी ने कुछ तीखे स्वर से अपने पति से कहा, 'मैं पहले ही कहती थी कि तुम कुछ न कर सकोगे। न तो स्वयं कहा और न मुझे प्रार्थना करने दी।'

विरक्त होकर श्रीचन्द्र ने कहा, 'तो तुमको किसने रोका था। तुम्हीं ने क्यों न सन्तान के लिए प्रार्थना की! कुछ मैंने बाधा तो दी न थी।'

उत्तेजित किशोरी ने कहा, 'अच्छा तो हरिद्वार चलना होगा।'

'चलो, मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँगा और अमृतसर आज तार दे दूँगा कि मैं हरिद्वार से होता हुआ आता हूँ, क्योंकि मैं व्यवसाय इतने दिनों तक यों ही नहीं छोड़ सकता।''

'अच्छी बात है, परन्तु मैं हरिद्वार अवश्य जाऊँगी।'

'सो तो मैं जानता हूँ।' कहकर श्रीचन्द्र ने मुँह भारी कर लिया, परन्तु किशोरी को अपनी टेक रखनी थी। उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि उन महात्मा से मुझे अवश्य सन्तान मिलेगी।

उसी दिन श्रीचन्द्र ने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया और अखाड़े के भण्डारी ने भी जमात लेकर हरिद्वार जाने का प्रबन्ध किया।

हरिद्वार के समीप ही जाह्नवी के तट पर तपोवन का स्मरणीय दृश्य है। छोटे-छोटे कुटीरों की श्रेणी बहुत दूर तक चली गयी है। खरस्त्रोता जाह्नवी की शीतल धारा उस पावन प्रदेश को अपने कल-नाद से गुंजरित करती है। तपस्वी अपनी योगचर्या-साधन के लिए उन छोटे-छोटे कुटीरों में रहते हैं। बड़े-बड़े मठों से अन्न-सत्र का प्रबन्ध है। वे अपनी भिक्षा ले आते हैं और इसी निभृत स्थान में बैठकर अपने पाप का प्रक्षालन करते हुए ब्रह्मानन्द का सुख भोगते हैं। सुन्दर शिला-खण्ड, रमणीय लता-वितान, विशाल वृक्षों की मधुर छाया, अनेक प्रकार के पक्षियों का कोमल कलरव, वहाँ एक अद्‌भुत शान्ति का सृजन करता है। आरण्यक-पाठ के उपयुक्त स्थान है।

गंगा की धारा जहाँ घूम गयी है, वह छोटा-सा कोना अपने सब साथियों को आगे छोड़कर निकल गया है। वहाँ एक सुन्दर कुटी है, जो नीचे पहाड़ी की पीठ पर जैसे आसन जमाये बैठी है। निरंजन गंगा की धारा की ओर मुँह किये ध्यान में निमग्न है। यहाँ रहते हुए कई दिन बीत गये, आसन और दृढ़ धारणा से अपने मन को संयम में ले आने का प्रयत्न लगातार करते हुए भी शांति नहीं लौटी। विक्षेप बराबर होता था। जब ध्यान करने का समय होता, एक बालिका की मूर्ति सामने आ खड़ी होती। वह उसे माया-आवरण कहकर तिरस्कार करता, परन्तु वह छाया जैसे ठोस हो जाती। अरुणोदय की रक्त किरणें आँखों में घुसने लगती थीं। घबराकर तपस्वी ने ध्यान छोड़ दिया। देखा कि पगडण्डी से एक रमणी उस कुटीर के पास आ रही है। तपस्वी को क्रोध आया। उसने समझा कि देवताओं को तप में प्रत्यूह डालने का क्यों अभ्यास होता है, क्यों वे मनुष्यों के समान ही द्वेष आदि दुर्बलताओं से पीड़ित हैं।

रमणी चुपचाप समीप चली आयी। साष्टांग प्रणाम किया। तपस्वी चुप था, वह क्रोध से भरा हुआ था, परन्तु न जाने क्यों उसे तिरस्कार करने का साहस न हुआ। उसने कहा, 'उठो, तुम यहाँ क्यों आयीं?'

किशोरी ने कहा, 'महाराज, अपना स्वार्थ ले आया, मैंने आज तक सन्तान का मुँह नहीं देखा।'

निरंजन ने गंभीर स्वर में पूछा, 'अभी तो तुम्हारी अवस्था अठारह-उन्नीस से अधिक नहीं, फिर इतनी दुश्चिन्ता क्यों?'

किशोरी के मुख पर लाज की लाली थी। वह अपनी वयस की नाप-तौल से संकुचित हो रही थी। परन्तु तपस्वी का विचलित हृदय उसे क्रीड़ा समझने लगा। वह जैसे लड़खड़ाने लगा। सहसा सम्भलकर बोला, 'अच्छा, तुमने यहाँ आकर ठीक नहीं किया। जाओ, मेरे मठ में आना-अभी दो दिन ठहरकर। यह एकान्त योगियों की स्थली है, यहाँ से चली जाओ।' तपस्वी अपने भीतर किसी से लड़ रहा था।

किशोरी ने अपनी स्वाभाविक तृष्णा भरी आँखों से एक बार उस सूखे यौवन का तीव्र आलोक देखा। वह बराबर देख न सकी, छलछलायी आँखें नीची हो गयीं। उन्मत्त के समान निरंजन ने कहा, 'बस जाओ!'

किशोरी लौटी और अपने नौकर के साथ, जो थोड़ी ही दूरी पर खड़ा था, 'हर की पैड़ी' की ओर चल पड़ी। चिंता की अभिलाषा से उसका हृदय नीचे-ऊपर हो रहा था।

रात एक पहर गयी होगी, 'हर की पैड़ी' के पास ही एक घर की खुली खिड़की के पास किशोरी बैठी थी। श्रीचन्द्र को यहाँ आते ही तार मिला कि तुरन्त चले आओ। व्यवसाय-वाणिज्य के काम अटपट होते हैं, वह चला गया। किशोरी नौकर के साथ रह गयी। नौकर विश्वासी और पुराना था। श्रीचन्द्र की लाडली स्त्री किशोरी मनस्विनी थी ही।

ठंड का झोंका खिड़की से आ रहा था। अब किशोरी के मन में बड़ी उलझन थी-कभी वह सोचती, मैं क्यों यहाँ रह गयी, क्यों न उन्हीं के संग चली गयी। फिर मन में आता, रुपये-पैसे तो बहुत हैं, जब उन्हें भोगने वाला ही कोई नहीं, फिर उसके लिए उद्योग न करना भी मूर्खता है। ज्योतिषी ने भी कह दिया है, संतान बड़े उद्योग से होगी। फिर मैंने क्या बुरा किया?

अब शीत की प्रबलता हो चली थी, उसने चाहा, खिड़की का पल्ला बन्द कर ले। सहसा किसी के रोने की ध्वनि सुनायी दी। किशोरी को उत्कंठा हुई, परन्तु क्या करे, 'बलदाऊ' बाजार गया था। चुप रही। थोड़े ही समय में बलदाऊ आता दिखाई पड़ा।

आते ही उसने कहा, 'बहुरानी कोई गरीब स्त्री रो रही है। यहीं नीचे पड़ी है।'

किशोरी ही दुःखी थी। संवेदना से प्रेरित होकर उसने कहा, 'उसे लिवाते क्यों नहीं लाये, कुछ उसे दे आते।'

बलदाऊ सुनते ही फिर नीचे उतर गया। उसे बुला लाया। वह एक युवती विधवा थी। बिलख-बिलखकर रो रही थी। उसके मलिन वसन का अंचल तर हो गया था। किशोरी के आश्वासन देने पर वह सम्हली और बहुत पूछने पर उसने कथा सुना दी-विधवा का नाम रामा है, बरेली की एक ब्राह्मण-वधु है। दुराचार का लांछन लगाकर उसके देवर ने उसे यहाँ छोड़ दिया। उसके पति के नाम की कुछ भूमि थी, उस पर अधिकार जमाने के लिए उसने यह कुचक्र रचा है।

किशोरी ने उसके एक-एक अक्षर का विश्वास किया, क्योंकि वह देखती है कि परदेश में उसके पति ने उसे छोड़ दिया और स्वयं चला गया। उसने कहा, 'तुम घबराओं मत, मैं यहाँ कुछ दिन रहूँगी। मुझे एक ब्राह्मणी चाहिए ही, तुम मेरे पास रहो। मैं तुम्हें बहन के समान रखूँगी।'

रामा कुछ प्रसन्न हुई। उसे आश्रय मिल गया। किशोरी शैया पर लेट-लेटे सोचने लगी-पुरुष बड़े निर्मोही होते हैं, देखो वाणिज्य-व्यवसाय का इतना लोभ है कि मुझे छोड़कर चले गये। अच्छा, जब तक वे स्वयं नहीं आवेंगे, मैं भी नहीं जाऊँगी। मेरा भी नाम 'किशोरी' है!-यही चिंता करते-करते किशोरी सो गयी।

दो दिन तक तपस्वी ने मन पर अधिकार जमाने की चेष्टा की, परन्तु वह असफल रहा। विद्वत्ता ने जितने तर्क जगत को मिथ्या प्रमाणित करने के लिए थे, उन्होंने उग्र रूप धारण किया। वे अब समझते थे-जगत् तो मिथ्या है ही, इसके जितने कर्म हैं, वे भी माया हैं। प्रमाता जीव भी प्रकृति है, क्योंकि वह भी अपरा प्रकृति है। विश्व मात्र प्राकृत है, तब इसमें अलौकिक अध्यात्म कहाँ, यही खेल यदि जगत् बनाने वाले का है, तो वह मुझे खेलना ही चाहिए। वास्तव में गृहस्थ न होकर भी मैं वहीं सब तो करता हूँ जो एक संसारी करता है-वही आय-व्यय का निरीक्षण और उसका उपयुक्त व्यवहार, फिर सहज उपलब्ध सुख क्यों छोड़ दिया जाए?

त्यागपूर्ण थोथी दार्शनिकता जब किसी ज्ञानाभ्रास को स्वीकार कर लेती है, तब उसका धक्का सम्हालना मनुष्य का काम नहीं।

उसने फिर सोचा-मठधारियों, साधुओं के लिए सब पथ खुले होते हैं। यद्यपि प्राचीन आर्यों की धर्मनीति में इसीलिए कुटीचर और एकान्त वासियों का ही अनुमोदन है, प्राचीन संघबद्ध होकर बौद्धधर्म ने जो यह अपना कूड़ा छोड़ दिया है, उसे भारत के धार्मिक सम्प्रदाय अभी फेंक नहीं सकते। तो फिर चले संसार अपनी गति से।

देवनिरंजन अपने विशाल मठ में लौट आया और महन्ती नये ढंग से देखी जाने लगी। भक्तों की पूजा और चढ़ाव का प्रबन्ध होने लगा। गद्दी और तकिये की देखभाल चली। दो ही दिन में मठ का रूप बदल गया।

एक चाँदनी रात थी। गंगा के तट पर अखाड़े से मिला हुआ उपवन था। विशाल वृक्ष की छाया में चाँदनी उपवन की भूमि पर अनेक चित्र बना रही थी। बसंत-समीर ने कुछ रंग बदला था। निरंजन मन के उद्वेग से वहीं टहल रहा था। किशोरी आयी। निरंजन चौंक उठा। हृदय में रक्त दौड़ने लगा।

किशोरी ने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज, मेरे ऊपर दया न होगी?'

निरंजन ने कहा, 'किशोरी, तुम मुझको पहचानती हो?'

किशोरी ने उस धुँधले प्रकाश में पहचानने की चेष्टा की, परन्तु वह असफल होकर चुप रही।

निरंजन ने फिर कहना आरम्भ किया, 'झेलम के तट पर रंजन और किशोरी नाम के दो बालक और बालिका खेलते थे। उनमें बड़ा स्नेह था। रंजन अपने पिता के साथ हरिद्वार जाने लगा, परन्तु उसने कहा था कि किशोरी मैं तेरे लिए गुड़िया ले आऊँगा, परन्तु वह झूठा बालक अपनी बाल-संगिनी के पास फिर न लौटा। क्या तुम वही किशोरी हो?'

उसका बाल-सहचर इतना बड़ा महात्मा!-किशोरी की समस्त धमनियों में हलचल मच गयी। वह प्रसन्नता से बोल उठी, 'और क्या तुम वही रंजन हो?'

लड़खड़ाते हुए निरंजन ने उसका हाथ पकड़कर कहा, 'हाँ किशोरी, मैं वहीं रंजन हूँ। तुमको ही पाने के लिए आज तक तपस्या करता रहा, यह संचित तप तुम्हारे चरणों में निछावर है। संतान, ऐश्वर्य और उन्नति देने की मुझमें जो शक्ति है, वह सब तुम्हारी है।'

अतीत की स्मृति, वर्तमान की कामनाएँ किशोरी को भुलावा देने लगीं। उसने ब्रह्मचारी के चौड़े वक्ष पर अपना सिर टेक दिया।

कई महीने बीत गये। बलदाऊ ने स्वामी को पत्र लिखा कि आप आइये, बिना आपके आये बहूरानी नहीं जातीं और मैं अब यहाँ एक घड़ी भी रहना उचित नहीं समझता।

श्रीचन्द्र आये। हठीली किशोरी ने बड़ा रूप दिखलाया। फिर मान-मनाव हुआ। देवनिरंजन को समझा-बुझाकर किशोरी फिर आने की प्रतिज्ञा करके पति के साथ चली गयी। किशोरी का मनोरथ पूर्ण हुआ।

रामा वहाँ रह गयी। हरिद्वार जैसे पुण्यतीर्थ में क्या विधवा को स्थान और आश्रय की कमी थी!

पन्द्रह बरस बाद काशी में ग्रहण था। रात में घाटों पर नहाने का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध था। चन्द्रग्रहण हो गया। घाट पर बड़ी भीड़ थी। आकाश में एक गहरी नीलिमा फैली नक्षत्रों में चौगुनी चमक थी, परन्तु खगोल में कुछ प्रसन्नता न थी। देखते-देखते एक अच्छे चित्र के समान पूर्णमासी का चन्द्रमा आकाश पट पर से धो दिया गया। धार्मिक जनता में कोलाहल मच गया। लोग नहाने, गिरने तथा भूलने भी लगे। कितनों का साथ छूट गया।

विधवा रामा अब सधवा होकर अपनी कन्या तारा के साथ भण्डारीजी के साथ आयी थी। भीड़ के एक ही धक्के में तारा अपनी माता तथा साथियों से अलग हो गयी। यूथ से बिछड़ी हुई हिरनी के समान बड़ी-बड़ी आँखों से वह इधर-उधर देख रही थी। कलेजा धक-धक करता था, आँखें छलछला रही थीं और उसकी पुकार उस महा कोलाहल में विलीन हुई जाती थी। तारा अधीर हो गयी थी। उसने पास आकर पूछा, 'बेटी, तुम किसको खोज रही हो?'

तारा का गला रुँध गया, वह उत्तर न दे सकी।

तारा सुन्दरी थी, होनदार सौंदर्य उसके प्रत्येक अंग में छिपा था। वह युवती हो चली थी, परन्तु अनाघ्रात कुसुम के रूप में पंखुरियाँ किसी न थीं। अधेड़ स्त्री

ने स्नेह से उसे छाती से लगा लिया और कहा, 'मैं अभी तेरी माँ के पास पहुँचा देती हूँ, वह तो मेरी बहन है, मैं तुझे भली-भाँति जानती हूँ। तू घबड़ा मत।'

हिन्दू स्कूल का एक स्वयं सेवक पास आ गया, उसने पूछा, 'क्या तुम भूल गयी हो?'

तारा रो रही थी। अधेड़ स्त्री ने कहा, 'मैं जानती हूँ, यहीं इसकी माँ है, वह भी खोजती थी। मैं लिवा जाती हूँ।'

स्वयं सेवक मंगल चुप रहा। युवक छात्र एक युवती बालिका के लिए हठ न कर सका। वह दूसरी ओर चला गया और तारा उसी स्त्री के साथ चली।

(2) लखनऊ संयुक्त प्रान्त में एक निराला नगर है। बिजली के प्रभा से आलोकित सन्ध्या 'शाम-अवध' की सम्पूर्ण प्रतिभा है। पण्य में क्रय-विक्रय चल रहा है, नीचे और ऊपर से सुन्दरियों का कटाक्ष। चमकीली वस्तुओं का झलमला, फूलों के हार का सौरभ और रसिकों के वसन में लगे हुए गन्ध से खेलता हुआ मुक्त पवन-यह सब मिलकर एक उत्तेजित करने वाला मादक वायुमण्डल बन रहा है।

मंगलदेव अपने साथी खिलाड़ियों के साथ मैच खेलने लखनऊ आया था। उसका स्कूल आज विजयी हुआ है। कल वे लोग बनारस लौटेंगे। आज सब चौक में अपना विजयोल्लास प्रकट करने के लिए और उपयोगी वस्तु क्रय करने के लिए एकत्र हुए हैं।

छात्र सभी तरह के होते हैं। उनके विनोद भी अपने-अपने ढंग के, परन्तु मंगल इसमें निराला था। उसका सहज सुन्दर अंग ब्रह्मचर्य और यौवन से प्रफुल्ल था। निर्मल मन का आलोक उसके मुख-मण्डल पर तेज बना रहा था। वह अपने एक साथी को ढूँढने के लिए चला आया, परन्तु वीरेन्द्र ने उसे पीछे से पुकारा। वह लौट पड़ा।

वीरेन्द्र-'मंगल, आज तुमको मेरी एक बात माननी होगी!'

मंगल-'क्या बात है, पहले सुनूँ भी।'

वीरेन्द्र-'नहीं, पहले तुम स्वीकार करो।'

मंगल-'यह नहीं हो सकता, क्योंकि फिर उसे न करने से मुझे कष्ट होगा।'

वीरेन्द्र-'बहुत बुरी बात है, परन्तु मेरी मित्रता के नाते तुम्हें करना ही होगा।'

मंगल-'यही तो ठीक नहीं।'

वीरेन्द्र-'अवश्य ठीक नहीं, तो भी तुम्हें मानना होगा।'

मंगल-'वीरेन्द्र, ऐसा अनुरोध न करो।'

वीरेन्द्र-'यह मेरा हठ है और तुम जानते हो कि मेरा कोई भी विनोद तुम्हारे बिना असम्भव है, निस्सार है। देखो, तुमसे स्पष्ट करता हूँ। उधर देखो-वह एक बाल वेश्या है, मैं उसके पास जाकर एक बार केवल नयनाभिराम रूप देखना चाहता हूँ। इससे विशेष कुछ नहीं।'

मंगल-'यह कैसा कुतूहल! छि:!'

वीरेन्द्र-'तुम्हें मेरी सौगन्धय पाँच मिनट से अधिक नहीं लगेगा, हम लौट आवेंगे, चलो, तुम्हें अवश्य चलना होगा। मंगल, क्या तुम जानते हो कि मैं तुम्हें क्यों ले चल रहा हूँ?'

मंगल-'क्यों?'

वीरेन्द्र-'जिससे तुम्हारे भय से मैं विचलित न हो सकूँ! मैं उसे देखूँगा अवश्य, परन्तु आगे डर से बचाने वाला साथ रहना चाहिए। मित्र, तुमको मेरी रक्षा के लिए साथ चलना ही चाहिए।'

मंगल ने कुछ सोचकर कहा, 'चलो।' परन्तु क्रोध से उनकी आँखें लाल हो गयी थीं।

वह वीरेन्द्र के साथ चल पड़ा। सीड़ियों से ऊपर कमरे में दोनों जा पहुँचे। एक षोडशी युवती सजे हुए कमरे में बैठी थी। पहाड़ी रूखा सौंदर्य उसके गेहुँए रंग में ओत-प्रोत है। सब भरे हुए अंगों में रक्त का वेगवान संचार कहता है कि इसका तारुण्य इससे कभी न छँटेगा। बीच में मिली हुई भौंहों के नीचे न जाने कितना अंधकार खेल रहा था! सहज नुकीली नाक उसकी आकृति की स्वतन्त्रता सत्ता बनाये थी। नीचे सिर किये हुए उसने जब इन लोगों को देखा, तब उस समय उसकी बड़ी-बड़ी आँखों के कोन और भी खिंचे हुए जान पड़े। घने काले बालों के गुच्छे दोनों कानों के पास के कन्धों पर लटक रहे थे। बाएँ कपोल पर एक तिल उसके सरल सौन्दर्य को बाँका बनाने के लिए पर्याप्त था। शिक्षा के अनुसार उसने सलाम किया, परन्तु यह खुल गया कि अन्यमनस्क रहना उसकी स्वाभाविकता थी।

मंगलदेव ने देखा कि यह तो वेश्या का रूप नहीं है।

वीरेन्द्र ने पूछा, 'आपका नाम?'

उसके 'गुलेनार' कहने में कोई बनावट न थी।

सहसा मंगल चौंक उठा, उसने पूछा, 'क्या हमने तुमको कहीं और भी देखा है?'

'यह अनहोनी बात नहीं है।'

'कई महीने हुए, काशी में ग्रहण की रात को जब मैं स्वयंसेवक का काम कर रहा था, मुझे स्मरण होता है, जैसे तुम्हें देखा हो, परन्तु तुम तो मुसलमानी हो।'

'हो सकता है कि आपने मुझे देखा हो, परन्तु उस बात को जाने दीजिये, अभी अम्मा आ रही हैं।'

मंगलदेव कुछ कहना ही चाहता था कि 'अम्मा' आ गयी। वह विलासजीर्ण दुष्ट मुखाकृति देखते ही घृणा होती थी।

अम्मा ने कहा, 'आइये बाबू साहब, कहिये क्या हुक्म है

'कुछ नहीं। गुलेनार को देखने के लिए चला आया था।' कहकर वीरेन्द्र मुस्करा दिया।

'आपकी लौंडी है, अभी तो तालीम भी अच्छी तरह नहीं लेती, क्या कहूँ बाबू साहब, बड़ी बोदी है। इसकी किसी बात पर ध्यान न दीजियेगा।' अम्मा ने कहा।

'नहीं-नहीं, इसकी चिंता न कीजिये। हम लोग तो परदेशी हैं। यहाँ घूम रहे थे, तब इनकी मनमोहिनी छवि दिखाई पड़ी, चले आये।' वीरेन्द्र ने कहा।

अम्मा ने भीतर की ओर पुकारते हुए कहा, 'अरे इलायची ले आ, क्या कर रहा है?'

'अभी आया।' कहता हुआ एक मुसलमान युवक चाँदी की थाली में पान-इलायची ले आया। वीरेन्द्र ने इलायची ले ली और उसमें दो रुपये रख दिये। फिर मंगलदेव की ओर देखकर कहा, 'चलो भाई, गाड़ी का भी समय देखना होगा, फिर कभी आया जायेगा। प्रतिज्ञा भी पाँच मिनट की है।'

'अभी बैठिये भी, क्या आये और क्या चले।' फिर सक्रोध गुलेनार को देखती हुई अम्मा कहने लगी, 'क्या कोई बैठे और क्यों आये! तुम्हें तो कुछ बोलना ही नहीं है और न कुछ हँसी-खुशी की बातें ही करनी हैं, कोई क्यों ठहरे अम्मा की त्योरियाँ बहुत ही चढ़ गयी थीं। गुलेनार सिर झुकाये चुप थी।

मंगलदेव जो अब तक चुप था, बोला, 'मालूम होता है, आप दोनों में बनती बहुत कम है, इसका क्या कारण है?'

गुलेनार कुछ बोलना ही चाहती थी कि अम्मा बीच में बोल उठी, 'अपने-अपने भाग होते हैं बाबू साहब, एक ही बेटी, इतने दुलार से पाला-पोसा, फिर भी न जाने क्यों रूठी रहती है।' कहती हुई बुड्ढी के दो आँसू भी निकल पड़े। गुलेनार की वाक्शक्ति जैसे बन्दी होकर तड़फड़ा रही थी। मंगलदेव ने

कुछ-कुछ समझा। कुछ उसे सन्देह हुआ। परन्तु वह सम्भलकर बोला, 'सब आप ही ठीक हो जाएगा, अभी अल्हड़पन है।'

'अच्छा फिर आऊँगा।'

वीरेन्द्र और मंगलदेव उठे, सीढी की ओर चले। गुलेनार ने झुककर सलाम किया, परन्तु उसकी आँखें पलकों का पल्ला पसारकर करुणा की भीख माँग रही थीं। मंगलदेव ने-चरित्रवान मंगलदेव ने-जाने क्यो एक रहस्यपूर्ण संकेत किया। गुलेनार हँस पड़ी, दोनों नीचे उतर गये।

'मंगल! तुमने तो बड़े लम्बे हाथ-पैर निकाले-कहाँ तो आते ही न थे, कहाँ ये हरकतें!' वीरेन्द्र ने कहा।

'वीरेन्द्र! तुम मुझे जानते हो, परन्तु मैं सचमुच यहाँ आकर फँस गया। यही तो आश्चर्य की बात है।'

'आश्चर्य काहे का, यही तो काजल की कोठरी है।'

'हुआ करे, चलो ब्यालू करके सो रहें। सवेरे की ट्रेन पकड़नी होगी।''

'नहीं वीरेन्द्र! मैंने तो कैर्निंग कॉलेज में नाम लिखा लेने का निश्चय-सा कर लिया है, कल मैं नहीं चल सकता।'' मंगल ने गंभीरता से कहा।

'वीरेन्द्र जैसे आश्चर्यचकित हो गया। उसने कहा, 'मंगल, तुम्हारा इसमें कोई गूढ़ उद्देश्य होगा। मुझे तुम्हारे ऊपर इतना विश्वास है कि मैं कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकता कि तुम्हारा पद-स्खलन होगा, परन्तु फिर भी मैं कम्पित हो रहा हूँ।'

सिर नीचा किये मंगल ने कहा, 'और मैं तुम्हारे विश्वास की परीक्षा करूँगा। तुम तो बचकर निकल आये, परन्तु गुलेनार को बचाना होगा। वीरेन्द्र मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि यही वह बालिका है, जिसके सम्बन्ध में मैं ग्रहण के दिनों में तुमसे कहता था कि मेरे देखते ही एक बालिका कुटनी के चंगुल में फँस गयी और मैं कुछ न कर सका।'

'ऐसी बहुत सी अभागिन इस देश में हैं। फिर कहाँ-कहाँ तुम देखोगे?'

'जहाँ-जहाँ देख सकूँगा।'

'सावधान!'

मंगल चुप रहा।

वीरेन्द्र जानता था कि मंगल बड़ा हठी है, यदि इस समय मैं इस घटना को बहुत प्रधानता न दूँ, तो सम्भव है कि वह इस कार्य से विरक्त हो जाये,

अन्यथा मंगल अवश्य वही करेगा, जिससे वह रोका जाए, अतएव वह चुप रहा। सामने ताँगा दिखाई दिया। उस पर दोनों बैठ गये।

दूसरे दिन सबको गाड़ी पर बैठाकर अपने एक आवश्यक कार्य का बहाना कर मंगल स्वयं लखनऊ रह गया। कैनिंग कॉलेज के छात्रों को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मंगल वहीं पढ़ेगा। उसके लिए स्थान का भी प्रबन्ध हो गया। मंगल वहीं रहने लगा।

दो दिन बाद मंगल अमीनाबाद की ओर गया। वह पार्क की हरियाली में घूम रहा था। उसे अम्मा दिखाई पड़ी और वही पहले बोली, 'बाबू साहब, आप तो फिर नहीं आये।'

मंगल दुविधा में पड़ गया। उसकी इच्छा हुई कि कुछ उत्तर न दे। फिर सोचा-अरे मंगल, तू तो इसीलिए यहाँ रह गया है! उसने कहाँ, 'हाँ-हाँ, कुछ काम में फँस गया था, आज मैं अवश्य आता, पर क्या करूँ मेरे एक मित्र साथ में हैं। वह मेरा आना-जाना नहीं जानते। यदि वे चले गये, तो आज ही आऊँगा, नहीं तो फिर किसी दिन।'

'नहीं-नहीं, आपको गुलेनार की कसम, चलिए वह तो उसी दिन से बड़ी उदास रहती है।'

'आप मेरे साथ चलिये, फिर जब आइयेगा, तो उनसे कह दीजियेगा-मैं तो तुम्हीं को ढूँढ़ता रहा, इसलिए इतनी देर हुई और तब तक तो दो बातें करके चले आएँगे।'

'कर्त्तव्यनिष्ठ मंगल ने विचार किया-ठीक तो है। उसने कहा, 'अच्छी बात है।'

मंगल गुलेनार की अम्मा के पीछे-पीछे चला।

गुलेनार बैठी हुई पान लगा रही थी। मंगलदेव को देखते ही मुस्कराई, जब उसके पीछे अम्मा की मूर्ति दिखलाई पड़ी, वह जैसे भयभीत हो गयी। अम्मी ने कहा, 'बाबू साहब बहुत कहने-सुनने से आये हैं, इनसे बातें करो। मैं मीर साहब से मिलकर आती हूँ, देखूँ, क्यों बुलाया है?'

गुलेनार ने कहा, 'कब तक आओगी?'

'आधे घण्टे में।' कहती अम्मा सीढ़ियाँ उतरने लगी।

गुलेनार ने सिर नीचे किये हुए पूछा, 'आपके लिए पान बाजार से मँगवाना होगा न?'

मंगल ने कहा, 'उसकी आवश्यकता नहीं, मैं तो केवल अपना कुतूहल मिटाने आया हूँ-क्या सचमुच तुम वही हो, जिसे मैंने ग्रहण की रात काशी में देखा था?'

'जब आपको केवल पूछना ही है तो मैं क्यों बताऊँ जब आप जान जायेंगे कि मैं वही हूँ, तो फिर आपको आने की आवश्यकता ही न रह जायेगी।'

मंगल ने सोचा, संसार कितनी शीघ्रता से मनुष्य को चतुर बना देता है। 'अब तो पूछने का काम ही नहीं है।'

'क्यों?'

'आवश्यकता ने सब परदा खोल दिया, तुम मुसलमानी कदापि नहीं हो।'

'परन्तु मैं मुसलमानी हूँ।'

'हाँ, यही तो एक भयानक बात है।'

'और यदि न होऊँ

'तब की बात तो दूसरी है।'

'अच्छा तो मैं वहीं हूँ, जिसका आपको भ्रम है।'

'तुम किस प्रकार यहाँ आ गयी हो

'वह बड़ी कथा है।' यह कहकर गुलेनार ने लम्बी साँस ली, उसकी आँखें आँसू से भर गयीं।

'क्या मैं सुन सकता हूँ

'क्यों नहीं, पर सुनकर क्या कीजियेगा। अब इतना ही समझ लीजिये कि मैं एक मुसलमानी वेश्या हूँ।'

'नहीं गुलेनार, तुम्हारा नाम क्या है, सच-सच बताओ।'

'मेरा नाम तारा है। मैं हरिद्वार की रहने वाली हूँ। अपने पिता के साथ काशी में ग्रहण नहाने गयी थी। बड़ी कठिनता से मेरा विवाह ठीक हो गया था। काशी से लौटते हुए मैं एक कुल की स्वामिनी बनती, परन्तु दुर्भाग्य...!' उसकी भरी आँखों से आँसू गिरने लगे।

'धीरज धरो तारा! अच्छा यह तो बताओ, यहाँ कैसे कटती है?'

'मेरा भगवान् जानता है कि कैसे कटती है! दुष्टों के चंगुल में पड़कर मेरा आचार-व्यवहार तो नष्ट हो चुका, केवल सर्वनाश होना बाकी है। उसमें कारण है अम्मा का लोभ और मेरा कुछ आने वालों से ऐसा व्यवहार भी होता है कि अभी वह जितना रुपया चाहती हैं, नहीं मिलता। बस इसी प्रकार बची जा रही हूँ, परन्तु कितने दिन!' गुलेनार सिसकने लगी।

मंगल ने कहा, 'तारा, तुम यहाँ से क्यों नहीं निकल भागती?'

गुलेनार ने पूछा, 'आप ही बताइये, निकलकर कहाँ जाऊँ और क्या करूँ

'अपने माता-पिता के पास। मैं पहुँचा दूँगा, इतना मेरा काम है।'

बड़ी भोली दृष्टि से देखते हुए गुलेनार ने कहा, 'आप जहाँ कहें मैं चल सकती हूँ।'

'अच्छा पहले यह तो बताओं कि कैसे तुम काशी से यहाँ पहुँच गयी हो?'

'किसी दूसरे दिन सुनाऊँगी, अम्मा आती होगी।'

'अच्छा तो आज मैं जाता हूँ।'

'जाइये, पर इस दुखिया का ध्यान रखिये। हाँ, अपना पता तो बताइए, मुझे कोई अवसर मिला, तो मैं कैसे सूचित करूँगी?'

मंगल ने एक चिट पर पता लिखकर दे दिया और कहा, 'मैं भी प्रबन्ध करता रहूँगा। जब अवसर मिले, लिखना, पर एक दिन पहले।'

अम्मा के पैरों का शब्द सीढ़ियों पर सुनाई पड़ा और मंगल उठ खड़ा हुआ। उसके आते ही उसने पाँच रुपये हाथ पर धर दिये।

अम्मा ने कहा, 'बाबू साहब, चले कहाँ! बैठिये भी।'

'नहीं, फिर किसी दिन आऊँगा, तुम्हारी बेगम साहेबा तो कुछ बोलती ही नहीं, इनके पास बैठकर क्या करूँगा!'

मंगल चला गया। अम्मा क्रोध से दाँत पीसती हुई गुलेनार को घूरने लगी।

दूसरे-तीसरे दिन मंगल गुलेनार के यहाँ जाने लगा, परन्तु वह बहुत सावधान रहता। एक दुश्चरित्र युवक उन्हीं दिनों गुलेनार के यहाँ आता। कभी-कभी मंगल की उससे मुठभेड़ हो जाती, परन्तु मंगल ऐसे कैड़े से बात करता कि वह मान गया। अम्मा ने अपने स्वार्थ साधन के लिए इन दोनों में प्रतिद्वन्द्विता चला दी। युवक शरीर से हृष्ट-पुष्ट कसरती था, उसके ऊपर के होंठ मसूड़ों के ऊपर ही रह गये थे। दाँतों की श्रेणी सदैव खुली रहती, उसकी लम्बी नाक और लाल आँखें बड़ी डरावनी और रोबीली थीं, परन्तु मंगल की मुस्कराहट पर वह भौचका-सा रह जाता और अपने व्यवहार से मंगल को मित्र बनाये रखने की चेष्टा किया करता। गुलेनार अम्मा को यह दिखलाती कि वह मंगल से बहुत बोलना नहीं चाहती।

एक दिन दोनों गुलेनार के पास बैठे थे। युवक ने, जो अभी अपने एक मित्र के साथ दूसरी वेश्या के यहाँ से आया था-अपना डींग हाँकते हुए मित्र के लिए कुछ अपशब्द कहे, फिर उसने मंगल से कहा, 'वह न जाने क्यों उस चुड़ैल

के यहाँ जाता है और क्यों कुरूप स्त्रियाँ वेश्या बनती हैं, जब उन्हें मालूम है कि उन्हें तो रूप के बाजार में बैठना है।' फिर अपनी रसिकता दिखाते हुए हँसने लगा।

'परन्तु मैं तो आज तक यही नहीं समझता कि सुन्दरी स्त्रियाँ क्यों वेश्या बनें! संसार का सबसे सुन्दर जीव क्यों सबसे बुरा काम करे कहकर मंगल ने सोचा कि यह स्कूल की विवाद-सभा नहीं है। वह अपनी मूर्खता पर चुप हो गया। युवक हँस पड़ा। अम्मा अपनी जीविका को बहुत बुरा सुनकर तन गयी। गुलेनार सिर नीचा किये हँस रही थी। अम्मा ने कहा-

'फिर ऐसी जगह बाबू आते ही क्यों हैं?'

मंगल ने उत्तेजित होकर कहा, 'ठीक है, यह मेरी मूर्खता है

युवक अम्मा को लेकर बातें करने लगा, वह प्रसन्न हुआ कि प्रतिद्वन्द्वी अपनी ही ठोकर से गिरा, धक्का देने की आवश्यकता ही न पड़ी। मंगल की ओर देखकर धीरे से गुलेनार ने कहा, 'अच्छा हुआ, पर जल्द...!'

मंगल उठा और सीढ़ियाँ उतर गया।

शाह मीना की समाधि पर गायकों की भीड़ है। सावन की हरियाली क्षेत्र पर और नील मेघमाला आकाश के अंचल में फैल रही है। पवन के आन्दोलन से बिजली के आलोक में बादलों का हटना-बढ़ना गगन समुद्र में तरंगों का सृजन कर रहा है। कभी फूही पड़ जाती है, समीर का झोंका गायकों को उन्मत्त बना देता है। उनकी इकहरी तानें तिरही हो जाती हैं। सुनने वाले झूमने लगते हैं। वेश्याओं का दर्शकों के लिए आकर्षक समारोह है।

एक घण्टा रात बीत गयी है।

अब रसिकों के समाज में हलचल मची, बूँदें लगातार पड़ने लगीं। लोग तितर-बितर होने लगे। गुलेनार युवक और अम्मा के साथ आती थीं, वह युवक से बातें करने लगी। अम्मा भीड़ में अलग हो गयी, दोनों और आगे बढ़ गये। सहसा गुलेनार ने कहा, 'आह! मेरे पाँव में चटक हो गयी, अब मैं एक पल चल नहीं सकती, डोली ले आओ।' वह बैठ गयी। युवक डोली लेने चला।

गुलेनार ने इधर-उधर देखा, तीन तालियाँ बजीं। मंगल आ गया, उसने कहा, 'ताँगा ठीक है।'

गुलेनार ने कहा, 'किधर?'

'चलो!' दोनों हाथ पकड़कर बढ़े। चक्कर देखकर दोनों बाहर आ गये, ताँगे पर बैठे और वह ताँगे वाला कौवालों की तान 'जिस-जिस को दिया चाहें'

दुहराता हुआ चाबुक लगाता घोड़े को उड़ा ले चला। चारबाग स्टेशन पर देहरादून जाने वाली गाड़ी खड़ी थी। ताँगे वाले को पुरस्कार देकर मंगल सीधे गाड़ी में जाकर बैठ गया। सीटी बजी, सिगनल हुआ, गाड़ी खुल गयी।

'तारा, थोड़ा भी विलम्ब से गाड़ी न मिलती।'

'ठीक समय से पाती आ गया। हाँ, यह तो कहो, मेरा पत्र कब मिला?'

'आज नौ बजे। मैं समान ठीक करके संध्या की बाट देख रहा था। टिकट ले लिये थे और ठीक समय पर तुमसे भेंट हुई।'

'कोई पूछे तो क्या कहा जायेगा?'

'अपने वेश्यापन के दो-तीन आभूषण उतार दो और किसी के पूछने पर कहना-अपने पिता के पास जा रही हूँ, ठीक पता बताना।'

तारा ने फुरती से वैसा ही किया। वह एक साधारण गृहस्थ बालिका बन गयी।

वहाँ पूरा एकान्त था, दूसरे यात्री न थे। देहरादून एक्सप्रेस वेग से जा रही थी।

मंगल ने कहा, 'तुम्हें सूझी अच्छी। उस तुम्हारी दुष्ट अम्मा को यही विश्वास होगा कि कोई दूसरा ही ले गया। हमारे पास तक तो उसका सन्देह भी न पहुँचेगा।'

'भगवान् की दया से नरक से छुटकारा मिला। आह कैसी नीच कल्पनाओं से हृदय भर जाता था-सन्ध्या में बैठकर मनुष्य-समाज की अशुभ कामना करना, उस नरक के पथ की ओर चलने का संकेत बताना, फिर उसी से अपनी जीविका!'

'तारा, फिर भी तुमने धर्म की रक्षा की। आश्चर्य!'

'यही कभी-कभी मैं भी विचारती हूँ कि संसार दूर से, नगर, जनपद सौध-श्रेणी, राजमार्ग और अट्टालिकाओं से जितना शोभन दिखाई पड़ता है, वैसा ही सरल और सुन्दर भीतर से नहीं है, जिस दिन मैं अपने पिता से अलग हुई, ऐसे-ऐसे निर्लज्ज और नीच मनोवृत्तियों के मनुष्यों से सामना हुआ, जिन्हें पशु भी कहना उन्हें महिमान्वित करना है!'

'हाँ-हाँ, यह तो कहो, तुम काशी से लखनऊ कैसे आ गयीं?'

'तुम्हारे सामने जिस दुष्टा ने मुझे फँसाया, वह स्त्रियों का व्यापार करने वाली एक संस्था की कुटनी थी। मुझे ले जाकर उन सबों ने एक घर में रखा, जिसमें मेरी ही जैसी कई अभागिनें थीं, परन्तु उनमें सब मेरी जैसी रोने वाली

न थीं। बहुत-सी स्वेच्छा से आयी थीं और कितनी ही कलंक लगने पर अपने घर वालों से ही मेले में छोड़ दी गई थीं! मैं अलग बैठी रोती थी। उन्हीं में से कई मुझे हँसाने का उद्योग करतीं, कोई समझाती, कोई झिड़कियाँ सुनाती और कोई मेरी मनोवृत्ति के कारण मुझे बनाती! मैं चुप होकर सुना करती, परन्तु कोई पथ निकलने का न था। सब प्रबन्ध ठीक हो गया था, हम लोग पंजाब भेजी जाने वाली थीं। रेल पर बैठने का समय हुआ, मैं सिसक रही थी। स्टेशन के विश्रामगृह में एक भीड़-सी लग रही थी, परन्तु मुझे कोई न पूछता था। यही दुष्टा अम्मा वहाँ आई और बड़े दुलार से बोली-चल बेटी, मैं तुझे तेरी माँ के पास पहुँचा दूँगी। मैंने उन सबों को ठीक कर लिया है। मैं प्रसन्न हो गयी। मैं क्या जानती थी कि चूल्हे से निकलकर भाड़ में जाऊँगी। बात भी कुछ ऐसी थी। मुझे उपद्रव मचाते देखकर उन लोगों ने अम्मा से रुपया लेकर मुझे उसके साथ कर दिया, मैं लखनऊ पहुँची।'

'हाँ-हाँ, ठीक है, मैंने सुना है पंजाब में स्त्रियों की कमी है, इसीलिए और प्रान्तों से स्त्रियाँ वहाँ भेजी जाती हैं, जो अच्छे दामों पर बिकती हैं। क्या तुम भी उन्हीं के चंगुल में...

'हाँ, दुर्भाग्य से!'

स्टेशन पर गाड़ी रुक गयी। रजनी की गहरी नीलिमा के नभ में तारे चमक रहे थे। तारा उन्हें खिड़की से देखने लगी। इतने में उस गाड़ी में एक पुरुष यात्री ने प्रवेश किया। तारा घूँघट निकालकर बैठ गयी और वह पुरुष मुँह फेरकर सो गया है, परन्तु अभी जगे रहने की सम्भावना थी। बातें आरम्भ न हुईं। कुछ देर तक दोनों चुपचाप थे। फिर झपकी आने लगी। तारा ऊँघने लगी। मंगल भी झपकी लेने लगा। गंभीर रजनी के अंचल से उस चलती हुई गाड़ी पर पंखा चल रहा था। आमने-सामने बैठे हुए मंगल और तारा निद्रावश होकर झूम रहे थे। मंगल का सिर टकराया। उसकी आँखें खुली। तारा का घूँघट उलट गया था। देखा, तो गले का कुछ अंश, कपोल, पाली और निद्रानिमीलित पद्मापलाशलोचन, जिस पर भौंहों की काली सेना का पहरा था! वह न जाने क्यों उसे देखने लगा। सहसा गाड़ी रुकी और धक्का लगा! तारा मंगलदेव के अंक में आ गयी। मंगल ने उसे सम्हाल लिया। वह आँखें खोलती हुई मुस्कुराई और फिर सहारे से टिककर सोने लगी। यात्री जो अभी दूसरे स्टेशन पर चढ़ा था, सोते-सोते वेग से उठ पड़ा और सिर खिड़की से बाहर निकालकर वमन करने लगा। मंगल स्वयंसेवक था। उसने जाकर उसे पकड़ा और तारा से कहा, श्लोटे में पानी होगा, दो मुझे!'

तारा ने जल दिया, मंगल ने यात्री का मुँह धुलाया। वह आँखों को जल से ठंडक पहुँचाते हुए मंगल के प्रति कृतिज्ञता प्रकट करना ही चाहता था कि तारा और उसकी आँखें मिल गयीं। तारा पैर पकड़कर रोने लगी। यात्री ने निर्दयता से झिटकार दिया। मंगल अवाक् था।

'बाबू जी, मेरा क्या अपराध है मैं तो आप लोगों को खोज रही थी।'

'अभागिनी! खोज रही थी मुझे या किसी और को?'

'किसको बाबूजी बिलखते हुए तारा ने कहा।

'जो पास में बैठा है। मुझे खोजना चाहती है, तो एक पोस्टकार्ड न डाल देती कलंकिनी, दुष्ट! मुझे जल पिला दिया, प्रायश्चित्त करना पड़ेगा!'

अब मंगल के समझ में आया कि वह यात्री तारा का पिता है, परन्तु उसे विश्वास न हुआ कि यही तारा का पिता है। क्या पिता भी इतना निर्दय हो सकता है, उसे अपने ऊपर किये गये व्यंग्य का भी बड़ा दु:ख हुआ, परन्तु क्या करे, इस कठोर अपमान को तारा का भविष्य सोचकर वह पी गया। उसने धीरे-से सिसकती हुई तारा से पूछा, 'क्या वही तुम्हारे पिता हैं?'

'हाँ, परन्तु मैं अब क्या करूँ बाबूजी, मेरी माँ होती तो इतनी कठोरता न करती। मैं उन्हीं की गोद में जाऊँगी।' तारा फूट-फूटकर रो रही थी।

'तेरी नीचता से दु:खी होकर महीनों हुआ, वह मर गयी, तू न मरी-कालिख पोतने के लिए जीती रही!' यात्री ने कहा।

मंगल से रहा न गया, उसने कहा, 'महाशय, आपका क्रोध व्यर्थ है। यह स्त्री कुचक्रियों के फेर में पड़ गयी थी, परन्तु इसकी पवित्रता में कोई अन्तर नहीं पड़ा, बड़ी कठिनता से इसका उद्धार करके मैं इसे आप ही के पास पहुँचाने के लिए जाता था। भाग्य से आप मिल गये।'

'भाग्य नहीं, दुर्भाग्य से!' घृणा और क्रोध से यात्री के मुँह का रंग बदल रहा था।

'तब यह किसकी शरण में जायेगी? अभागिनी की कौन रक्षा करेगा मैं आपको प्रमाण दूँगा कि तारा निरपराधिनी है। आप इसे...'

बीच ही में यात्री ने रोककर कहा, 'मूर्ख युवक! ऐसी स्वैरिणी को कौन गृहस्थ अपनी कन्या कहकर सिर नीचा करेगा। तुम्हारे जैसे इनके बहुत-से संरक्षक मिलेंगे। बस अब मुझसे कुछ न कहो।' यात्री का दम्भ उसके अधरों में स्फुरित हो रहा था। तारा अधीर होकर रो रही थी और युवक इस कठोर उत्तर को अपने मन में तौल रहा था।

गाड़ी बीच के छोटे स्टेशन पर नहीं रुकी। स्टेशन की लालटेनें जल रही थीं। तारा ने देखा, एक सजा-सजाया घर भागकर छिप गया। तीनों चुप रहे। तारा क्रोध पर ग्लानि से फूल रही थी। निराशा और अन्धकार में विलीन हो रही थी। गाड़ी स्टेशन पर रुकी। सहसा यात्री उतर गया।

मंगलदेव कर्त्तव्य चिंता में व्यस्त था। तारा भविष्य की कल्पना कर रही थी। गाड़ी अपनी धुन में गंभीर तम का भेदन करती हुई चलने लगी।

(3) हरिद्वार की बस्ती से अलग गंगा के तट पर एक छोटा-सा उपवन है। दो-तीन कमरे और दालानों का उससे लगा हुआ छोटा-सा घर है। दालान में बैठी हुई तारा माँग सँवार रही है। अपनी दुबली-पतली लम्बी काया की छाया प्रभात के कोमल आतप से डालती हुई तारा एक कुलवधू के समान दिखाई पड़ती है। बालों से लपेटकर बँधा हुआ जूड़ा छलछलायी आँखें, नमित और ढीली अंगलता, पतली-पतली लम्बी उँगलियाँ, जैसे विचित्र सजीव होकर काम कर रहा है। पखवारों में तारा के कपोलों के ऊपर भौंहों के नीचे 'याम-मण्डल' पड़ गया है। वह काम करते हुए भी, जैसे अन्यमनस्क-सी है। अन्यमनस्क रहना ही उसका स्वाभाविकता है। आज-कल उसकी झुकी हुई पलकें काली पुतलियों को छिपाये रखती हैं। आँखें संकेत से कहती हैं कि हमें कुछ न कहो, नहीं बरसने लगेंगी।

पास ही तून की छाया में पत्थर पर बैठा हुआ मंगल एक पत्र लिख रहा है। पत्र समाप्त करके उसने तारा की ओर देखा और पूछा, 'मैं पत्र छोड़ने जा रहा हूँ। कोई काम बाजार का हो तो करता आऊँ।'

तारा ने पूर्ण ग्रहिणी भाव से कहा, 'थोडा कड़वा तेल चाहिए और सब वस्तुएँ हैं।' मंगलदेव जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। तारा ने फिर पूछा, 'और नौकरी का क्या हुआ?'

'नौकरी मिल गयी है। उसी की स्वीकृति-सूचना लिखकर पाठशाला के अधिकारी के पास भेज रहा हूँ। आर्य-समाज की पाठशाला में व्यायाम-शिक्षक का काम करूँगा।'

'वेतन तो थोड़ा ही मिलेगा। यदि मुझे भी कोई काम मिल जाये, तो देखना, मैं तुम्हारा हाथ बँटा लूँगी।'

मंगलदेव ने हँस दिया और कहा, 'स्त्रियाँ बहुत शीघ्र उत्साहित हो जाती हैं और उतने ही अधिक परिणाम में निराशावादिनी भी होती हैं। भला मैं तो पहले टिक जाऊँ! फिर तुम्हारी देखी जायेगी।' मंगलदेव चला गया। तारा ने उस एकान्त

उपवन की ओर देखा–शरद का निरभ्र आकाश छोटे–से उपवन पर अपने उज्ज्वल आतप के मिस हँस रहा था। तारा सोचने लगी–

'यहाँ से थोड़ी दूर पर मेरा पितृगृह है, पर मैं वहाँ नहीं जा सकती। पिता समाज और धर्म के भय से त्रस्त हैं। ओह, निष्ठुर पिता! अब उनकी भी पहली–सी आय नहीं, महन्तजी प्रायः बाहर, विशेषकर काशी रहा करते हैं। मठ की अवस्था बिगड़ गयी है। मंगलदेव–एक अपरिचित युवक–केवल सत्साहस के बल पर मेरा पालन कर रहा है। इस दासवृत्ति से जीवन बिताने से क्या वह बुरा था, जिसे छोड़कर मैं आयी। किस आकर्षण ने यह उत्साह दिलाया और अब वह क्या हुआ, जो मेरा मन ग्लानि का अनुभव करता है, परतन्त्रता से नहीं, मैं भी स्वावलम्बिनी बनूँगी, परन्तु मंगल! निरीह निष्पाप हृदय!'

तारा और मंगल–दोनों के मन के संकल्प–विकल्प चल रहे थे। समय अपने मार्ग चल रहा था। दिन छूटते जाते थे। मंगल की नौकरी लग गयी। तारा गृहस्थी चलाने लगी।

धीरे–धीरे मंगल के बहुत से आर्य मित्र बन गये और कभी–कभी देवियाँ भी तारा से मिलने लगीं। आवश्यकता से विवश होकर मंगल और तारा ने आर्य समाज का साथ दिया था। मंगल स्वतंत्र विचार का युवक था, उसके धर्म सम्बन्धी विचार निराले थे, परन्तु बाहर से वह पूर्ण आर्य समाजी था। तारा की सामाजिकता बनाने के लिये उसे दूसरा मार्ग न था।

एक दिन कई मित्रों के अनुरोध से उसने अपने यहाँ प्रीतिभोज दिया। श्रीमती प्रकाश देवी, सुभद्रा, अम्बालिका, पीलोमी आदि नामांकित कई देवियाँ, अभिमन्यु, वेदस्वरूप, ज्ञानदत्त और वरुणप्रिय, भीष्मव्रत आदि कई आर्यसभ्य एकत्रित हुए।

वृक्ष के नीचे कुर्सियाँ पड़ी थीं। सब बैठे थे। बातचीत हो रही थी। तारा अतिथियों के स्वागत में लगी थी। भोजन बनकर प्रस्तुत था। ज्ञानदत्त ने कहा, 'अभी ब्रह्मचारी जी नहीं आये!'

अरुण, 'आते ही होंगे!'

वेद–'तब तक हम लोग संध्या कर लें।'

इन्द–'यह प्रस्ताव ठीक है, परन्तु लीजिये, वह ब्रह्मचारी जी आ रहे हैं।'

एक घुटनों से नीचा लम्बा कुर्ता डाले, लम्बे बाल और छोटी दाढ़ी वाले गौरवपूर्ण युवक को देखते ही नमस्ते की धूम मच गई। ब्रह्मचारी जी बैठे। मंगलदेव का परिचय देते हुए वेदस्वरूप ने कहा, 'आपका शुभ नाम मंगलदेव

है! उन्होंने ही इन देवी का यवनों के चंगुल से उद्धार किया है।' तारा ने नमस्ते किया, ब्रह्मचारी ने पहले हँस कर कहा, 'सो तो होना चाहिए, ऐसे ही नवयुवकों से भारतवर्ष को आशा है। इस सत्साह के लिए मैं धन्यवाद देता हूँ आप समाज में कब से प्रविष्ट हुए हैं?'

'अभी तो मैं सभ्यों में नहीं हूँ।' मंगल ने कहा।

'बहुत शीघ्र जाइये, बिना भित्ति के कोई घर नहीं टिकता और बिना नींव की कोई भित्ति नहीं। उसी प्रकार सद्विचार के बिना मनुष्य की स्थिति नहीं और धर्म-संस्कारों के बिना सद्विचार टिकाऊ नहीं होते। इसके सम्बन्ध में मैं विशेष रूप से फिर कहूँगा। आइये, हम लोग सन्ध्या-वन्दन कर लें।'

सन्ध्या और प्रार्थना के समय मंगलदेव केवल चुपचाप बैठा रहा। थालियाँ परसी गईं। भोजन करने के लिए लोग आसन पर बैठे। वेदस्वरूप ने कहना आरम्भ किया, 'हमारी जाति में धर्म के प्रति इतनी उदासीनता का कारण है एक कल्पित ज्ञान, जो इस देश के प्रत्येक प्राणी की वाणी के लिए सुलभ हो गया है। वस्तुतः उन्हें ज्ञानाभाव होता है और वे अपने साधारण नित्यकर्म से वंचित होकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करने में भी असमर्थ होते हैं।'

ज्ञानदत्त-'इसलिए आर्यों का कर्मवाद संसार के लिए विलक्षण कल्याणदायक है-ईश्वर के प्रति विश्वास करते हुए भी स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाता है। यह ऋषियों का दिव्य अनुसंधान है।'

ब्रह्मचारी ने कहा, 'तो अब क्या विलम्ब है, बातें भी चला करेंगी।'

मंगलदेव ने कहा, 'हाँ, हाँ आरम्भ कीजिये।'

ब्रह्मचारी ने गंभीर स्वर में प्रणवाद किया और दन्त-अन्न का युद्ध प्रारम्भ हुआ।

मंगलदेव ने कहा, 'परन्तु संसार की अभाव-आवश्यकताओं को देखकर यह कहना पड़ता है कि कर्मवाद का सृजन करके हिन्दू-जाति ने अपने लिए असंतोष और दौड़-धूप, आशा और संकल्प का फन्दा बना लिया है।'

'कदापि नहीं, ऐसा समझना भ्रम है महाशयजी! मनुष्यों को पाप-पुण्य की सीमा में रखने के लिए इससे बढ़कर कोई उपाय जाग्रत नहीं मिला।'

सुभद्रा ने कहा।

'श्रीमती! मैं पाप-पुण्य की परिभाषा नहीं समझता, परन्तु यह कहूँगा कि मुसलमान धर्म इस ओर बड़ा दृढ़ है। वह सम्पूर्ण निराशावादी होते हुए, भौतिक कुल शक्तियों पर अविश्वास करते हुए, केवल ईश्वर की अनुकम्पा पर अपने

को निर्भर करता है। इसीलिए उनमें इतनी दृढ़ता होती है। उन्हें विश्वास होता है कि मनुष्य कुछ नहीं कर सकता, बिना परमात्मा की आज्ञा के और केवल इसी एक विश्वास के कारण वे संसार में संतुष्ट हैं।'

परसने वाले ने कहा, 'मूँग का हलवा ले आऊँ। खीर में तो अभी कुछ विलम्ब है।'

ब्रह्मचारी ने कहा, 'भाई हम जीवन को सुख के अच्छे उपकरण ढूँढ़ने में नहीं बिताना चाहते। जो कुछ प्राप्त है, उसी में जीवन सुखी होकर बीते, इसी की चेष्टा करते हैं, इसलिए जो प्रस्तुत हो, ले आओ।'

सब लोग हँस पड़े।

फिर ब्रह्मचारी ने कहा, 'महाशय जी, आपने एक बड़े धर्म की बात कही है। मैं उसका कुछ निराकरण कर देना चाहता हूँ। मुसलमान-धर्म निराशावादी होते हुए भी क्यों इतना उन्नतिशील है, इसका कारण तो आपने स्वयं कहा कि 'ईश्वर में विश्वास' परन्तु इसके साथ उनकी सफलता का एक और भी रहस्य है। वह है, उनकी नित्य-क्रिया की नियम-बद्धता, क्योंकि नियमित रूप से परमात्मा की कृपा का लाभ उठाने के लिए प्रार्थना करनी आवश्यक है। मानव-स्वाभाव दुर्बलताओं का संकलन है, सत्यकर्म विशेष होने पाते नहीं, क्योंकि नित्य-क्रियाओं द्वारा उनका अभ्यास नहीं। दूसरी ओर ज्ञान की कमी से ईश्वर निष्ठा भी नहीं। इसी अवस्था को देखते हुए ऋषि ने यह सुगम आर्य-पथ बनाया है। प्रार्थना नियमित रूप से करना, ईश्वर में विश्वास करना, यही तो आर्य-समाज का संदेश है। यह स्वावलम्बपूर्ण है, यह दृढ़ विश्वास दिलाता है कि हम सत्यकर्म करेंगे, तो परमात्मा की असीम कृपा अवश्य होगी।'

सब लोगों ने उन्हें धन्यवाद दिया। ब्रह्मचारी ने हँसकर सबका स्वागत किया। अब एक क्षणभर के लिए विवाद स्थगित हो गया और भोजन में सब लोग दत्तचित्त हुए। कुछ भी परसने के लिए जब पूछा जाता तो वे 'हूँ' कहते। कभी-कभी न लेने के लिए उसी का प्रयोग होता। परसने वाला घबरा जाता और भ्रम से उनकी थाली में कुछ-न-कुछ डाल देता, परन्तु वह सब यथास्थान पहुँच जाता। भोजन समाप्त करके सब लोग यथास्थान बैठे। तारा भी देवियों के साथ हिल-मिल गयी।

चाँदनी निकल आयी थी। समय सुन्दर था। ब्रह्मचारी ने प्रसंग छेड़ते हुए कहा, 'मंगलदेव जी! आपने एक आर्य-बालिका का यवनों से उद्धार करके बड़ा पुण्यकर्म किया है, इसके लिए आपको हम सब लोग बधाई देते हैं।'

वेदस्वरूप-'और इस उत्तम प्रीतिभोज के लिए धन्यवाद।'

विदुषी सुभद्रा ने कहा, 'परमात्मा की कृपा से तारादेवी के शुभ पाणिग्रहण के अवसर पर हम लोग फिर इसी प्रकार सम्मिलित हों।'

मंगलदेव, ने जो अभी तक अपनी प्रशंसा का बोझ सिर नीचे किये उठा रहा था, कहा, 'जिस दिन इतनी हो जाये, उसी दिन मैं अपने कर्त्तव्य का पूरा कर सकूँगा।'

तारा सिर झुकाए रही। उसके मन में इन सामाजिकों की सहानुभूति ने एक नई कल्पना उत्पन्न कर दी। वह एक क्षण भर के लिए अपने भविष्य से निश्चिन्त-सी हो गयी।

उपवन के बाहर तक तारा और मंगलदेव ने अतिथियों को पहुँचाया। लोग विदा हो गये। मंगलदेव अपनी कोठरी में चला गया और तारा अपने कमरे में जाकर पलंग पर लेट गयी। उसने एक बार आकाश के सुकुमार शिशु को देखा। छोटे-से चन्द्र की हलकी चाँदनी में वृक्षों की परछाईं उसकी कल्पनाओं को रंजित करने लगी। वह अपने उपवन का मूक दृश्य खुली आँखों से देखने लगी। पलकों में नींद न थी, मन में चैन न था, न जाने क्यों उसके हृदय में धड़कन बढ़ रही थी। रजनी के नीरव संसार में वह उसे साफ सुन रही थी। जागते-जागते दोपहर से अधिक चली गयी। चन्द्रिका के अस्त हो जाने से उपवन में अँधेरा फैल गया। तारा उसी में आँख गड़ाकर न जाने क्या देखना चाहती थी। उसका भूत, वर्तमान और भविष्य-तीनों अन्धकार में कभी छिपते और कभी तारों के रूप में चमक उठते। वह एक बार अपनी उस वृत्ति का आह्वान करने की चेष्टा करने लगी, जिसकी शिक्षा उसे वेश्यालय से मिली थी। उसने मंगल को तब नहीं, परन्तु अब खींचना चाहा। रसीली कल्पनाओं से हृदय भर गया। रात बीत चली। उषा का आलोक प्राची में फैल रहा था। उसने खिड़की से झाँककर देखा तो उपवन में चहल-पहल थी। जूही की प्यालियों में मकरन्द-मदिरा पीकर मधुपों की टोलियाँ लड़खड़ा रही थीं और दक्षिणपवन मौलसिरी के फूलों की कौड़ियाँ फेंक रहा था। कमर से झुकी हुई अलबेली बेलियाँ नाच रही थीं। मन की हार-जीत हो रही थी।

मंगलदेव ने पुकारा, 'नमस्कार!'

तारा ने मुस्कुराते हुए पलंग पर बैठकर दोनों हाथ सिर से लगाते हुए कहा, 'नमस्कार!'

मंगल ने देखा-कविता में वर्णित नायिका जैसे प्रभात की शैया पर बैठी है।

समय के साथ-साथ अधिकाधिक गृहस्थी में चतुर और मंगल परिश्रमी होता जाता था। सवेरे जलपान बनाकर तारा मंगल को देती, समय पर भोजन और ब्यालू। मंगल के वेतन में सब प्रबन्ध हो जाता, कुछ बचता न था। दोनों को बचाने की चिंता भी न थी, परन्तु इन दोनों की एक बात नई हो चली। तारा मंगल के अध्ययन में बाधा डालने लगी। वह प्रायः उसके पास ही बैठ जाती। उसकी पुस्तकों को उलटती, यह प्रकट हो जाता कि तारा मंगल से अधिक बातचीत करना चाहती है और मंगल कभी-कभी उससे घबरा उठता।

वसन्त का प्रारम्भ था, पत्ते देखते ही देखते ऐंठते जाते थे और पतझड़ के बीहड़ समीर से वे झड़कर गिरते थे। दोपहर था। कभी-कभी बीच में कोई पक्षी वृक्षों की शाखाओं में छिपा हुआ बोल उठता। फिर निस्तब्धता छा जाती। दिवस विरस हो चले थे। अँगड़ाई लेकर तारा ने वृक्ष के नीचे बैठे हुए मंगल से कहा, 'आज मन नहीं लगता है।'

'मेरा मन भी उचाट हो रहा है। इच्छा होती है कि कहीं घूम आऊँ, परन्तु तुम्हारा ब्याह हुए बिना मैं कहीं नहीं जा सकता।'

'मैं तो ब्याह न करूँगी।'

'क्यों?'

'दिन तो बिताना ही है, कहीं नौकरी कर लूँगी। ब्याह करने की क्या आवश्यकता है?'

'नहीं तारा, यह नहीं हो सकता। तुम्हारा निश्चित लक्ष्य बनाये बिना कर्त्तव्य मुझे धिक्कार देगा।'

'मेरा लक्ष्य क्या है, अभी मैं स्वयं स्थिर नहीं कर सकी।'

'मैं स्थिर करूँगा।'

'क्यों ये भार अपने ऊपर लेते हो मुझे अपनी धारा में बहने दो।'

'सो नहीं हो सकेगा।'

'मैं कभी-कभी विचारती हूँ कि छायाचित्र-सदृश जलस्रोत में नियति पवन के थपेड़े लगा रही है, वह तरंग-संकुल होकर घूम रहा है और मैं एक तिनके के सदृश उसी में इधर-उधर बह रही हूँ। कभी भँवर में चक्कर खाती हूँ, कभी लहरों में नीचे-ऊपर होती हूँ। कहीं कूल-किनारा नहीं।' कहते-कहते तारा की आँखें छलछला उठीं।

'न घबड़ाओं तारा, भगवान् सबके सहायक हैं।' मंगल ने कहा और जी बहलाने के लिए कहीं घूमने का प्रस्ताव किया।

दोनों उतरकर गंगा के समीप के शिला-खण्डों से लगकर बैठ गये। जाह्नवी के स्पर्श से पवन अत्यन्त शीतल होकर शरीर में लगता है। यहाँ धूप कुछ भली लगती थी। दोनों विलम्ब तक बैठे चुपचाप निसर्ग के सुन्दर दृश्य देखते थे। संध्या हो चली। मंगल ने कहा, 'तारा चलो, घर चलें।' तारा चुपचाप उठी। मंगल ने देखा, उसकी आँखें लाल हैं। मंगल ने पूछा, 'क्या सिर दर्द है?'

'नहीं तो।'

दोनों घर पहुँचे। मंगल ने कहा, 'आज ब्यालू बनाने की आवश्यकता नहीं, जो कहो बाजार से लेता आऊँ।'

'इस तरह कैसे चलेगा। मुझे क्या हुआ है, थोड़ा दूध ले आओ, तो खीर बना दूँ, कुछ पूरियाँ बची हैं।'

मंगलदेव दूध लेने चला गया।

तारा सोचने लगी-मंगल मेरा कौन है, जो मैं इतनी आज्ञा देती हूँ। क्या वह मेरा कोई है। मन में सहसा बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ उदित हुईं और गंभीर आकाश के शून्य में ताराओं के समान डूब गई। वह चुप बैठी रही।

मंगल दूध लेकर आया। दीपक जला। भोजन बना। मंगल ने कहा, 'तारा आज तुम मेरे साथ ही बैठकर भोजन करो।'

तारा को कुछ आश्चर्य न हुआ, यद्यपि मंगल ने कभी ऐसा प्रस्ताव न किया था, परन्तु वह उत्साह के साथ सम्मिलित हुई।

दोनों भोजन करके अपने-अपने पलंग पर चले गये। तारा की आँखों में नींद न थी, उसे कुछ शब्द सुनाई पड़ा। पहले तो उसे भय लगा, फिर साहस करके उठी। आहट लगी कि मंगल का-सा शब्द है। वह उसके कमरे में जाकर खड़ी हो गई। मंगल सपना देख रहा था, बर्राता था-'कौन कहता है कि तारा मेरी नहीं है मैं भी उसी का हूँ। तुम्हारे हत्यारे समाज की मैं चिंता नहीं करता... वह देवी है। मैं उसकी सेवा करूँगा...नहीं-नहीं, उसे मुझसे न छीनो।'

तारा पलंग पर झुक गयी थी, वसन्त की लहरीली समीर उसे पीछे से ढकेल रही थी। रोमांच हो रहा था, जैसे कामना-तरंगिनी में छोटी-छोटी लहरियाँ उठ रही थीं। कभी वक्षस्थल में, कभी कपोलों पर स्वेद हो जाते थे। प्रकृति प्रलोभन में सजी थी। विश्व एक भ्रम बनकर तारा के यौवन की उमंग में डूबना चाहता था।

सहसा मंगल ने उसी प्रकार सपने में बर्राते हुए कहा, 'मेरी तारा, प्यारी तारा आओ!' उसके दोनों हाथ उठ रहे थे कि आँख बन्द कर तारा ने अपने को मंगल के अंक में डाल दिया?'

प्रभात हुआ, वृक्षों के अंक में पक्षियों का कलरव होने लगा। मंगल की आँखें खुलीं, जैसे उसने रातभर एक मनोहर सपना देखा हो। वह तारा को छोड़कर बाहर निकल आया, टहलने लगा। उत्साह से उसके चरण नृत्य कर रहे थे। बड़ी उत्तेजित अवस्था में टहल रहा था। टहलते-टहलते एक बार अपनी कोठरी में गया। जंगले से पहली लाल किरणें तारा के कपोल पर पड़ रही थी। मंगल ने उसे चूम लिया। तारा जाग पड़ी। वह लजाती हुई मुस्कुराने लगी। दोनों का मन हलका था।

उत्साह में दिन बीतने लगे। दोनों के व्यक्तित्त्व में परिवर्तन हो चला। अब तारा का वह निःसंकोच भाव न रहा। पति-पत्नी का सा व्यवहार होने लगा। मंगल बड़े स्नेह से पूछता, वह सहज संकोच से उत्तर देती। मंगल मन-ही-मन प्रसन्न होता। उसके लिए संसार पूर्ण हो गया था-कहीं रिक्तता नहीं, कहीं अभाव नहीं।

तारा एक दिन बैठी कसीदा काढ़ रही थी। धम-धम का शब्द हुआ। दोपहर था, आँख उठाकर देखा... एक बालक दौड़ा हुआ आकर दालान में छिप गया। उपवन के किवाड़ तो खुले ही थे और भी दो लड़के पीछे-पीछे आये। पहला बालक सिमटकर सबकी आँखों की ओट हो जाना चाहता था। तारा कुतूहल से देखने लगी। उसने संकेत से मना किया कि बतावे न। तारा हँसने लगी। दोनों के खोजने वाले लड़के ताड़ गये। एक ने पूछा, 'सच बताना रामू यहाँ आया है पड़ोस के लड़के थे, तारा ने हँस दिया, रामू पकड़ा गया। तारा ने तीनों को एक-एक मिठाई दी। खूब हँसी होती रही।

कभी-कभी कल्लू की माँ आ जाती। वह कसीदा सीखती। कभी बल्लो अपनी किताब लेकर आती, तारा उसे कुछ बताती। विदुषी सुभद्रा भी प्रायः आया करती। एक दिन सुभद्रा बैठी थी, तारा ने कुछ उससे जलपान का अनुरोध किया। सुभद्रा ने कहा, 'तुम्हारा ब्याह जिस दिन होगा, उसी दिन जलपान करूँगी।'

'और जब तक न होगा, तुम मेरे यहाँ जल न पीओगी?'

'जब तक क्यों तुम क्यों विलम्ब करती हो?'

'मैं ब्याह करने की आवश्यकता न समझूँ तो?'

'यह तो असम्भव है। बहन आवश्यकता होती ही है।'

सुभद्रा रुक गयी। तारा के कपोल लाल हो गये। उसकी ओर कनखियों से देख रही थी। वह बोली, 'क्या मंगलदेव ब्याह करने पर प्रस्तुत नहीं होते?'

'मैंने तो कभी प्रस्ताव किया नहीं।'

'मैं करूँगी बहन! संसार बड़ा खराब है। तुम्हारा उद्धार इसलिए नहीं हुआ है कि तुम यों ही पड़ी रहो! मंगल में यदि साहस नहीं है, तो दूसरा पात्र ढूँढ़ा जायेगा, परन्तु सावधान! तुम दोनों को इस तरह रहना कोई भी समाज हो, अच्छी आँखों से नहीं देखेगा। चाहे तुम दोनों कितने ही पवित्र हो!'

तारा को जैसे किसी ने चुटकी काट ली। उसने कहा, 'न देखे समाज भले ही, मैं किसी से कुछ चाहती तो नहीं, पर मैं अपने ब्याह का प्रस्ताव किसी से नहीं कर सकती।'

'भूल है प्यारी बहन! हमारी स्त्रियों की जाति इसी में मारी जाती है। वे मुँह खोलकर सीधा-सादा प्रस्ताव नहीं कर सकतीं, परन्तु संकेतों से अपनी कुटिल अंग-भंगियों के द्वारा प्रस्ताव से अधिक करके पुरुषों को उत्साहित किया करती हैं और बुरा न मानना, तब वे अपना सर्वस्व अनायास ही नष्ट कर देती हैं। ऐसी कितनी घटनाएँ जानी गयी हैं।'

तारा जैसे घबरा गयी। वह कुछ भारी मुँह किये बैठी रही। सुभद्रा भी कुछ समय बीतने पर चली गयी।

मंगलदेव पाठशाला से लौटा। आज उसके हाथ में एक भारी गठरी थी। तारा उठ खड़ी हुई। पूछा, 'आज यह क्या ले आये?'

हँसते हुए मंगल ने कहा, 'देख लो।'

गठरी खुली-साबुन, रूमाल, काँच की चूड़ियाँ, इतर और भी कुछ प्रसाधन के उपयोगी पदार्थ थे। तारा ने हँसते हुए उन्हें अपनाया।

मंगल ने कहा, 'आज समाज में चलो, उत्सव है। कपड़े बदल लो।' तारा ने स्वीकार सूचक सिर हिला दिया। कपड़े का चुनाव होने लगा। साबुन लगा, कंघी फेरी गई। मंगल ने तारा की सहायता की, तारा ने मंगल की। दोनों नयी स्फूर्ति से प्रेरित होकर समाज-भवन की ओर चले।

इतने दिनों बाद तारा आज ही हरिद्वार के पथ पर बाहर निकलकर चली। उसे गलियों का, घाटों का, बाल्यकाल का दृश्य स्मरण हो रहा था-यहाँ वह खेलने आती, वहाँ दर्शन करती, वहाँ पर पिता के साथ घूमने आती। राह चलते-चलते उसे स्मृतियों ने अभिभूत कर दिया। अकस्मात् एक प्रौढ़ा स्त्री उसे

देखकर रुकी और साभिप्राय देखने लगी। वह पास चली आयी। उसने फिर आँखें गड़ाकर देखा, 'तारा तो नहीं।'

'हाँ, चाची!'

'अरी तू कहाँ?'

'भाग्य!'

'क्या तेरे बाबूजी नहीं जानते!'

'जानते हैं चाची, पर मैं क्या करूँ

'अच्छा तू कहाँ है? मैं आऊँगी।'

'लालाराम की बगीची में।'

चाची चली गयी। ये लोग समाज-भवन की ओर चले।

कपड़े सूख चले थे। तारा उन्हें इकट्ठा कर रही थी। मंगल बैठा हुआ उनकी तह लगा रहा था। बदली थी। मंगल ने कहा, 'आज खूब जल बरसेगा।'

'क्यों?'

'बादल भींग रहे हैं, पवन रुका है। प्रेम का भी पूर्व रूप ऐसा ही होता है। तारा! मैं नहीं जानता था कि प्रेम-कादम्बिनी हमारे हृदयाकाश में कब से अड़ी थी और तुम्हारे सौन्दर्य का पवन उस पर घेरा डाले हुए था।'

'मैं जानती थी, जिस दिन परिचय की पुनरावृत्ति हुई, मेरे खारे आँसुओं के प्रेमघन बन चुके थे। मन मतवाला हो गया था, परन्तु तुम्हारी सौम्य-संयत चेष्टा ने रोक रखा थाय मैं मन-ही-मन महसूस कर जाती और इसलिए मैंने तुम्हारी आज्ञा मानकर तुम्हें अपने जीवन के साथ उलझाने लगी थी।'

'मैं नहीं जानता था, तुम इतनी चतुर हो। अजगर के 'वास में खिंचे हुए मृग के समान मैं तुम्हारी इच्छा के भीतर निगल लिया गया।'

'क्या तुम्हें इसका खेद है?'

'तनिक भी नहीं प्यारी तारा, हम दोनों इसलिए उत्पन्न हुए थे। अब मैं उचित समझता हूँ कि हम लोग समाज के प्रचलित नियमों में आबद्ध हो जायें, यद्यपि मेरी दृष्टि में सत्य-प्रेम के सामने उसका कुछ मूल्य नहीं।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

अभी ये लोग बातें कर रहे थे कि उस दिन की चाची दिखलाई पड़ी। तारा ने प्रसन्नता से उसका स्वागत किया। उसका चादर उतारकर उसे बैठाया। मंगलदेव बाहर चला गया।

'तारा तुमने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया।' चाची ने कहा।

'क्यों चाची! जहाँ अपने परिचित होते हैं, वहीं तो लोग जाते हैं। परन्तु दुर्नाम की अवस्था में उसे जगह से अलग जाना चाहिए।'

'तो क्या तुम लोग चाहती हो कि मैं यहाँ न रहूँ

'नहीं-नहीं, भला ऐसा भी कोई कहेगा।' जीभ दबाते हुए चाची ने कहा।

'पिताजी ने मेरा तिरस्कार किया, मैं क्या करती चाची।' तारा रोने लगी।

चाची ने सान्त्वना देते हुए कहा, 'न रो तारा!'

समझाने के बाद फिर तारा चुप हुई, परन्तु वह फूल रही थी। फिर मंगल के प्रति संकेत करते हुए चाची ने पूछा, 'क्या यह प्रेम ठहरेगा तारा, मैं इसलिए चिन्तित हो रही हूँ, ऐसे बहुत से प्रेमी संसार में मिलते हैं, पर निभाने वाले बहुत कम होते हैं। मैंने तेरी माँ को ही देखा है।' चाची की आँखों में आँसू भर आये, पर तारा को अपनी माता का इस तरह का स्मरण किया जाना बहुत बुरा लगा। वह कुछ न बोली। चाची को जलपान कराना चाहाय पर वह जाने के लिए हठ करने लगी। तारा समझ गयी और बोला, 'अच्छा चाची! मेरे ब्याह में आना। भला और कोई नहीं, तो तुम तो अकेली अभागिन पर दया करना।'

चाची को जैसे ठोकर सी लग गयी। वह सिर उठाकर कहने लगी, 'कब है अच्छा-अच्छा आऊँगी।' फिर इधर-उधर की बातें करके वह चली गयी।

तारा से सशंक होकर एक बार फिर विलक्षण चाची को देखा, जिसे पीछे से देखकर कोई नहीं कह सकता था कि चालीस बरस की स्त्री है। वह अपनी इठलाती हुई चाल से चली जा रही थी। तारा ने मन में सोचा-ब्याह की बात करके मैंने अच्छा नहीं किया, परन्तु करती क्या, अपनी स्थिति साफ करने के लिए दूसरा उपाय ही न था।

मंगल जब तक लौट न आया, वह चिन्तित बैठी रही।

चाची अब प्रायः नित्य आती। तारा के विवाहोत्सव-सम्बन्ध की वस्तुओं की सूची बनाती। तारा उत्साह में भर गयी थी। मंगलदेव से जो कहा जाता, वही ले आता। बहुत शीघ्रता से काम आरम्भ हुआ। चाची को अपना सहायक पाकर तारा और मंगल दोनों की प्रसन्न थे। एक दिन तारा गंगा-स्नान करने गयी थी। मंगल चाची के कहने पर आवश्यक वस्तुओं की तालिका लिख रहा था। वह सिर नीचा किये हुए लेखनी चलाता था और आगे बढ़ने के लिए 'हूँ' कहता जाता था। सहसा चाची ने कहा, 'परन्तु यह ब्याह होगा किस रीत से मैं जो लिखा रही हूँ, वह तो पुरानी चाल के ब्याह के लिए है।'

'क्या ब्याह भी कई चाल के होते हैं?' मंगल ने कहा।

'क्यों नहीं।' गम्भीरता से चाची बोली।

'मैं क्या जानूँ, आर्य-समाज के कुछ लोग उस दिन निमंत्रित होंगे और वही लोग उसे करवायेंगे। हाँ, उसमें पूजा का टंट-घंट वैसा न होगा और सब तो वैसा ही होगा।'

'ठीक है।' मुस्कुराती हुए चाची ने कहा, 'ऐसे वर-वधू का ब्याह और किस रीति से होगा।'

'क्यों आश्चर्य से मंगल उसका मुँह देखने लगा। चाची के मुँह पर उस समय बड़ा विचित्र भाव था। विलास-भरी आँखें, मचलती हुई हँसी देखकर मंगल को स्वयं संकोच होने लगा। कुत्सित स्त्रियों के समान वह दिल्लगी के स्वर में बोली, 'मंगल बड़ा अच्छा है, ब्याह जल्द कर लो, नहीं तो बाप बन जाने के पीछे ब्याह करना ठीक नहीं होगा।'

मंगल को क्रोध और लज्जा के साथ घृणा भी हुई। चाची ने अपना आँचल सँभालते हुए तीखे कटाक्षों से मंगल की ओर देखा। मंगल मर्माहत होकर रह गया। वह बोला, 'चाची!'

और भी हँसती हुई चाची ने कहा, 'सच कहती हूँ, दो महीने से अधिक नहीं टले हैं।'

मंगल सिर झुकाकर सोचने के बाद बोला, 'चाची, हम लोगों का सब रहस्य तुम जानती हो तो तुमसे बढ़कर हम लोगों का शुभचिन्तक और मित्र कौन हो सकता है, अब जैसा तुम कहो वैसा करें।'

चाची अपनी विजय पर प्रसन्न होकर बोली, 'ऐसा प्रायः होता है। तारा की माँ ही कौन कहीं की भण्डारजी की ब्याही धर्मपत्नी थी! मंगल, तुम इसकी चिंता मत करो, ब्याह शीघ्र कर लो, फिर कोई न बोलेगा। खोजने में ऐसों की संख्या भी संसार में कम न होगी।'

चाची अपनी वक्तृता झाड़ रही थी। उधर मंगल तारा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचारने लगा। अभी-अभी उस दुष्टा चाची ने एक मार्मिक चोट उसे पहुँचायी। अपनी भूल और अपने अपराध मंगल को नहीं दिखाई पड़े, परन्तु तारा की माँ भी दुराचारिणी!-यह बात उसे खटकने लगी। वह उठकर उपवन की ओर चला गया। चाची ने बहुत चाहा कि उसे अपनी बातों में लगा ले, पर वह दुःखी हो गया था। इतने में तारा लौट आयी। बड़ा आग्रह दिखाते हुए चाची ने कहा, 'तारा, ब्याह के लिए परसों का दिन अच्छा है और देखो, तुम नहीं जानती हो

कि तुमने अपने पेट में एक जीव को बुला लिया है, इसलिए ब्याह का हो जाना अत्यन्त आवश्यक है।'

तारा चाची की गम्भीर मूर्ति देखकर डर गयी। वह अपने मन में सोचने लगी-जैसा चाची कहती है वही ठीक है। तारा सशंक हो चली!

चाची के जाने पर मंगल लौट आया। तारा और मंगल दोनों का हृदय उछल रहा था। साहस करके तारा ने पूछा, 'कौन दिन ठीक हुआ?'

सिर झुकाते हुए मंगल ने कहा, 'परसों। फिर वह अपना कोट पहनने हुए उपवन के बाहर हो गया।?'

तारा सोचने लगी-क्या सचमुच मैं एक बच्चे की माँ हो चली हूँ। यदि ऐसा हुआ तो क्या होगा। मंगल का प्रेम ही रहेगा-वह सोचते-सोचते लेट गयी। सामान बिखरे रहे।

परसों के आते विलम्ब न हुआ।

घर में ब्याह का समारोह था। सुभद्रा और चाची काम में लगी हुई थीं। होम के लिए वेदी बन चुकी थी। तारा का प्रसाधन हो रहा था, परन्तु मंगलदेव स्नान करने हर की पैड़ी गया था। वह स्नान करके घाट पर आकर बैठ गया। घर लौटने की इच्छा न हुई। वह सोचने लगा-तारा दुराचारिणी की संतान है, वह वेश्या के यहाँ रही है, फिर मेरे साथ भाग आयी, मुझसे अनुचित सम्बन्ध हुआ और अब वह गर्भवती है। आज मैं ब्याह करके कई कुकर्मों की कलुषित सन्तान का पिता कहलाऊँगा! मैं क्या करने जा रहा हूँ!-घड़ी भर की चिंता में वह निमग्न था। अन्त में इसी समय उसके ध्यान में एक ऐसी बात आ गयी कि उसके सत्साहस ने उसका साथ छोड़ दिया। वह स्वयं समाज की लाँछना सह सकता था, परन्तु भावी संतान के प्रति समाज की कल्पित लांछना और अत्याचार ने उसे विचलित किया। वह जैसे एक भावी विप्लव के भय से त्रस्त हो गया। भगोड़े समान वह स्टेशन की ओर अग्रसर हुआ। उसने देखा, गाड़ी आना ही चाहती है। उसके कोट की जेब में कुछ रुपये थे। पूछा, 'इस गाड़ी से बनारस पहुँच सकता हूँ?'

उत्तर मिला, 'हाँ, लसकर में बदलकर, वहाँ दूसरी ट्रेन तैयार मिलेगी।'

टिकट लेकर वह दूर से हरियाली में निकलते हुए धुएँ को चुपचाप देख रहा था, जो उड़ने वाले अजगर के समान आकाश पर चढ़ रहा था। उसके मस्तक में कोई बात जमती न थी। वह अपराधी के समान हरिद्वार से भाग जाना चाहता था। गाड़ी आते ही उस पर चढ़ गया। गाड़ी छूट गयी।

इधर उपवन में मंगलदेव के आने की प्रतीक्षा हो रही थी। ब्रह्मचारी जी और देवस्वरूप तथा और दो सज्जन आये। कोई पूछता था–मंगलदेव जी कहाँ हैं कोई कहता–समय हो गया। कोई कहता–विलम्ब हो रहा है। परन्तु मंगलदेव कहाँ?'

तारा का कलेजा धक–धक करने लगा। वह न जाने किस अनागत भय से डरने लगी! रोने–रोने हो रही थी। परन्तु मंगल में रोना नहीं चाहिए, वह खुलकर न रो सकती थी।

जो बुलाने गया, वही लौट आया। खोज हुई, पता न चला। सन्ध्या हो आयी, पर मंगल न लौटा। तारा अधीर होकर रोने लगी। ब्रह्मचारी जी मंगल को भला–बुरा कहने लगे। अन्त में उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि यदि मुझे यह विदित होता कि मंगल इतना नीच है, तो मैं किसी दूसरे से यह सम्बन्ध करने का उद्योग करता। सुभद्रा तारा को एक ओर ले जाकर सान्त्वना दे रही थी। अवसर पाकर चाची ने धीरे से कहा, 'वह भाग न जाता तो क्या करता, तीन महीने का गर्भ वह अपने सिर पर ओढ़कर ब्याह करता?'

'ऐ परमात्मन, यह भी है।' कहते हुए ब्रह्मचारीजी लम्बी डग बढ़ाते उपवन के बाहर चले गये। धीरे–धीरे सब चले गये। चाची ने यथा परवश होकर सामान बटोरना आरम्भ किया और उससे छुट्टी पाकर तारा के पास जाकर बैठ गयी।

तारा सपना देख रही थी–झूले के पुल पर वह चल रही है। भीषण पर्वत–श्रेणी! ऊपर और नीचे भयानक खड्ड! वह पैर सम्हालकर चल रही है। मंगलदेव पुल के उस पार खड़ा बुला रहा है। नीचे वेग से नदी बह रही है। बरफ के बादल घिर रहे हैं। अचानक बिजली कड़की, पुल टूटा, तारा भयानक वेग ने नीचे गिर पड़ी। वह चिल्लाकर जाग गयी। देखा, तो चाची उसका सिर सहला रही है। वह चाची की गोद में सिर रखकर सिसकने लगी।

(4) पहाड़ जैसे दिन बीतती ही न थे। दु:ख की रातें जाड़े की रात से भी लम्बी बन जाती हैं। दुखिया तारा की अवस्था शोचनीय थी। मानसिक और आर्थिक चिंताओं से वह जर्जर हो गयी। गर्भ के बढ़ने से शरीर से भी कृश हो गयी। मुख पीला हो चला। अब उसने उपवन में रहना छोड़ दिया। चाची के घर में जाकर रहने लगी। वहीं सहारा मिला। खर्च न चल सकने के कारण वह दो–चार दिन के बाद एक वस्तु बेचती। फिर रोकर दिन काटती। चाची ने भी उसे अपने ढंग से छोड़ दिया। वहीं तारा टूटी चारपाई पर पड़ी कराहा करती।

अँधेरा हो चला था। चाची अभी-अभी घूमकर बाहर से आयी थी। तारा के पास आकर बैठ गयी। पूछा, 'तारा, कैसी हो?'

'क्या बताऊँ चाची, कैसी हूँ! भगवान जानते हैं, कैसी बीत रही है!'

'यह सब तुम्हारी चाल से हुआ।'

'सो तो ठीक कह रही हो।'

'नहीं, बुरा न मानना। देखो यदि मुझे पहले ही तुम अपना हाल कह देतीं, तो मैं ऐसा उपाय कर देती कि यह सब विपत्ति ही न आने पाती।'

'कौन उपाय चाची?'

'वही जब दो महीने का था, उसका प्रबन्ध हो जाता। किसी को कानो-कान खबर भी न होती। फिर तुम और मंगल एक बने रहते।'

'पर क्या इसी के लिए मंगल भाग गया? कदापि नहीं, उसके मन से मेरा प्रेम ही चला गया। चाची, जो बिना किसी लोभ के मेरी इतनी सहायता करता था, वह मुझे इस निस्सहाय अवस्था में इसलिए छोड़कर कभी नहीं जाता। इसमें काई दूसरा ही कारण है।'

'होगा, पर तुम्हें यह दुःख देखना न पड़ता और उसके चले जाने पर भी एक बार मैंने तुमसे संकेत किया, पर तुम्हारी इच्छा न देखकर मैं कुछ न बोली। नहीं तो अब तक मोहनदास तुम्हारे पैरों पर नाक रगड़ता। वह कई बार मुझसे कह भी चुका है।'

'बस करो चाची, मुझसे ऐसी बातें न करो। यदि ऐसा ही करना होगा, तो मैं किसी कोठे पर जा बैठूँगी, पर यह टट्टी की ओट में शिकार करना नहीं जानती। तारा ने ये बातें कुछ क्रोध में कहीं। चाची का पारा चढ़ गया। उसने बिगड़कर कहा, 'देखो निगोड़ी, मुझी को बातें सुनाती है। करम आप करे और आँखें दिखावे दूसरे को!'

तारा रोने लगी। वह खुर्राट चाची से लड़ना न चाहती थी, परन्तु अभिप्राय न सधने पर चाची स्वयं लड़ गयी। वह सोचती थी कि अब उसका सामान धीरे-धीरे ले ही लिया, दाल-रोटी दिन में एक बार खिला दिया करती थी। जब इसके पास कुछ बचा ही नहीं और आगे की कोई आशा भी न रही, तब इसका झंझट क्यों अपने सिर रखूँ। वह क्रोध से बोली, 'रो मत राँड़ कहीं की। जा हट, अपना दूसरा उपाय देख। मैं सहायता भी करूँ और बातें भी सुनूँ, यह नहीं हो सकता। कल मेरी कोठरी खाली कर देना। नहीं तो झाड़ू मारकर निकाल दूँगी।'

तारा चुपचाप रो रही थी, वह कुछ न बोली। रात हो चली। लोग अपने-अपने घरों में दिन भर के परिश्रम का आस्वाद लेने के लिए किवाड़ें बन्द करने लगे, पर तारा की आँखें खुली थीं। उनमें अब आँसू भी न थे। उसकी छाती में मधु-विहीन मधुचक्र-सा एक नीरस कलेजा था, जिसमें वेदना की ममाछियों की भन्नाहट थी। संसार उसकी आँखों में घूम जाता था, वह देखते हुए भी कुछ न देखती, चाची अपनी कोठरी में जाकर खा-पीकर सो रही। बाहर कुत्ते भौंक रहे थे। आधी रात बीत रही थी। रह-रहकर निस्तब्धता का झोंका आ जाता था। सहसा तारा उठ खड़ी हुई। उन्मादिनी के समान वह चल पड़ी। फटी धोती उसके अंग पर लटक रही थी। बाल बिखरे थे, बदन विकृत। भय का नाम नहीं। जैसे कोई यंत्रचालित शव चल रहा हो। वह सीधे जाह्नवी के तट पर पहुँची। तारों की परछाईं गंगा के वक्ष में खुल रही थी। स्रोत में हर-हर की ध्वनि हो रही थी। तारा एक शिलाखण्ड पर बैठ गयी। वह कहने लगी-मेरा अब कौन रहा, जिसके लिए जीवित रहूँ। मंगल ने मुझे निरपराध ही छोड़ दिया, पास में पाई नही, लांछनपूर्ण जीवन, कहीं धंधा करके पेट पालने के लायक भी नहीं रही। फिर इस जीवन को रखकर क्या करूँ! हाँ, गर्भ में कुछ है, वह क्या है, कौन जाने! यदि आज न सही, तो भी एक दिन अनाहार से प्राण छटपटाकर जायेगा ही-तब विलम्ब क्यों?'

मंगल! भगवान् ही जानते होंगे कि तुम्हारी शय्या पवित्र है। कभी स्वप्न में भी तुम्हें छोड़कर इस जीवन में किसी से प्रेम नहीं किया और न तो मैं कलुषित हुई। यह तुम्हारी प्रेम-भिखारिनी पैसे की भीख नहीं माँग सकती और न पैसे के लिए अपनी पवित्रता बेच सकती है तब दूसरा उपाय ही क्या मरण को छोड़कर दूसरा कौन शरण देगा भगवान्! तुम यदि कहीं हो, तो मेरे साक्षी रहना!

वह गंगा में जा ही चुकी थी कि सहसा एक बलिष्ठ हाथ ने उसे पकड़कर रोक लिया। उसने छटपटाकर पूछा, 'तुक कौन हो, जो मेरे मरने का भी सुख छीनना चाहते हो?'

'अधर्म होगा, आत्महत्या पाप है?' एक लम्बा संन्यासी कह रहा था।

'पाप कहाँ! पुण्य किसका नाम है मैं नहीं जानती। सुख खोजती रही, दुःख मिलाय दुःख ही यदि पाप है, तो मैं उससे छूटकर सुख की मौत मर रही हूँ-पुण्य कर रही हूँ, करने दो!'

'तुमको अकेले मरने का अधिकार चाहे हो भी, पर एक जीव-हत्या तुम और करने जा रही हो, वह नहीं होगा। चलो तुम अभी, यही पर्णशाला है, उसमें रात भर विश्राम करो। प्रातःकाल मेरा शिष्य आवेगा और तुम्हें अस्पताल ले जायेगा। वहाँ तुम अन्न चिंता से भी निश्चिन्त रहोगी। बालक उत्पन्न होने पर तुम स्वतंन्त्र हो, जहाँ चाहे चली जाना।' संन्यासी जैसे आत्मानुभूति से दृढ़ आज्ञा भरे शब्दों में कह रहा था। तारा को बात दोहराने का साहस न हुआ। उसके मन में बालक का मुख देखने की अभिलाषा जाग गयी। उसने भी संकल्प कर लिया कि बालक का अस्पताल में पालन हो जायेगा, फिर मैं चली जाऊँगी।

वह संन्यासी के संकेत किये हुए कुटीर की ओर चली। अस्पताल की चारपाई पर पड़ी हुई तारा अपनी दशा पर विचार कर रही थी। उसका पीला मुख, धँसी हुई आँखें, करुणा की चित्रपटी बन रही थीं। मंगल का इस प्रकार छोड़कर चले जाना सब कष्टों से अधिक कसकता था। दाई जब साबूदाना लेकर उसके पास आती, तब वह बड़े कष्ट से उठकर थोड़ा-सा पी लेती। दूध कभी-कभी मिलता था, क्योंकि अस्पताल जिन दीनों के लिए बनते हैं, वहाँ उनकी पूछ नहीं, उसका लाभ भी सम्पन्न ही उठाते हैं, जिस रोगी के अभिभावकों से कुछ मिलता, उसकी सेवा अच्छी तरह होती, दूसरे के कष्टों की गिनती नहीं। दाई दाल का पानी और हलकी रोटी लेकर आयी। तारा का मुँह खिड़की की ओर था।

दाई ने कहा, 'लो कुछ खा लो।'

'अभी मेरी इच्छा नहीं।' मुँह फेरे ही तारा ने कहा।

'तो क्या कोई तुम्हारी लौंड़ी लगी है, जो ठहरकर ले आवेगी। लेना हो तो अभी ले ले।'

'मुझे भूख नहीं दाई!' तारा ने करुण स्वर में कहा।

'क्यों आज क्या है?'

'पेट में बड़ा दर्द हो रहा है।' कहते-कहते तारा कराहने लगी। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। दाई ने पास आकर देखा, फिर चली गयी। थोड़ी देर में डॉक्टर के साथ दाई आयी। डॉक्टर ने परीक्षा की। फिर दाई से कुछ संकेत किया। डॉक्टर चला गया। दाई ने कुछ समान लाकर वहाँ रखा और भी एक दूसरी दाई आ गयी। तारा की व्यथा बढ़ने लगी-वही कष्ट जिसे स्त्रियाँ ही झेल सकती हैं, तारा के लिए असह्य हो उठा, वह प्रसव पीड़ा से मूर्च्छित हो गयी। कुछ क्षणों में चेतना हुई, फिर पीड़ा होने लगी। दाई ने अवस्था भयानक होने की

सूचना डॉक्टर को दी। वह प्रसव कराने के लिए प्रस्तुत होकर आया। सहसा बड़े कष्ट से तारा ने पुत्र-प्रसव किया। डॉक्टर ने भीतर आने की आवश्यकता न समझी, वह लौट गया। सूतिका-कर्म में शिक्षित दाइयों ने शिशु सँभाला।

तारा जब सचेत हुई, नवजात शिशु को देखकर एक बार उसके मुख पर मुस्कराहट आ गयी।

तारा रुग्ण थी, उसका दूध नहीं पिलाया जाता। वह दिन में दो बार बच्चे को गोद में ले पाती, पर गोद में लेते ही उसे जैसे शिशु से घृणा हो जाती। मातृस्नेह उमड़ता, परन्तु उसके कारण तारा की जो दुर्दशा हुई थी, वह सामने आकर खड़ी हो जाती। तारा काँप उठती। महीनों बीत गये। तारा कुछ चलने-फिरने योग्य हुई। उसने सोचा-महात्मा ने कहा था कि बालक उत्पन्न होने पर तुम स्वतंत्र हो, जो चाहे कर सकती हो। अब मैं अब अपना जीवन क्यों रखूँ। अब गंगा माई की गोद में चलूँ। इस दुःखःमय जीवन से छुटकारा पाने का दूसरा उपाय नहीं।

तीन पहर रात बीत चुकी थी। शिशु सो रहा था, तारा जाग रही थी। उसने एक बार उसके मुख का चुम्बन किया, वह चौंक उठा, जैसे हँस रहा हो। फिर उसे थपकियाँ देने लगी। शिशु निधड़क हो गया। तारा उठी, अस्पताल से बाहर चली आयी। पगली की तरह गंगा की ओर चली। निस्तब्ध रजनी थी। पवन शांत था। गंगा जैसे सो रही थी। तारा ने उसके अंक में गिरकर उसे चौंका दिया। स्नेहमयी जननी के समान गंगा ने तारा को अपने वक्ष में ले लिया।

हरिद्वार की बस्ती से कई कोस दूर गंगा-तट पर बैठे हुए एक महात्मा अरुण को अर्य दे रहे थे। सामने तारा का शरीर दिखलाई पड़ा, अंजलि देकर तुरन्त महात्मा ने जल में उतरकर उसे पकड़ा। तारा जीवित थी। कुछ परिश्रम के बाद जल पेट से निकला। धीरे-धीरे उसे चेतना हुई। उसने आँख खोलकर देखा कि एक झोंपड़ी में पड़ी है। तारा की आँखों से भी पानी निकलने लगा-वह मरने जाकर भी न मर सकी। मनुष्य की कठोर करुणा को उसने धिक्कार दिया।

परन्तु महात्मा की शुश्रूषा से वह कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गयी। अभागिनी ने निश्चय किया कि गंगा का किनारा न छोड़ूँगी-जहाँ यह भी जाकर विलीन हो जाती है, उस समुद्र में जिसका कूल-किनारा नहीं, वहाँ चलकर डूबूँगी, देखूँ कौन बचाता है। वह गंगा के किनारे चली। जंगली फल, गाँवों की भिक्षा, नदी का जल और कन्दराएँ उसकी यात्रा में सहायक थे। वह दिन-दिन आगे बढती जाती थी।

(5) जब हरिद्वार से श्रीचन्द्र किशोरी को लिवा ले गये और छः महीने बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ, तब से किशोरी के प्रति उनकी घृणा बढ़ गयी। वे अपने भाव, समाज में तो प्रकट न कर सके, पर मन में दरार पड़ गयी। बहुत सोचने पर श्रीचन्द्र ने यही स्थिर किया कि किशोरी काशी जाकर अपनी जारज-संतान के साथ रहे और उसके खर्च के लिए वह कुछ भेजा करें।

पुत्र पाकर किशोरी पति से वंचित हुई और वह काशी के एक सुविस्तृत गृह में रहने लगी। अमृतसर में यह प्रसिद्ध किया गया कि यहाँ माँ-बेटों का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

श्रीचन्द्र अपने कार-बार में लग गये, वैभव का परदा बहुत मोटा होता है।

किशोरी के भी दिन अच्छी तरह बीतने लगे। देवनिरंजन भी कभी-कभी काशी आ जाते और उन दिनों किशोरी की नयी सहेलियाँ भी इकट्ठी हो जातीं।

बाबा जी की काशी में बड़ी धूम थी। प्रायः किशोरी के घर पर भण्डारा होता। बड़ी सुख्याति फैल चली। किशोरी की प्रतिष्ठा बढ़ी। वह काशी की एक भद्र महिला गिनी जाने लगी। ठाकुर जी की सेवा बड़े ठाट से होती। धन की कमी न थी, निरंजन और श्रीचन्द्र दोनों ही रुपये भेजते रहते।

किशोरी के ठाकुर जिस कमरे में रहते थे, उसके आगे दालान था। संगमरमर की चौकी पर स्वामी देवनिरंजन बैठते। चिकें लगा दी जातीं। भक्त महिलाओं का भी समारोह होता। कीर्तन, उपासना और गीत की धूम मच जाती। उस समय निरंजन सचमुच भक्त बन जाता, उसका अद्वैत ज्ञान उसे निस्सार प्रतीत होता, क्योंकि भक्ति में भगवान का अवलम्बन रहता है। सांसारिक सब आपदा-विपदाओं के लिए कच्चे ज्ञानी को अपने ही ऊपर निर्भर करने में बड़ा कष्ट होता है। इसलिए गृहस्थों के सुख में फँसे हुए निरंजन को बाध्य होकर भक्त बनना पड़ा। आभूषणों से लदी हुई वैभव-मूर्ति के सामने उसका कामनापूर्ण हृदय झुक जाता। उसकी अपराध में लदी हुई आत्मा अपनी मुक्ति के लिए दूसरा उपाय न देखती। बड़े गर्व से निरंजन लोगों को गृहस्थ बने रहने का उपदेश देता, उसकी वाणी और भी प्रखर हो जाती। जब वह गार्हस्थ्य जीवन का समर्थन करने लगता, वह कहता कि 'भगवान सर्वभूत हिते रत हैं, संसार-यात्रा गार्हस्थ्य जीवन में ही भगवान् की सर्वभूतहित कामना के अनुसार हो सकती है। दुखियों की सहायता करना, सुखी लोगों को देखकर प्रसन्न होना, सबकी मंगलकामना करना, यह साकार उपासना के प्रवृत्ति-मार्ग के ही साध्य हैं।' इन काल्पनिक दार्शनिकताओं से उसे अपने लिए बड़ी आशा

थी। वह धीरे-धीरे हृदय से विश्वास करने लगा कि साधु-जीवन असंगत है, ढोंग है। गृहस्थ होकर लोगों का अभाव-मोचन करना भी भगवान की कृपा के लिये यथेष्ट है। प्रकट में तो नहीं, पर विजयचन्द्र पर पुत्र का-सा, किशोरी पर स्त्री का-सा विचार रखने का उसे अभ्यास हो चला।

किशोरी अपने पति को भूल-सी गयी। जब रुपयों का बीमा आता, तब ऐसा भासता, मानो उसका कोई मुनीम अमृतसर का कार-बार देखता हो और उसे कोठी से लाभ का अंश भेजा करता हो। घर के काम-काज में वह बड़ी चतुर थी। अमृतसर के आये हुए सब रुपये उसके बचते थे। उसमें बराबर स्थावर सम्पत्ति खरीदी जाने लगी। किशोरी को किसी बात की कमी न रह गयी।

विजयचन्द्र स्कूल में बड़े ठाट से पढ़ने जाता था। स्कूल के मित्रों की कमी न थी। वह आये दिन अपने मित्रों को निमंत्रण देकर बुलवाता था। स्कूल में उसकी बड़ी धाक थी।

विद्यालय के समाने शस्य-श्यामल समतल भूमि पर छात्रों का झुंड इधर-उधर घूम रहा था। दस बजने में कुछ विलम्ब था। शीतकाल की धूप छोड़कर क्लास के कमरों में घुसने के लिए अभी विद्यार्थी प्रस्तुत न थे।

'विजय ही तो है।' एक ने कहा।

थोड़ा उसके वश में नहीं है, अब गिरा ही चाहता है।' दूसरे ने कहा।

पवन से विजय के बाल बिखर रहे थे, उसका मुख भय से विवर्ण था। उसे अपने गिर जाने की निश्चित आशंका थी। सहसा एक युवक दौड़ता हुआ आगे बढ़ा, बड़ी तत्परता से घोड़े की लगाम पकड़कर उसके नथुने पर सबल घूँसा मारा। दूसरे क्षण वह उच्छृंखल अश्व सीधा होकर खड़ा हो गया। विजय का हाथ पकड़कर उसने धीरे से उतार लिया। अब तो और भी कई लड़के एकत्र हो गये। युवक का हाथ पकड़े हुए विजय उसके होस्टल की ओर चला। वह एक सिनेमा का-सा दृश्य था। युवक की प्रशंसा में तालियाँ बजने लगीं।

विजय उस युवक के कमरे में बैठा हुआ बिखरे हुए सामानों को देख रहा था। सहसा उसने पूछा, 'आप यहाँ कितने दिनों से हैं?'

'थोड़े ही दिन हुए हैं?'

'यह किस लिपि का लेख है?'

'मैंने पाली का अध्ययन किया है।'

इतने में नौकर ने चाय की प्याली समाने रख दी। इस क्षणिक घटना ने दोनों को विद्यालय की मित्रता के पार्श्व में बाँध दिया, परन्तु विजय बड़ी

उत्सुकता से युवक के मुख की ओर देख रहा था, उसकी रहस्यपूर्ण उदासीन मुखकान्ति विजय के अध्ययन की वस्तु बन रही थी।

'चोट तो नहीं लगी?' अब जाकर युवक ने पूछा।

कृतज्ञ होते हुए विजय ने कहा, 'आपने ठीक समय पर सहायता की, नहीं तो आज अंग-भंग होना निश्चित था।'

'वाह, इस साधारण आतंक में ही तुम अपने को नहीं सँभाल सकते थे, अच्छे सवार हो!' युवक हँसने लगा।

'किस शुभनाम से आपका स्मरण करूँगा?'

'तुम विचित्र जीव हो, स्मरण करने की आवश्यकता क्या, मैं तो प्रतिदिन तुमसे मिल सकता हूँ।' कहकर युवक जोर से हँसने लगा।

विजय उसके स्वच्छन्द व्यवहार और स्वतन्त्र आचरण को चकित होकर देख रहा था। उसके मन में इस युवक के प्रति अकारण श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसकी मित्रता के लिए वह चंचल हो उठा। उसने पूछा, 'आपके यहाँ आने में कोई बाधा तो नहीं।'

युवक ने कहा, 'मंगलदेव की कोठरी में आने के लिए किसी को भी रोक-टोक नहीं, फिर तुम तो आज से मेरे अभिन्न हो गये हो!'

समय हो गया था। होस्टल से निकलकर दोनों विद्यालय की ओर चले। भिन्न-भिन्न कक्षाओं से पढ़ते हुए दोनों का एक बार मिल जाना अनिवार्य होता। विद्यालय के मैदान में हरी-हरी धूप पर आमने-सामने लेटे हुए दोनों बड़ी देर तक प्रायः बातें किया करते। मंगलदेव कुछ कहता था और विजय बड़ी उत्सुकता से सुनते हुए अपना आदर्श संकलन करता।

कभी-कभी होस्टल से मंगलदेव विजय के घर पर आ जाता, वहाँ से घर का-सा सुख मिलता। स्नेह-सरल स्नेह ने उन दोनों के जीवन में गाँठ दे दी।

किशोरी के यहाँ शरदपूर्णिमा का शृंगार था। ठाकुर जी चन्द्रिका में रत्न-आभूषणों से सुशोभित होकर शृंगार-विग्रह बने थे। चमेली के फूलों की बहार थी। चाँदनी में चमेली का सौरभ मिल रहा था। निरंजन रास की राका-रजनी का विवरण सुना रहा था। गोपियों ने किस तरह उमंग से उन्मत्त होकर कालिन्दी-कूल में कृष्णाचन्द्र के साथ रास-क्रीड़ा में आनन्द विह्वल होकर शुल्क दासियों के समान आत्मसमर्पण किया था, उसका मादक विवरण स्त्रियों के मन को बेसुध बना रहा था। मंगलगान होने लगा। निरंजन रमणियों के

कोकिल कंठ में अभिभूत होकर तकिये के सहारे टिक गया। रातभर गीत-वाद्य का समारोह चला।

विजय ने एक बार आकर देखा, दर्शन किया, प्रसाद लेकर जाना चाहता था कि समाने बैठी हुई सुन्दरियों के झुण्ड पर सहसा दृष्टि पड़ गयी। वह रुक गया। उसकी इच्छा हुई कि बैठ जाये, परन्तु माता के सामने बैठने का साहस न हुआ। जाकर अपने कमरे में लेटा रहा। अकस्मात् उसके मन में मंगलदेव का स्मरण हो गया। वह रहस्यपूर्ण युवक के चारों ओर उसके विचार लिपट गये, परन्तु वह मंगल के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं कर सका, केवल एक बात उसके मन में जग रही थी-मंगल की मित्रता उसे वांछित है। वह सो गया। स्कूल में पढ़ने वाला विजय इस अपने उत्सवों की प्रामाणिकता की जाँच स्वप्न में करने लगा। मंगल से इसके सम्बन्ध में विवाद चलता रहा। वह कहता कि-मन एकाग्र करने के लिए हिन्दुओं के यहाँ यह एक अच्छी चाल है। विजय तीव्र से विरोध करता हुआ कह उठा-इसमें अनेक दोष हैं, केवल एक अच्छे फल के लिए बहुत से दोष करते रहना अन्याय है। मंगल ने कहा-अच्छा फिर किसी दिन समझाऊँगा।

विजय की आँख खुली, सवेरा हो गया था। उसके घर में हलचल मची हुई थी। उसने दासी से पूछा, 'क्या बात है?'

दासी ने कहा, 'आज का भण्डारा है।'

विजय विरक्त होकर अपनी नित्यक्रिया में लगा। साबुन पर क्रोध निकालने लगा, तौलिये की दुर्दशा हो गयी। कल का पानी बेकार गिर रहा था, परन्तु वह आज नहाने की कोठरी से बाहर निकलना ही नहीं चाहता था। तो भी समय पर स्कूल चला गया। किशोरी ने कहा भी, 'आज न जा, साधुओं का भोजन है, उनकी सेवा...।'

बीच ही में बात काटकर विजय ने कहा, 'आज फुटबॉल है, मुझे शीघ्र जाना है।'

विजय बड़ी उत्तेजित अवस्था में स्कूल चला गया।

मंगल के कमरे का जंगला खुला था। चमकीली धूप उसमें प्रकाश फैलाये थी। वह अभी तक चद्दर लपेटे पड़ा था। नौकर ने कहा, 'बाबूजी, आज भी भोजन न कीजियेगा।'

बिना मुँह खोले मंगल ने कहा, 'नहीं।'

भीतर प्रवेश करते हुए विजय ने पूछा, 'क्यों क्या। आज जी नहीं आज तीसरा दिन है।'

नौकर ने कहा, 'देखिये बाबूजी, तीन दिन हो गये, कोई दवा भी नहीं करते, न कुछ खाते ही हैं।'

विजय ने चद्दर के भीतर हाथ डालकर बदन टटोलते हुए कहा, 'ज्वर तो नहीं है।'

नौकर चला गया। मंगल ने मुँह खोला, उसका विवर्ण मुख अभाव और दुर्बलता का क्रीड़ा-स्थल बना था। विजय उसे देखकर स्तब्ध रह गया। सहसा उसने मंगल का हाथ पकड़कर घबराते हुए स्वर में पूछा, 'क्या सचमुच कोई बीमारी है?'

मंगलदेव ने बड़े कष्ट के साथ आँखों में आँसू रोककर कहा, 'बिना बीमारी के भी कोई यों ही पड़ा रहता है।'

विजय को विश्वास न हुआ। उसने कहा, 'मेरे सिर की सौगन्ध, कोई बीमारी नहीं है, तुम उठो, आज मैं तुम्हें निमंत्रण देने आया हूँ, मेरे यहाँ चलना होगा।'

मंगल ने उसके गाल पर चपत लगाते हुए कहा, 'आज तो मैं तुम्हारे यहाँ ही पथ्य लेने वाला था। यहाँ के लोग पथ्य बनाना नहीं जानते। तीन दिन के बाद इनके हाथ का भोजन बिल्कुल असंगत है।'

मंगल उठ बैठा। विजय ने नौकर को पुकारा और कहा, 'बाबू के लिए जल्दी चाय ले आओ।' नौकर चाय लेने गया।

विजय ने जल लाकर मुँह धुलाया। चाय पीकर, मंगल चारपाई छोड़कर खड़ा हो गया। तीन दिन के उपवास के बाद उसे चक्कर आ गया और वह बैठ गया। विजय उसका बिस्तर लपेटने लगा। मंगल ने कहा, 'क्या करते हो विजय ने बिस्तर बाँधते हुए कहा, 'अभी कई दिन तुम्हें लौटना न होगा, इसलिए सामान बाँधकर ठिकाने से रख दूँ।'

मंगल चुप बैठा रहा। विजय ने एक कुचला हुआ सोने का टुकड़ा उठा लिया और उसे मंगलदेव को दिखाकर कहा, 'यह क्या फिर साथ ही लिपटा हुआ एक भोजपत्र भी उसके हाथ लगा। दोनों को देखकर मंगल ने कहा, 'यह मेरा रक्षा कवच है, बाल्यकाल से उसे मैं पहनता था। आज इसे तोड़ देने की इच्छा हुई।'

विजय ने उसे जेब में रखते हुए कहा, 'अच्छा, मैं ताँगा ले आने जाता हूँ।'

थोड़ी ही देर में ताँगा लेकर विजय आ गया। मंगल उसके साथ ताँगे पर जा बैठा, दोनों मित्र हँसना चाहते थे। पर हँसने में उन्हें दु:ख होता था।

विजय अपने बाहरी कमरे में मंगलदेव को बिठाकर घर में गया। सब लोग व्यस्त थे, बाजे बज रहे थे। साधु-ब्राह्मण खा-पीकर चले गये थे। विजय अपने हाथ से भोजन का सामान ले गया। दोनों मित्र बैठकर खाने-पीने लगे।

दासियाँ जूठी पत्तल बाहर फेंक रही थीं। ऊपर की छत से पूरी और मिठाइयों के टुकड़ों से लदी हुई पत्तलें उछाल दी थीं। नीचे कुछ अछूत डोम और डोमनियाँ खड़ी थीं, जिनके सिर पर टोकरियाँ थीं, हाथ में डंडे थे-जिनसे वे कुत्तों को हटाते थे और आपस में मार-पीट, गाली-गलौज करते हुए उस उच्छिष्ट की लूट मचा रहे थे-वे पुश्त-दर-पुश्त के भूखे!

मालकिन झरोखे से अपने पुण्य का यह उत्सव देख रही थी-एक राह की थकी हुई दुर्बल युवती भी। उसी भूख की, जिससे वह स्वयं अशक्त हो रही थी, यह वीभत्स लीला थी! वह सोच रही थी-क्या संसार भर में पेट की ज्वाला मनुष्य और पशुओं को एक ही समान सताती है ये भी मनुष्य हैं और इसी धार्मिक भारत के मनुष्य जो कुत्तों के मुँह के टुकड़े भी छीनकर खाना चाहते हैं। भीतर जो पुण्य के नाम पर, धर्म के नाम पर गुरछर्रे उड़ रहे हैं, उसमें वास्तविक भूखों का कितना भाग है, यह पत्तलों के लूटने का दृश्य बतला रहा है। भगवान्! तुम अन्तर्यामी हो।

युवती निर्बलता से न चल सकती थी। वह साहस करके उन पत्तल लूटने वालों के बीच में से निकल जाना चाहती थी। वह दृश्य असह्य था, परन्तु एक डोमिन ने समझा कि यह उसी का भाग छीनने आयी है। उसने गन्दी गालियाँ देते हुए उस पर आक्रमण करना चाहा, युवती पीछे हटी, परन्तु ठोकर लगते ही गिर पड़ी।

उधर विजय और मंगल में बातें हो रही थीं। विजय ने मंगल से कहा, 'यही तो इस पुण्य धर्म का दृश्य है! क्यों मंगल! क्या और भी किसी देश में इसी प्रकार का धर्म-संचय होता है जिन्हें आवश्यकता नहीं, उनको बिठाकर आदर से भोजन कराया जाये, केवल इस आशा से कि परलोक में वे पुण्य-संचय का प्रमाण-पत्र देंगे, साक्षी देंगे और इन्हें, जिन्हें पेट ने सता रखा है, जिनको भूख ने अधमरा बना दिया है, जिनकी आवश्यकता नंगी होकर वीभत्स नृत्य कर रही है-वे मनुष्य कुत्तों के साथ जूठी पत्तलों के लिए लड़ें, यही तो तुम्हारे धर्म का उदाहरण है!'

किशोरी को उस पर ध्यान देते देखकर विजय अपने कमरे में चला गया। किशोरी ने पूछा, 'कुछ खाओगी।'

युवती ने कहा, 'हाँ, मैं भूखी अनाथ हूँ।'

किशोरी को उसकी छलछलाई आँखें देखकर दया आ गयी। कहा, 'दु:खी न हो, तुम यहीं रहा करो।'

'फिर मुँह छिपाकर पड़ गए! उठो, मैं अपने बनाये हुए कुछ चित्र दिखाऊँ।'

'बोलो मत विजय! कई दिन के बाद भोजन करने पर आलस्य मालूम हो रहा है।'

'पड़े रहने से तो और भी सुस्ती बढ़ेगी।'

'मैं कुछ घण्टों तक सोना चाहता हूँ।'

विजय चुप रह गया। मंगलदेव के व्यवहार पर उसे कुतूहल हो रहा था। वह चाहता था कि बातों में उसके मन की अवस्था जान ले, परन्तु उसे अवसर न मिला। वह भी चुपचाप सो रहा।

नींद खुली, तब लम्प जला दिये गये थे। दूज का चन्द्रमा पीला होकर अभी निस्तेज था, हल्की चाँदनी धीरे-धीरे फैलने लगी। पवन में कुछ शीतलता थी। विजय ने आँखें खोलकर देखा, मंगल अभी पड़ा था। उसने जगाया और हाथ-मुँह धोने के लिए कहा।

दोनों मित्र आकर पाई-बाग में पारिजात के नीचे पत्थर पर बैठ गये। विजय ने कहा, 'एक प्रश्न है।'

मंगल ने कहा, 'प्रत्येक प्रश्न के उत्तर भी हैं, कहो भी।'

'क्यों तुमने रक्षा-कवच तोड़ डाला क्या उस पर से विश्वास उठ गया

'नहीं विजय, मुझे उस सोने की आवश्यकता थी।' मंगल ने बड़ी गम्भीरता से कहा,'क्यों?'

'इसके लिए घण्टों का समय चाहिए, तब तुम समझ सकोगे। अपनी वह रामकहानी पीछे सुनाऊँगा, इस समय केवल इतना ही कहे देता हूँ कि मेरे पास एक भी पैसा न था और तीन दिन इसीलिए मैंने भोजन भी नहीं किया। तुमसे यह कहने में मुझे लज्जा नहीं।'

'यह तो बड़े आश्चर्य की बात है!'

'आश्चर्य इसमें कौन-सा अभी तुमने देखा है कि इस देश की दरिद्रता कैसी विकट है-कैसी नृशंस है! कितने ही अनाहार से मरते हैं! फिर मेरे लिए आश्चर्य क्यों इसलिए कि मैं तुम्हारा मित्र हूँ?'

'मंगलदेव! दुहाई है, घण्टों नहीं मैं रात-भर सुनूँगा। तुम अपना रहस्यपूर्ण वृत्तांत सुनाओ। चलो, कमरे में चलें। यहाँ ठंड लग रही है।'

'भीतर तो बैठे ही थे, फिर यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी अच्छा चलो, परन्तु एक प्रतिज्ञा करनी होगी।'

'वह क्या?'

'मेरा सोना बेचकर कुछ दिनों के लिए मुझे निश्चिन्त बना दो।'

'अच्छा भीतर तो चलो।'

कमरे में पहुँचकर दोनों मित्र पहुँचे ही थे कि दरवाजे के पास से किसी ने पूछा, 'विजय, एक दुखिया स्त्री आयी है, मुझे आवश्यकता भी है, तू कहे तो उसे रख लूँ।'

'अच्छी बात है माँ! वही ना जो बेहोश हो गयी थी!'

'हाँ वही, बिल्कुल अनाथ है।'

'उसे अवश्य रख लो।' एक शब्द हुआ, मालूम हुआ कि पूछने वाली चली गयी थी, तब विजय ने मंगलदेव से कहा, 'अब कहो!'

मंगलदेव ने कहना प्रारम्भ किया, 'मुझे एक अनाथालय से सहायता मिलती थी और मैं पढ़ता था। मेरे घर कोई है कि नहीं यह भी मुझे मालूम नही, पर जब मै सेवा समिति के काम से पढ़ाई छोड़कर हरिद्वार चला गया, तब मेरी वृत्ति बंद हो गयी। मैं घर लौट आया। आर्यसमाज से भी मेरा कुछ सम्पर्क था, परन्तु मैंने देखा कि वह खण्डनात्मक है, समाज में केवल इसी से काम नहीं चलता। मैंने भारतीय समाज का ऐतिहासिक अध्ययन करना चाहा और इसलिए पाली, प्राकृत का पाठ्यक्रम स्थिर किया। भारतीय धर्म और समाज का इतिहास तब तक अधूरा रहेगा, जब तक पाली और प्राकृत का उससे सम्बन्ध न हो, परन्तु मैं बहुत चेष्टा करके भी सहायता प्राप्त न कर सका, क्योंकि सुनता हूँ कि वह अनाथालय भी टूट गया।'

विजय-'तुमने रहस्य की बात तो कही ही नहीं।'

मंगल-'विजय! रहस्य यही कि मै निर्धन हूँय मैं अपनी सहायता नहीं कर सकता। मैं विश्वविद्यालय की डिग्री के लिए नहीं पढ़ रहा हूँ। केवल कुछ महीनों की आवश्यकता है कि मैं अपनी पाली की पढ़ाई प्रोफेसर देव से पूरी कर लूँ। इसलिए मैं यह सोना बेचना चाहता हूँ।'

विजय ने उस यंत्र को देखा, सोना तो उसने एक ओर रख दिया। परन्तु भोजपत्र के छोटे से बंडल को, जो उसके भीतर था, विजय ने मंगल का मुँह

देखते-देखते कुतूहल से खोलना आरम्भ किया। उसका कुछ अंश खुलने पर दिखाई दिया कि उसमें लाल रंग के अष्टगंध से कुछ स्पष्ट प्राचीन लिपि है। विजय ने उसे खोलकर फेंकते हुए कहा, 'लो यह किसी देवी, देवता का पूरा स्तोत्र भरा पड़ा है।'

मंगल ने उसे आश्चर्य से उठा लिया। वह लिपि को पढ़ने की चेष्टा करने लगा। कुछ अक्षरों को वह पढ़ भी सका, परन्तु वह प्राकृत न थी, संस्कृत थी। मंगल ने उसे समेटकर जेब में रख लिया। विजय ने पूछा, 'क्या है कुछ पढ़ सके?'

'कल इसे प्रोफेसर देव से पढ़वाऊँगा। यह तो कोई शासन-पत्र मालूम पड़ता है।'

'तो क्या इसे तुम नहीं पढ़ सकते?'

'मैंने तो अभी प्रारम्भ किया है, कुछ पढ़ देते हैं।'

'अच्छा मंगल! एक बात कहूँ, तुम मानोगे मेरी भी पढ़ाई सुधर जाएगी।'

'क्या?'

'तुम मेरे साथ रहा करो, अपना चित्रों का रोग मैं छुड़ाना चाहता हूँ।'

'तुम स्वतंत्र नहीं हो विजय! क्षणिक उमंग में आकर हमें वह काम नहीं करना चाहिए, जिससे जीवन के कुछ ही लगातार दिनों के पिरोये जाने की संभावना हो, क्योंकि उमंग की उड़ान नीचे आया करती है।'

'नहीं मंगल! मै माँ से पूछ लेता हूँ।' कहकर विजय तेजी से चला गया। मंगल हाँ-हाँ ही कहता रह गया। थोड़ी देर में ही हँसता हुआ लौट आया और बोला, 'माँ तो कहती हैं कि उसे यहाँ से न जाने दूँगी।'

वह चुपचाप विजय के बनाये कलापूर्ण चित्रों को, जो उसके कमरे में लगे थे, देखने लगा। इसमें विजय की प्राथमिक कृतियाँ थीं। अपूर्ण मुखाकृति, रंगों के छीटे से भरे हुए कागज तक चौखटों में लगे थे।

आज से किशोरी की गृहस्थी में दो व्यक्ति और बढ़े।

(6) आज बड़ा समारोह है। निरंजन चाँदी के पात्र निकालकर दे रहा है-आरती, फूल, चंगेर, धूपदान, नैवेद्यपात्र और पंचपात्र इत्यादि माँज-धोकर साफ किये जा रहे हैं। किशोरी मेवा, फल, धूप, बत्ती और फूलों की राशि एकत्र किये उसमें सजा रही है। घर के सब दास-दासियाँ व्यस्त हैं। नवागत युवती घूँघट निकाले एक ओर खड़ी है।

निरंजन ने किशोरी से कहा, 'सिंहासन के नीचे अभी धुला नहीं है, किसी से कह दो कि वह स्वच्छ कर दे।'

किशोरी ने युवती की ओर देखकर कहा, 'जा उसे धो डाल!'

युवती भीतर पहुँच गयी। निरंजन ने उसे देखा और किशोरी से पूछा, 'यह कौन है?'

किशोरी ने कहा, 'वही जो उस दिन रखी गयी है।'

निरंजन ने झिड़ककर कहा, 'ठहर जा, बाहर चल।' फिर कुछ क्रोध से किशोरी की ओर देखकर कहा, 'यह कौन है, कैसी है, देवगृह में जाने योग्य है कि नहीं, समझ लिया है या यों ही जिसको हुआ कह दिया।'

'क्यों, मैं उसे तो नहीं जानती।'

'यदि अछूत हो, अंत्यज हो, अपवित्र हो?'

'तो क्या भगवान् उसे पवित्र नहीं कर देंगे आप तो कहते हैं कि भगवान् पतित-पावन हैं, फिर बड़े-बड़े पापियों को जब उद्धार की आशा है, तब इसको क्यों वंचित किया जाये कहते-कहते किशोरी ने रहस्य भरी मुस्कान चलायी।

निरंजन क्षुब्ध हो गया, परन्तु उसने कहा, 'अच्छा शास्त्रार्थ रहने दो। इसे कहो कि बाहर चली जाये।' निरंजन की धर्म-हठ उत्तेजित हो उठी थी।

किशोरी ने कुछ कहा नहीं, पर युवती देवगृह के बाहर चली गई और एक कोने में बैठकर सिसकने लगी। सब अपने कार्य में व्यस्त थे। दुखिया के रोने की किसे चिन्ता थी! वह भी जी हल्का करने के लिए खुलकर रोने लगी। उसे जैसे ठेस लगी थी। उसका घूँघट हट गया था। आँखों से आँसू की धारा बह रही थी। विजय, जो दूर से यह घटना देख रहा था, इस युवती के पीछे-पीछे चला आया था-कुतूहल से इस धर्म के क्रूर दम्भ को एक बार खुलकर देखने और तीखे तिरस्कार से अपने हृदय को भर लेने के लिए, परन्तु देखा तो वह दृश्य, जो उसके जीवन में नवीन था-एक कष्ट से सताई हुई सुन्दरी का रुदन!

विजय के वे दिन थे, जिसे लोग जीवन बसंत कहते हैं। जब अधूरी और अशुद्ध पत्रिकाओं के टूटे-फूटे शब्दों के लिए हृदय में शब्दकोश प्रस्तुत रहता है। जो अपने साथ बाढ़ में बहुत-सी अच्छी वस्तु ले आता है और जो संसार को प्यारा देखने का चश्मा लगा देता है। शैशव से अभ्यस्त सौन्दर्य को खिलौना समझकर तोड़ना ही नहीं, वरन् उसमें हृदय देखने की चाट उत्पन्न करता है, जिसे यौवन कहते हैं-शीतकाल में छोटे दिनों में घनी अमराई पर बिछलती हुई हरियाली से तर धूर के समान स्निग्ध यौवन!

इसी समय मानव-जीवन में जिज्ञासा जगती है। स्नेह, संवेदना, सहानुभूति का ज्वार आता है। विजय का विप्लवी हृदय चंचल हो गया। उसमें जाकर पूछा, 'यमुना, तुम्हें किसी ने कुछ कहा है?'

यमुना निःसंकोच भाव से बोली, 'मेरा अपराध था।'

'क्या अपराध था यमुना?'

'मैं देव-मन्दिर में चली गयी थी।'

'तब क्या हुआ?'

'बाबाजी बिगड़ गये।'

'रो मत, मैं उनसे पूछूँगा।'

'मैं उनके बिगड़ने पर नहीं रोती हूँ, रोती हूँ तो अपने भाग्य पर और हिन्दू समाज की अकारण निष्ठुरता पर, जो भौतिक वस्तुओं में तो बंटा लगा ही चुका है, भगवान पर भी स्वतंत्र भाग का साहस रखता है!'

क्षणभर के लिए विजय विस्मय-विमुग्ध रहा, यह दासी-दीन-दुखिया, इसके हृदय में इतने भाव उसकी सहानुभूति उच्छृंखल हो उठी, क्योंकि यह बात उसके मन की थी। विजय ने कहा, 'न रो यमुना! जिसके भगवान् सोने-चाँदी से घिरे रहते हैं, उनको रखवाली की आवश्यकता होती है।'

यमुना की रोती आँखें हँस पड़ीं, उसने कृतज्ञता की दृष्टि से विजय को देखा। विजय भूलभुलैया में पड़ गया। उसने स्त्री की-एक युवती स्त्री की-सरल सहानुभूति कभी पाई न थी। उसे भ्रम हो गया जैसे बिजली कौंध गयी हो। वह निरंजन की ओर चला, क्योंकि उसकी सब गर्मी निकालने का यही अवसर था।

निरंजन अन्नकूट के सम्भार में लगा था। प्रधान याजक बनकर उत्सव का संचालन कर रहा था। विजय ने आते ही आक्रमण कर दिया, 'बाबाजी आज क्या है?'

निरंजन उत्तेजित तो था ही, उसने कहा, 'तुम हिन्दू हो कि मुसलमान। नहीं जानते, आज अन्नकूट है।'

'क्यों, क्या हिन्दू होना परम सौभाग्य की बात है? जब उस समाज का अधिकांश पददलित और दुर्दशाग्रस्त है, जब उसके अभिमान और गौरव की वस्तु धरापृष्ठ पर नहीं बची-उसकी संस्कृति विडम्बना, उसकी संस्था सारहीन और राष्ट्र-बौद्धों के सदृश बन गया है, जब संसार की अन्य जातियाँ सार्वजनिक भ्रातृभाव और साम्यवाद को लेकर खड़ी हैं, तब आपके इन खिलौनों से भला उसकी सन्तुष्टि होगी?'

'इन खिलौनों'-कहते-कहते इसका हाथ देवविग्रह की ओर उठ गया था। उसके आक्षेपों का जो उत्तर निरंजन देना चाहता था, वह क्रोध के वेग में भूल गया और सहसा उसने कह दिया, 'नास्तिक! हट जा!'

विजय की कनपटी लाल हो गयी, बरौनियाँ तन गयीं। वह कुछ बोलना ही चाहता था कि मंगल ने सहसा आकर हाथ पकड़ लिया और कहा, 'विजय!'

विद्रोही वहाँ से हटते-हटते भी मंगल से यह कहे बिना नहीं रहा, धर्म के सेनापति विभीषिका उत्पन्न करके साधारण जनता से अपनी वृत्ति कमाते हैं और उन्हीं को गालियाँ भी सुनाते हैं, गुरुडम कितने दिनों तक चलेगा, मंगल?'

मंगल विवाद को बचाने के लिए उसे घसीटता ले चला और कहने लगा, 'चलो, हम तुम्हारा शास्त्रार्थ-निमंत्रण स्वीकार करते हैं।' दोनों अपने कमरे की ओर चले गये।

निरंजन पल भर में आकाश से पृथ्वी पर आ गया। वास्तविक वातावरण में क्षोभ और क्रोध, लज्जा और मानसिक दुर्बलता ने उसे चैतन्य कर दिया। निरंजन को उद्विग्न होकर उठते देख किशोरी, जो अब तक स्तब्ध हो रही थी, बोल उठी, 'लड़का है!'

निरंजन ने वहाँ से जाते-जाते कहा, 'लड़का है तो तुम्हारा है, साधुओं को इसकी चिंता क्या?' उसे अब भी अपने त्याग पर विश्वास था।

किशोरी निरंजन को जानती थी, उसने उन्हें रोकने का प्रयत्न नहीं किया। वह रोने लगी।

मंगल ने विजय से कहा, 'तुमको गुरुजनों का अपमान नहीं करना चाहिए। मैंने बहुत स्वाधीन विचारों को काम में ले आने की चेष्टा की है, उदार समाजों में घूमा-फिरा हूँ, पर समाज के शासन-प्रश्न पर और असुविधाओं में सब एक ही से दिख पड़े। मैं समाज में बहुत दिनों तक रहा, उससे स्वतंत्र होकर भी रहा, पर सभी जगह संकीर्णता है, शासन के लिए, क्योंकि काम चलाना पड़ता है न! समाज में एक-से उन्नत और एक-सी मनोवृत्ति वाले मनुष्य नहीं, सबको संतुष्ट और धर्मशील बनाने के लिए धार्मिक समस्याएँ कुछ-न-कुछ उपाय निकाला करती हैं।'

'पर हिन्दुओं के पास निषेध के अतिरिक्त और भी कुछ है? यह मत करो, वह मत करो, पाप है, जिसका फल यह हुआ कि हिन्दुओं को पाप को छोड़कर पुण्य कहीं दिखलायी ही नहीं पड़ता।' विजय ने कहा।

'विजय! प्रत्येक संस्थाओं का कुछ उद्देश्य है, उसे सफल करने के लिए कुछ नियम बनाये जाते हैं। नियम प्रातः निषेधात्मक होते हैं, क्योंकि मानव अपने को सब कुछ करने का अधिकारी समझता है। कुल थोड़े-से सुकर्म है और पाप अधिक हैं, जो निषेध के बिना नहीं रुक सकते। देखो, हम किसी भी धार्मिक संस्था से अपना सम्बन्ध जोड़ लें, तो हमें उसकी कुछ परम्पराओं का अनुकरण करना ही पड़ेगा। मूर्तिपूजा के विरोधियों ने भी अपने-अपने अहिन्दू सम्प्रदायों में धर्म-भावना के केन्द्र स्वरूप कोई-न-कोई धर्म-चिह्न रख छोड़ा है, जिन्हें वे चूमते हैं, सम्मान करते हैं और उसके सामने सिर झुकाते हैं। हिन्दुओं ने भी अपनी भावना के अनुसार जन-साधारण के हृदय में भेदभाव करने का मार्ग चलाया है। उन्होंने मानव जीवन में क्रम-विकास का अध्ययन किया है। वे यह नहीं मानते कि हाथ-पैर, मुँह-आँख और कान समान होने से हृदय भी एक-सा होगा और विजय! धर्म तो हृदय से आचरित होता है न, इसलिए अधिकार भेद है।'

'तो फिर उसमें उच्च विचार वाले लोगों को स्थान नहीं, क्योंकि समता और विषमता का द्वन्द्व उसके मूल में वर्तमान है।'

'उनसे तो अच्छा है, जो बाहर से साम्य की घोषणा करके भी भीतर से घोर विभिन्न मत के हैं और वह भी स्वार्थ के कारण! हिन्दू समाज तुमको मूर्ति-पूजा करने के लिए बाध्य नहीं करता, फिर तुमको व्यंग्य करने का कोई अधिकार नहीं। तुम अपने को उपयुक्त समझते हो, तो उससे उच्चतर उपासना-प्रणाली में सम्मिलित हो जाओ। देखो, आज तुमने घर में अपने इस काण्ड के द्वारा भयानक हलचल मचा दी है। सारा उत्सव बिगड़ गया है।'

अब किशोरी भीतर चली गयी, जो बाहर खड़ी हुई दोनों की बातें सुन रही थी। वह बोली, 'मंगल ने ठीक कहा है। विजय, तुमने अच्छा काम नहीं किया। सब लोगों का उत्साह ठण्डा पड़ गया। पूजा का आयोजन अस्त-व्यस्त हो गया।' किशोरी की आँखें भर आयी थीं, उसे बड़ा क्षोभ था, पर दुलार के कारण विजय को वह कुछ कहना नहीं चाहती थी।

मंगल ने कहा, 'माँ! विजय को साथ लेकर हम इस उत्सव को सफल बनाने का प्रयत्न करेंगे, आप अपने को दुःखी न कीजिये।'

किशोरी प्रसन्न हो गयी। उसने कहा, 'तुम तो अच्छे लड़के हो। देख तो विजय! मंगल की-सी बुद्धि सीख!'

विजय हँस पड़ा। दोनों देव मन्दिर की ओर चले।

नीचे गाड़ी की हरहराहट हुई, मालूम हुआ निरंजन स्टेशन चला गया।

उत्सव में विजय ने बड़े उत्साह से भाग लिया, पर यमुना सामने न आयी, तो विजय के सम्पूर्ण उत्साह के भीतर यह गर्व हँस रहा था कि मैंने यमुना का अच्छा बदला निरंजन से लिया।

किशोरी की गृहस्थी नये उत्साह से चलने लगी। यमुना के बिना वह पल भर भी नहीं रह सकती, जिसको जो कुछ माँगना होता, यमुना से कहता। घर का सब प्रबन्ध यमुना के हाथ में था। यमुना प्रबन्धकारिणी और आत्मीय दासी भी थी।

विजयचन्द्र के कमरे का झाड़-पोंछ और रखना-उठाना सब यमुना स्वयं करती थी। कोई दिन ऐसा न बीतता कि विजय को उसकी नयी सुरुचि का परिचय अपने कमरे में न मिलता। विजय के पान खाने का व्यसन बढ़ चला था। उसका कारण था यमुना के लगाये स्वादिष्ट पान। वह उपवन से चुनकर फूलों की माला बना लेती। गुच्छे सजाकर फूलदान में लगा देती। विजय की आँखों में उसका छोटे-से-छोटा काम भी कुतूहल मिश्रित प्रसन्नता उत्पन्न करता, पर एक बात से अपने को सदैव बचाती रही-उसने अपना सामना मंगल से न होने दिया। जब कभी परसना होता-किशोरी अपने सामने विजय और मंगल, दोनों को खिलाने लगती। यमुना अपना बदन समेटकर और लम्बा घूँघट काढ़े हुए परस जाती। मंगल ने कभी उधर देखने की चेष्टा भी न की, क्योंकि वह भद्र कुटुम्ब के नियमों को भली-भाँति जानता था। इसके विरुद्ध विजयचन्द्र ऊपर से न कहकर, सदैव चाहता कि यमुना से मंगल परिचित हो जाये और उसकी यमुना की प्रतिदिन की कुशलता की प्रकट प्रशंसा करने का अवसर मिले।

विजय को इन दोनों रहस्यपूर्ण व्यक्तियों के अध्ययन का कुतूहल होता। एक ओर सरल, प्रसन्न, अपनी व्यवस्था से संतुष्ट मंगल, दूसरी ओर सबको प्रसन्न करने की चेष्टा करने वाली यमुना का रहस्यपूर्ण हँसी। विजय विस्मित था। उसके युवक-हृदय को दो साथी मिले थे-एक घर के भीतर, दूसरा बाहर। दोनों ही संयत भाव के और फूँक-फूँककर पैर रखने वाले! इन दोनों से मिल जाने की चेष्टा करता।

एक दिन मंगल और विजय बैठे हुए भारतीय इतिहास का अध्ययन कर रहे थे। कोर्स तैयार करना था। विजय ने कहा, 'भाई मंगल! भारत के इतिहास में यह गुप्त-वंश भी बड़ा प्रभावशाली था, पर उसके मूल पुरुष का पता नही चलता।'

'गुप्त-वंश भारत के हिन्दू इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ है। सचमुच इसके साथ बड़ी-बड़ी गौरव-गाथाओं का सम्बन्ध है।' बड़ी गंभीरता से मंगल ने कहा।

'परन्तु इसके अभ्युदय में लिच्छिवियों के नाश का बहुत कुछ अंश है, क्या लिच्छिवियों के साथ इन लोगों ने विश्वासघात नहीं किया?' विजय ने पूछा।

'हाँ, वैसा ही उनका अन्त भी तो हुआ। देखो, थानेसर के एक कोने से एक साधारण सामन्त-वंश गुप्त सम्राटों से सम्बन्ध जोड़ लेने में कैसा सफल हुआ और क्या इतिहास इसका साक्षी नहीं है कि मगध के गुप्त सम्राटों को बड़ी सरलता से उनके मानवीय पद से हटाकर ही हर्षवर्धन उत्तरा-पथेश्वर बन गया था। यह तो ऐसे ही चला करता है।' मंगल ने कहा।

'तो ये उनसे बढ़कर प्रतारक थे, वह वर्धन-वंश भी-' विजय और कुछ कहना चाहता ही था कि मंगल ने रोककर कहा, 'ठहरो विजय! वर्धनों के प्रति ऐसे शब्द कहना कहाँ तक संगत है। तुमको मालूम है कि ये अपना पाप छिपाना भी नहीं चाहते। देखो, यह वही यंत्र है, जिसे तुमने फेंक दिया था। जो कुछ इसका अर्थ प्रोफेसर देव ने किया है, उसे देखो तो-' कहते-कहते मंगल ने जेब से निकालकर अपना यंत्र और उसके साथ एक कागज फेंक दिया। विजय ने यंत्र तो न उठाया, कागज उठाकर पढ़ने लगा-'कमण्डलेश्वर महाराजपुत्र राज्यवर्धन इस लेख के द्वारा यह स्वीकार करते हैं कि चन्द्रलेखा का हमारा विवाह-सम्बन्ध न होते हुए भी यह परिणीता वधु के समान पवित्र और हमारे स्नेह की सुन्दर कहानी है, इसलिए इसके वंशधर साम्राज्य में वही सम्मान पावेंगे, जो मेरे वंशधरों को साधारणतः मिलता है।'

विजय के हाथ से पत्र गिर पड़ा। विस्मय से उसकी आँखें बड़ी हो गयीं। वह मंगल की ओर एक टक निहारने लगा। मंगल ने कहा, 'क्या है विजय?'

'पूछते हो क्या है! आज एक बड़ा भारी आविष्कार हुआ है, तुम अभी तक नहीं समझ सके। आश्चर्य है! क्या इससे यह निष्कर्ष नहीं निकल सकता कि तुम्हारी नसों में वही रक्त है, जो हर्षवर्धन की धमनियों में प्रवाहित था?'

'यह अच्छी दूर की सूझी! कहीं मेरे पूर्व-पुरुषों को यह मंगल-सूचक यंत्र में समझाकर बिना जाने-समझे तो नहीं दे दिया गया था इसमें...'

'ठहरो, यदि मैं इस प्रकार समझूँ, तो क्या बुरा कि यह चन्द्रलेखा के वंशधरों के पास वंशानुक्रम से चला आया हो और पीछे यह शुभ समझकर उस

कुल के बच्चों को ब्याह होने तक पहनाया जाता रहा हो। तुम्हारे यहाँ उसका व्यवहार भी तो इसी प्रकार रहा है।'

मंगल के सिर में विलक्षण भावनाओं की गर्मी से पसीना चमकने लगा। फिर उसने हँसकर कहा, 'वाह विजय! तुम भी बड़े भारी परिहास रसिक हो!' क्षण भर में भारी गंभीरता चली गयी, दोनों हँसने लगे।

(7) रजनी के बालों में बिखरे हुए मोती बटोरने के लिए प्राची के प्रांगण में उषा आयी और इधर यमुना उपवन में फूल चुनने के लिए पहुँची। प्रभात की फीकी चाँदनी में बचे हुए एक-दो नक्षत्र अपने को दक्षिण-पवन के झोंकों में विलीन कर देना चाहते हैं। कुन्द के फूल थले के श्यामल अंचल पर कसीदा बनाने लगे थे। गंगा के मुक्त वक्षस्थल पर घूमती हुई, मन्दिरों के खुलने की, घण्टों की प्रतिध्वनि, प्रभात की शान्त निस्तब्धता में एक संगीत की झनकार उत्पन्न कर रही थी। अन्धकार और आलोक की सीमा बनी हुई युवती के रूप को अस्त होने वाला पीला चन्द्रमा और लाली फेंकने वाली उषा, अभी स्पष्ट दिखला सकी थी कि वह अपनी डाली फूलों से भर चुकी और उस कड़ी सर्दी में भी यमुना मालती-कुंज की पत्थर की चौकी पर बैठी हुई, देर से आते हुए शहनाई के मधुर-स्वर में अपनी हृदयतंत्री मिला रही थी।

संसार एक अँगड़ाई लेकर आँख खोल रहा था। उसके जागरण में मुस्कान थी। नीड़ में से निकलते हुए पक्षियों के कलरव को वह आश्चर्य से सुन रही थी। वह समझ न सकती थी कि उन्हें उल्लास है! संसार में प्रवृत्त होने की इतनी प्रसन्नता क्यों दो-दो दाने बीनकर ले आने और जीवन को लम्बा करने के लिए इतनी उत्कंठा! इतना उत्साह! जीवन इतने सुख की वस्तु है

टप...टप...टप...टप...! यमुना चकित होकर खड़ी हो गयी। खिल-खिलाकर हँसने का शब्द हुआ। यमुना ने देखा-विजय खड़ा है! उसने कहा, 'यमुना, तुमने तो समझा होगा कि बिना बादलों की बरसात कैसी?'

'आप ही थे-मालती-लता से ओस की बूँदें गिराकर बरसात का अभिनय करने वाले! यह जानकर मैं तो चौंक उठी थी।'

'हाँ यमुना! आज तो हम लोगों का रामनगर चलने का निश्चय है। तुमने तो सामान आदि बाँध लिये होंगे-चलोगी न?'

'बहूजी की जैसी आज्ञा होगी।'

इस बेबसी के उत्तर पर विजय के मन में बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई। उसने कहा, 'नहीं यमुना, तुम्हारे बिना तो मेरा, कहते-कहते रुककर कहा, 'प्रबन्ध ही न हो सकेगा-जलपान, पान स्नान सब अपूर्ण रहेगा।'

'तो मैं चलूँगी।' कहकर यमुना कुंज से बाहर आयी। वह भीतर जाने लगी। विजय ने कहा, 'बजरा कब का ही घाट आ गया होगा, हम लोग चलते हैं। माँ को लिवाकर तुरन्त आओ।'

भागीरथी के निर्मल जल पर प्रभात का शीतल पवन बालकों के समान खेल रहा था-छोटी छोटी लहरियों के घरौंदे बनते-बिगड़ते थे। उस पार के वृक्षों की श्रेणी के ऊपर एक भारी चमकीला और पीला बिम्ब था। रेत में उसकी पीली छाया और जल में सुनहला रंग, उड़ते हुए पक्षियों के झुण्ड से आक्रान्त हो जाता था। यमुना बजरे की खिड़की में से एकटक इस दृश्य को देख रही थी और छत पर से मंगलदेव उसकी लम्बी उँगलियों से धारा का कटना देख रहा था। डाँडों का छप-छप शब्द बजरे की गति में ताल दे रहा था। थोड़ी ही देर में विजय माझी को हटाकर पतवार थामकर जा बैठा। यमुना सामने बैठी हुई डाली में फूल सँवारने लगी, विजय औरों की आँख बचाकर उसे देख लिया करता।

बजरा धारा पर बह रहा था। प्रकृति-चितेरी संसार का नया चित्र बनाने के लिए गंगा के ईषत् नील जल में सफेदा मिला रही थी। धूप कड़ी हो चली थी। मंगल ने कहा, 'भाई विजय! इस नाव की सैर से अच्छा होगा कि मुझे उस पार की रेत में उतार दो। वहाँ दो-चार वृक्ष दिखायी दे रहे हैं, उन्हीं की छाया में सिर ठण्डा कर लूँगा।'

'हम लोगों को तो अभी स्नान करना है, चलो वहीं नाव लगाकर हम लोग भी निपट लें।'

माझियों ने उधर की ओर नाव खेना आरम्भ किया। नाव रेत से टिक गयी। बरसात उतरने पर यह द्वीप बन गया था। अच्छा एकान्त था। जल भी वहाँ स्वच्छ था। किशोरी ने कहा, 'यमुना, चलो हम लोग भी नहा लें।'

'आप लोग आ जायें, तब मैं जाऊँगी।' यमुना ने कहा। किशोरी उसकी सचेष्टता पर प्रसन्न हो गयी। वह अपनी दो सहेलियों के साथ बजरे में उतर गयी।

मंगलदेव पहले ही कूद पड़ा था। विजय भी कुछ इधर-उधर करके उतरा। द्वीप के विस्तृत किनारों पर वे लोग फैल गये। किशोरी और उनकी सहेलियाँ स्नान करके लौट आयीं, अब यमुना अपनी धोती लेकर बजरे में उतरी और बालू की एक ऊँची टोकरी के कोने में चली गयी। यह कोना एकान्त था। यमुना गंगा के जल में पैर डालकर कुछ देर तक चुपचाप बैठी हुई, विस्तृत जलधारा के ऊपर सूर्य की उज्ज्वल किरणों का प्रतिबिम्ब देखने लगी। जैसे रात के तारों की फूल-अंजली जाह्नवी के शीतल वृक्ष कर किसी ने बिखेर दी हो।

पीछे निर्जन बालू का द्वीप और सामने दूर पर नगर की सौध-श्रेणी, यमुना की आँखों में निश्चेष्ट कुतूहल का कारण बन गयी। कुछ देर में यमुना ने स्नान किया। ज्यों ही वह सूखी धोती पहनकर सूखे बालों को समेट रही थी, मंगलदेव सामने आकर खड़ा हो गया। समान भाव से दोनों पर आकस्मिक आने वाली विपद को देखकर परस्पर शत्रुओं के समान मंगलदेव और यमुना एक क्षण के लिए स्तब्ध थे।

'तारा! तुम्हीं हो!' बड़े साहस से मंगल ने कहा।

युवती की आँखों में बिजली दौड़ गयी। वह तीखी दृष्टि से मंगलदेव को देखती हुई बोली, 'क्या मुझे अपनी विपत्ति के दिन भी किसी तरह न काटने दोगे। तारा मर गयी, मैं उसकी प्रेतात्मा यमुना हूँ।'

मंगलदेव ने आँखें नीचे कर लीं। यमुना अपनी गीली धोती लेकर चलने को उद्यत हुई। मंगल ने हाथ जोड़कर कहा, 'तारा मुझे क्षमा करो।'

उसने दृढ़ स्वर में कहा, 'हम दोनों का इसी में कल्याण है कि एक-दूसरे को न पहचानें और न ही एक-दूसरे की राह में अड़ें। तुम विद्यालय के छात्र हो और मैं दासी यमुना-दोनों को किसी दूसरे का अवलम्ब है। पापी प्राण की रक्षा के लिए मैं प्रार्थना करती हूँ कि, क्योंकि इसे देकर मैं न दे सकी।'

'तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही।' कहकर ज्यों ही मंगलदेव ने मुँह फिराया, विजय ने टेकरी की आड़ से निकलकर पुकारा, 'मंगल! क्या अभी जलपान न करोगे?'

यमुना और मंगल ने देखा कि विजय की आँखें क्षण-भर में लाल हो गयीं, परन्तु तीनों चुपचाप बजरे की ओर लौटे। किशोरी ने खिड़की से झाँककर कहा, 'आओं जलपान कर लो, बड़ा विलम्ब हुआ।'

विजय कुछ न बोला, जाकर चुपचाप बैठ गया। यमुना ने जलपान लाकर दोनों को दिया। मंगल और विजय लड़कों के समान चुपचाप मन लगाकर खाने लगे। आज यमुना का घूँघट कम था। किशोरी ने देखा, कुछ बेढब बात है। उसने कहा, 'आज न चलकर किसी दूसरे दिन रामनगर चला जाय, तो क्या हानि है दिन बहुत बीत चुका, चलते-चलते संध्या हो जाएगी। विजय, कहो तो घर ही लौट चला जाए?'

विजय ने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दी।

माझियों ने उसी ओर खेना आरम्भ कर दिया।

दो दिन तक मंगलदेव और विजयचन्द से भेंट ही न हुई। मंगल चुपचाप अपनी किताब में लगा रहता है और समय पर स्कूल चला जाता। तीसरे दिन अकस्मात् यमुना पहले-पहल मंगल के कमरे में आयी। मंगल सिर झुकाकर पढ़ रहा था, उसने देखा नहीं, यमुना ने कहा, 'विजय बाबू ने तकिये से सिर नहीं उठाया, ज्वर बड़ा भयानक होता जा रहा है। किसी अच्छे डॉक्टर को क्यों नहीं लिवा लाते।'

मंगल ने आश्चर्य से सिर उठाकर फिर देखा-यमुना! वह चुप रह गया। फिर सहसा अपना कोट लेते हुए उसने कहा, 'मैं डॉक्टर दीनानाथ के यहाँ जाता हूँ।' और वह कोठरी से बाहर निकल गया।

विजयचन्द्र पलंग पर पड़ा करवट बदल रहा था। बड़ी बेचैनी थी। किशोरी पास ही बैठी थी। यमुना सिर सहला रही थी। विजय कभी-कभी उसका हाथ पकड़कर माथे से चिपटा लेता था।

मंगल डॉक्टर को लिये हुए भीतर चला आया। डॉक्टर ने देर तक रोगी की परीक्षा की। फिर सिर उठाकर एक बार मंगल की ओर देखा और पूछा, 'रोगी को आकस्मिक घटना से दुःख तो नहीं हुआ है?'

मंगल ने कहा, 'ऐसा तो यों कोई कारण नहीं है। हाँ, इसके दो दिन पहले हम लोगों ने गंगा में पहरों स्नान किया और तैरे थे।'

डॉक्टर ने कहा, 'कुछ चिंता नहीं। थोड़ा यूडीक्लोन सिर पर रखना चाहिए, बेचैनी हट जायेगी और दवा लिखे देता हूँ। चार-पाँच दिन में ज्वर उतरेगा। मुझे टेम्परेचर का समाचार दोनों समय मिलना चाहिए।'

किशोरी ने कहा, 'आप स्वयं दो बार दिन में देख लिया कीजिये तो अच्छा हो!'

डॉक्टर बहुत ही स्पष्टवादी और चिड़चिड़े स्वाभाव का था और नगर में अपने काम में एक ही था। उसने कहा, 'मुझे दोनों समय देखने का अवकाश नहीं और आवश्यकता भी नहीं। यदि आप लोगों से स्वयं इतना भी नहीं हो सकता, तो डॉक्टर की दवा करनी व्यर्थ है।'

'जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा। आपको समय पर ठीक समाचार मिलेगा। डॉक्टर साहब दया कीजिये।' यमुना ने कहा।

डॉक्टर ने रुमाल निकालकर सिर पोंछा और मंगल के दिये हुए कागज पर औषधि लिखी। मंगल ने किशोरी से रुपया लिया और डॉक्टर के साथ ही वह औषधि लेने चला गया।

मंगल और यमुना की अविराम सेवा से आठवें दिन विजय उठ बैठा। किशोरी बहुत प्रसन्न हुई। निरंजन भी तार द्वारा समाचार पाकर चले आये थे। ठाकुर जी की सेवा-पूजा की धूम एक बार फिर मच गयी।

विजय अभी दुर्बल था। पन्द्रह दिनों में ही वह छः महीने का रोगी जान पड़ता था। यमुना आजकल दिन-रात अपने अन्नदाता विजय के स्वास्थ्य की रखवाली करती थी और जब निरंजन के ठाकुर जी की ओर जाने का उसे अवसर ही न मिलता था।

जिस दिन विजय बाहर आया, वह सीधे मंगल के कमरे में गया। उसके मुख पर संकोच और आँखों में क्षमा थी। विजय के कुछ कहने के पहले ही मंगल ने उखड़े हुए शब्दों में कहा, 'विजय, मेरी परीक्षा भी समाप्त हो गयी और नौकरी का प्रबन्ध भी हो गया। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। आज ही जाऊँगा, आज्ञा दो।'

'नहीं मंगल! यह तो नहीं हो सकता।' कहते-कहते विजय की आँखें भर आयीं।

'विजय! जब मैं पेट की ज्वाला से दग्ध हो रहा था, जब एक दाने का कहीं ठिकाना नहीं था, उस समय मुझे तुमने अवलम्ब दिया, परन्तु मैं उस योग्य न था। मैं तुम्हारा विश्वासपात्र न रह सका, इसलिए मुझे छुट्टी दो।'

'अच्छी बात है, तुम पराधीन नहीं हो। पर माँ ने देवी के दर्शन की मनौती की है, इसलिए हम लोग वहाँ तक तो साथ ही चलें। फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।'

मंगल चुप रहा।

किशोरी ने मनौती की सामग्री जुटानी आरम्भ की। शिशिर बीत रहा था। यह निश्चय हुआ कि नवरात्र में चला जाये। मंगल को तब तक चुपचाप रहना दुःसह हो उठा। उसके शान्त मन में बार-बार यमुना की सेवा और विजय की बीमारी-ये दोनों बातें लड़कर हलचल मचा देती थीं। वह न जाने कैसी कल्पना से उन्मत्त हो उठता। हिंसक मनोवृत्ति जाग जाती। उसे दमन करने में वह असमर्थ था। दूसरे ही दिन बिना किसी से कहे-सुने मंगल चला गया।

विजय को खेद हुआ, पर दुःख नहीं। वह बड़ी दुविधा में पड़ा था। मंगल जैसे उसकी प्रगति में बाधा स्वरूप हो गया था। स्कूल के लड़कों को जैसी लम्बी छुट्टी की प्रसन्नता मिलती है, ठीक उसी तरह विजय के हृदय में प्रफुल्लता भरने लगी। बड़े उत्साह से वह भी अपनी तैयारी में लगा। फेसक्रीम, पोमेड, टूथ पाउडर, ब्रश आकर उसके बैग में जुटने लगे। तौलियों और सुगन्धों की भरमार से बैग ठसाठस भर गया।

किशोरी भी अपने सामान में लगी थी। यमुना कभी उसके कभी विजय के साधनों में सहायता करती। वह घुटनों के बल बैठकर विजय की सामग्री बड़े मनोयोग से हैंडबेग में सजा रही थी। विजय कहता, 'नहीं यमुना! तौलिया तो इस बैग में अवश्य रहनी चाहिए।' यमुना कहती, 'इतनी सामग्री इस छोटे पात्र में समा नहीं सकती। वह ट्रंक में रख दी जायेगी।'

विजय ने कहा, 'मैं अपने अत्यंत आवश्यक पदार्थ अपने समीप रखना चाहता हूँ।'

'आप अपनी आवश्यकताओं का ठीक अनुमान नहीं कर सकते। संभवतः आपका चिट्ठा बड़ा हुआ रहता है।'

'नहीं यमुना! वह मेरी नितान्त आवश्यकता है।'

'अच्छा तो सब वस्तु आप मुझसे माँग लीजियेगा। देखिये, जब कुछ भी घटे।'

विजय ने विचारकर देखा कि यमुना भी तो मेरी सबसे बढ़कर आवश्यकता की वस्तु है। वह हताश होकर सामान से हट गया। यमुना और किशोरी ने ही मिलकर सब सामान ठीक कर लिए।

निश्चित दिन आ गया। रेल का प्रबन्ध पहले ही ठीक कर लिया गया था। किशोरी की कुछ सहेलियाँ भी जुट गयी थीं। निरंजन थे प्रधान सेनापति। वह छोटी-सी सेना पहाड़ पर चढ़ाई करने चली।

चैत का सुन्दर एक प्रभात था। दिन आलस से भरा, अवसाद से पूर्ण, फिर भी मनोरंजकता थी। प्रवृत्ति थी। पलाश के वृक्ष लाल हो रहे थे। नयी-नयी पत्तियों के आने पर भी जंगली वृक्षों में घनापन न था। पवन बौखलाया हुआ सबसे धक्कम-धुक्की कर रहा था। पहाड़ी के नीचे एक झील-सी थी, जो बरसात में भर जाती है। आजकल खेती हो रही थी। पत्थरों के ढोकों से उनकी समानी बनी हुई थी, वहीं एक नाले का भी अन्त होता था। यमुना एक ढोके पर बैठ गयी। पास ही हैंडबैग धरा था। वह पिछड़ी हुई औरतों के आने की बाट जोह रही थी और विजय शैलपथ से ऊपर सबके आगे चढ़ रहा था।

किशोरी और उसकी सहेलियाँ भी आ गयीं। एक सुन्दर झुरमुट था, जिसमें सौन्दर्य और सुरुचि का समन्वय था। शहनाई के बिना किशोरी का कोई उत्साह पूरा न होता था, बाजे-गाजे से पूजा करने की मनौती थी। वे बाजे वाले भी ऊपर पहुँच चुके थे। अब प्रधान आक्रमणकारियों का दल पहाड़ी पर चढ़ने लगा। थोड़ी ही देर में पहाड़ी पर संध्या के रंग-बिरंगे बादलों का दृश्य दिखायी देने लगा।

देवी का छोटा-सा मन्दिर है, वहीं सब एकत्र हुए। कपूरी, बादामी, फिरोजी, धानी, गुलेनार रंग के घूँघट उलट दिये गये। यहाँ परदे के आवश्यकता न थी। भैरवी के स्वर, मुक्त होकर पहाड़ी के झरनों की तरह निकल रहे थे। सचमुच, वसन्त खिल उठा। पूजा के साथ ही स्वतंत्र रूप से ये सुन्दरियाँ भी गाने लगीं। यमुना चुपचाप कुरैये की डाली के नीचे बैठी थी। बेग का सहारा लिये वह धूप में अपना मुख बचाये थी। किशोरी ने उसे हठ करके गुलेनार चादर ओढ़ा दी। पसीने से लगकर उस रंग ने यमुना के मुख पर अपने चिह्न बना दिये थे। वह बड़ी सुन्दर रंगसाजी थी। यद्यपि उसके भाव आँखों के नीचे की कालिमा में करुण रंग में छिप रहे थे, परन्तु उस समय विलक्षण आकर्षण उसके मुख पर था। सुन्दरता की होड़ लग जाने पर मानसिक गति दबाई न जा सकती थी। विजय जब सौन्दर्य में अपने को अलग न रख सका, वह पूजा छोड़कर उसी के समीप एक विशालखण्ड पर जा बैठा। यमुना भी सम्भलकर बैठ गयी थी।

'क्यों यमुना! तुमको गाना नहीं आता बातचीत आरम्भ करने के ढंग से विजय ने कहा।

'आता क्यों नहीं, पर गाना नहीं चाहती हूँ।'

'क्यों?'

'यों ही। कुछ करने का मन नहीं करता।'

'कुछ भी?'

'कुछ नहीं, संसार कुछ करने योग्य नहीं।'

'फिर क्या?'

'इसमें यदि दर्शक बनकर जी सके, तो मनुष्य के बड़े सौभाग्य की बात है।'

'परन्तु मैं केवल इसे दूर से नहीं देखना चाहता।'

'अपनी-अपनी इच्छा है। आप अभिनय करना चाहते हैं, तो कीजिये, पर यह स्मरण रखिये कि सब अभिनय सबके मनोनुकूल नहीं होते।'

'यमुना, आज तो तुमने रंगीन साड़ी पहनी है, बड़ी सुन्दर लग रही है!'

'क्या करूँ विजय बाबू! जो मिलेगा वहीं न पहनूँगी।' विरक्त होकर यमुना ने कहा।

विजय को रुखाई जान पड़ी, उसने भी बात बदल दी। कहा, 'तुमने तो कहा था कि तुमको जिस वस्तु की आवश्यकता होगी, मैं दूँगी, यहाँ मुझे कुछ आवश्यकता है।'

यमुना भयभीत होकर विजय के आतुर मुख का अध्ययन करने लगी। कुछ न बोली। विजय ने सहमकर कहा, 'मुझे प्यास लगी है।'

यमुना ने बैग से एक छोटी-सी चाँदी की लुटिया निकाली, जिसके साथ पतली रंगीन डोरी लगी थी। वह कुरैया के झुरमुट के दूसरी ओर चली गई। विजय चुपचाप सोचने लगा और कुछ नहीं, केवल यमुना के स्वच्छ कपोलों पर गुलेनार रंग की छाप। उन्मत्त हृदय-किशोर हृदय स्वप्न देखने लगा-ताम्बूल राग-रंजित, चुंबन अंकित कपोलों का! वह पागल हो उठा।

यमुना पानी लेकर आयी, बैग से मिठाई निकालकर विजय के सामने रख दी। सीधे लड़के की तरह विजय ने जलपान किया, तब पूछा, 'पहाड़ी के ऊपर ही तुम्हें जल मिला, यमुना?'

'यहीं तो, पास ही एक कुण्ड है।'

'चलो तुम दिखला दो।'

दोनों कुरैये के झुरमुट की ओट में चले। वहाँ सचमुच एक चौकोर पत्थर का कुण्ड था, उसमें जल लबालब भरा था। यमुना ने कहा, 'मुझसे यही एक पंडे ने कहा है कि यह कुण्ड जाड़ा, गर्मी, बरसात सब दिनों में बराबर भरा रहता है, जितने आदमी चाहें इसमें जल पियें, खाली नहीं होता। यह देवी का चमत्कार है। इसी में विंध्यवासिनी देवी से कम इन पहाड़ी झीलों की देवी का मान नहीं है। बहुत दूर से लोग यहाँ आते हैं।'

'यमुना, है बड़े आश्चर्य की बात! पहाड़ी के इतने ऊपर भी यह जल कुण्ड सचमुच अद्‌भुत है, परन्तु मैंने और भी ऐसा कुण्ड देखा है, जिसमें कितने ही जल पियें, वह भरा ही रहता है!'

'सचमुच! कहाँ पर विजय बाबू?'

'सुन्दरी में रूप का कूप!' कहकर विजय यमुना के मुख को उसी भाँति देखने लगा, जैसे अनजान में ढेला फेंककर बालक चोट लगने वाले को देखता है।

'वाह विजय बाबू! आज-कल साहित्य का ज्ञान बढ़ा हुआ देखती हूँ!' कहते हुए यमुना ने विजय की ओर देखा, जैसे कोई बड़ी-बूढ़ी नटखट लड़के को संकेत से झिड़कती हो।

विजय लज्जित हो उठा। इतने में 'विजय बाबू' की पुकार हुई, किशोरी बुला रही थी। वे दोनों देवी के सामने पहुँचे। किशोरी मन-ही-मन मुस्कुराई। पूजा समाप्त हो चुकी थी। सबको चलने के लिए कहा गया। यमुना ने बैग उठाया।

सब उतरने लगे। धूप कड़ी हो गयी थी, विजय ने अपना छाता खोल लिया। उसकी बार-बार इच्छा होती थी कि वह यमुना से इसी की छाया में चलने को कहे, पर साहस न होता। यमुना की एक-दो लटें पसीने से उसके सुन्दर भाल पर चिपक गयी थीं। विजय उसकी विचित्र लिपि को पढ़ते-पढ़ते पहाड़ी से नीचे उतरा।

सब लोग काशी लौट आये।

छोटा जादूगर

जयशंकर प्रसाद

कार्निवल के मैदान में बिजली जगमगा रही थी। हँसी और विनोद का कलनाद गूँज रहा था। मैं खड़ा था। उस छोटे फुहारे के पास, जहाँ एक लड़का चुपचाप शराब पीने वालों को देख रहा था। उसके गले में फटे कुरते के ऊपर से एक मोटी-सी सूत की रस्सी पड़ी थी और जेब में कुछ ताश के पत्ते थे। उसके मुँह पर गम्भीर विषाद के साथ धैर्य की रेखा थी। मैं उसकी ओर न जाने क्यों आकर्षित हुआ। उसके अभाव में भी सम्पूर्णता थी। मैंने पूछा-''क्यों जी, तुमने इसमं क्या देखा?''

''मैंने सब देखा है। यहाँ चूड़ी फेंकते हैं। खिलौनों पर निशाना लगाते हैं। तीर से नम्बर छेदते हैं। मुझे तो खिलौनों पर निशाना लगाना अच्छा मालूम हुआ। जादूगर तो बिलकुल निकम्मा है। उससे अच्छा तो ताश का खेल मैं ही दिखा सकता हूँ।''-उसने बड़ी प्रगल्भता से कहा। उसकी वाणी में कहीं रुकावट न थी।

मैंने पूछा-''और उस परदे में क्या है? वहाँ तुम गये थे''

''नहीं, वहाँ मैं नहीं जा सका। टिकट लगता है।''

मैंने कहा-''तो चल, मैं वहाँ पर तुमको लिवा चलूँ।'' मैंने मन-ही-मन कहा-''भाई! आज के तुम्हीं मित्र रहे।''

उसने कहा-''वहाँ जाकर क्या कीजिएगा? चलिए, निशाना लगाया जाय।''

मैंने सहमत होकर कहा-''तो फिर चलो, पहिले शरबत पी लिया जाय।'' उसने स्वीकार-सूचक सिर हिला दिया।

मनुष्यों की भीड़ से जाड़े की सन्ध्या भी वहाँ गर्म हो रही थी। हम दोनों शरबत पीकर निशाना लगाने चले। राह में ही उससे पूछा-''तुम्हारे और कौन हैं?''

"माँ और बाबूजी।''

"उन्होंने तुमको यहाँ आने के लिए मना नहीं किया?''

"बाबूजी जेल में है।''

''क्यों?''

"देश के लिए।''-वह गर्व से बोला।

''और तुम्हारी माँ?''

"वह बीमार है।''

''और तुम तमाशा देख रहे हो?''

उसके मुँह पर तिरस्कार की हँसी फूट पड़ी। उसने कहा-''तमाशा देखने नहीं, दिखाने निकला हूँ। कुछ पैसे ले जाऊँगा, तो माँ को पथ्य दूँगा। मुझे शरबत न पिलाकर आपने मेरा खेल देखकर मुझे कुछ दे दिया होता, तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती।''

मैं आश्चर्य से उस तेरह-चौदह वर्ष के लड़के को देखने लगा।

''हाँ, मैं सच कहता हूँ बाबूजी! माँ जी बीमार है, इसलिए मैं नहीं गया।''

"कहाँ?''

"जेल में! जब कुछ लोग खेल-तमाशा देखते ही हैं, तो मैं क्यों न दिखाकर माँ की दवा करूँ और अपना पेट भरूँ।''

मैंने दीर्घ निश्वास लिया। चारों ओर बिजली के लट्टू नाच रहे थे। मन व्यग्र हो उठा। मैंने उससे कहा-''अच्छा चलो, निशाना लगाया जाय।''

हम दोनों उस जगह पर पहुँचे, जहाँ खिलौने को गेंद से गिराया जाता था। मैंने बारह टिकट खरीदकर उस लड़के को दिये।

वह निकला पक्का निशानेबाज। उसका कोई गेंद खाली नहीं गया। देखने वाले दंग रह गये। उसने बारह खिलौनों को बटोर लिया, लेकिन उठाता कैसे? कुछ मेरी रुमाल में बँधे, कुछ जेब में रख लिए गये।

लड़के ने कहा-''बाबूजी, आपको तमाशा दिखाऊँगा। बाहर आइए, मैं चलता हूँ।'' वह नौ-दो ग्यारह हो गया। मैंने मन-ही-मन कहा-''इतनी जल्दी आँख बदल गयी।''

मैं घूमकर पान की दूकान पर आ गया। पान खाकर बड़ी देर तक इधर-उधर टहलता देखता रहा। झूले के पास लोगों का ऊपर-नीचे आना देखने लगा। अकस्मात् किसी ने ऊपर के हिंडोले से पुकारा-''बाबूजी!''

मैंने पूछा-''कौन?''

''मैं हूँ छोटा जादूगर।''

-- --

कलकत्ते के सुरम्य बोटानिकल-उद्यान में लाल कमलिनी से भरी हुई एक छोटी-सी-झील के किनारे घने वृक्षों की छाया में अपनी मण्डली के साथ बैठा हुआ मैं जलपान कर रहा था। बातें हो रही थीं। इतने में वही छोटा जादूगर दिखाई पड़ा। हाथ में चारखाने की खादी का झोला। साफ जाँघिया और आधी बाँहों का कुरता। सिर पर मेरी रुमाल सूत की रस्सी से बँधी हुई थी। मस्तानी चाल से झूमता हुआ आकर कहने लगा-

"बाबूजी, नमस्ते! आज कहिए, तो खेल दिखाऊँ।''

''नहीं जी, अभी हम लोग जलपान कर रहे हैं।''

"फिर इसके बाद क्या गाना-बजाना होगा, बाबूजी?''

''नहीं जी-तुमको....'', क्रोध से मैं कुछ और कहने जा रहा था। श्रीमती ने कहा-''दिखलाओं जी, तुम तो अच्छे आये। भला, कुछ मन तो बहले।'' मैं चुप हो गया, क्योंकि श्रीमती की वाणी में वह माँ की-सी मिठास थी, जिसके सामने किसी भी लड़के को रोका जा नहीं सकता। उसने खेल आरम्भ किया।

उस दिन कार्निवल के सब खिलौने उसके खेल में अपना अभिनय करने लगे। भालू मनाने लगा। बिल्ली रूठने लगी। बन्दर घुड़कने लगा।

गुडिया का ब्याह हुआ। गुड्डा वर काना निकला। लड़के की वाचालता से ही अभिनय हो रहा था। सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

मैं सोच रहा था। बालक को आवश्यकता ने कितना शीघ्र चतुर बना दिया। यही तो संसार है।

ताश के सब पत्ते लाल हो गये। फिर सब काले हो गये। गले की सूत की डोरी टुकड़े-टुकड़े होकर जुट गयी। लट्टू अपने से नाच रहे थे। मैंने कहा-''अब हो चुका। अपना खेल बटोर लो, हम लोग भी अब जायँगे।''

श्रीमती जी ने धीरे से उसे एक रुपया दे दिया। वह उछल उठा।

मैंने कहा-''लड़के!''

"छोटा जादूगर कहिए। यही मेरा नाम है। इसी से मेरी जीविका है।''

मैं कुछ बोलना ही चाहता था कि श्रीमती ने कहा-''अच्छा, तुम इस रुपये से क्या करोगे?''

"पहले भर पेट पकौड़ी खाऊँगा। फिर एक सूती कम्बल लूँगा।''

मेरा क्रोध अब लौट आया। मैं अपने पर बहुत क्रुद्ध होकर सोचने लगा-''ओह! कितना स्वार्थी हूँ मैं। उसके एक रुपये पाने पर मैं ईर्ष्या करने लगा था न!''

वह नमस्कार करके चला गया। हम लोग लता-कुंज देखने के लिए चले।

उस छोटे-से बनावटी जंगल में सन्ध्या साँय-साँय करने लगी थी। अस्ताचलगामी सूर्य की अन्तिम किरण वृक्षों की पत्तियों से विदाई ले रही थी। एक शान्त वातावरण था। हम लोग धीरे-धीरे मोटर से हावड़ा की ओर आ रहे थे।

रह-रहकर छोटा जादूगर स्मरण होता था। सचमुच वह एक झोपड़ी के पास कम्बल कन्धे पर डाले खड़ा था। मैंने मोटर रोककर उससे पूछा-''तुम यहाँ कहाँ?''

"मेरी माँ यहीं है न। अब उसे अस्पताल वालों ने निकाल दिया है।'' मैं उतर गया। उस झोपड़ी में देखा, तो एक स्त्री चिथड़ों से लदी हुई काँप रही थी।

छोटे जादूगर ने कम्बल ऊपर से डालकर उसके शरीर से चिमटते हुए कहा-''माँ।''

मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े।

-- --

बड़े दिन की छुट्टी बीत चली थी। मुझे अपने आफिस में समय से पहुँचना था। कलकत्ते से मन ऊब गया था। फिर भी चलते-चलते एक बार उस उद्यान को देखने की इच्छा हुई। साथ-ही-साथ जादूगर भी दिखाई पड़ जाता, तो और भी..... मैं उस दिन अकेले ही चल पड़ा। जल्द लौट आना था।

दस बज चुकी थी। मैंने देखा कि उस निर्मल धूप में सड़क के किनारे एक कपड़े पर छोटे जादूगर का रंगमंच सजा था। मोटर रोककर उतर पड़ा। वहाँ बिल्ली रूठ रही थी। भालू मनाने चला था। ब्याह की तैयारी थी। यह सब होते हुए भी जादूगर की वाणी में वह प्रसन्नता की तरी नहीं थी। जब वह औरों को हँसाने की चेष्टा कर रहा था, तब जैसे स्वयं कँप जाता था। मानो उसके रोएँ रो रहे थे। मैं आश्चर्य से देख रहा था। खेल हो जाने पर पैसा बटोरकर उसने भीड़ में मुझे देखा। वह जैसे क्षण-भर के लिए स्फूर्तिमान हो गया। मैंने उसकी पीठ थपथपाते हुए पूछा-''आज तुम्हारा खेल जमा क्यों नहीं?''

"माँ ने कहा है कि आज तुरन्त चले आना। मेरी घड़ी समीप है।''-अविचल भाव से उसने कहा।

''तब भी तुम खेल दिखलाने चले आये!'' मैंने कुछ क्रोध से कहा। मनुष्य के सुख-दु:ख का माप अपना ही साधन तो है। उसी के अनुपात से वह तुलना करता है।

उसके मुँह पर वही परिचित तिरस्कार की रेखा फूट पड़ी।

उसने कहा–''न क्यों आता!''

और कुछ अधिक कहने में जैसे वह अपमान का अनुभव कर रहा था।

क्षण-भर में मुझे अपनी भूल मालूम हो गयी। उसके झोले को गाड़ी में फेंककर उसे भी बैठाते हुए मैंने कहा–''जल्दी चलो।'' मोटरवाला मेरे बताये हुए पथ पर चल पड़ा।

कुछ ही मिनटों में मैं झोपड़े के पास पहुँचा। जादूगर दौड़कर झोपड़े में माँ-माँ पुकारते हुए घुसा। मैं भी पीछे थाय किन्तु स्त्री के मुँह से, 'बे...' निकलकर रह गया। उसके दुर्बल हाथ उठकर गिर गये। जादूगर उससे लिपटा रो रहा था, मैं स्तब्ध था। उस उज्ज्वल धूप में समग्र संसार जैसे जादू-सा मेरे चारों ओर नृत्य करने लगा।

6

प्रेमचंद युग

जब भी हम प्रेमचंद जी के साहित्य का अध्ययन करते हैं तो कुछ बातों को ध्यान में रखना अत्यंतावश्यक हो जाता है ..... साहित्य में प्रेमचंद युग का एक अलग योगदान है जो अतुलनीय है। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवम धार्मिक परिस्थियाँ कुछ ऐसी थी जिनसे प्रेरित होकर प्रेमचंद जी ने ऐयारी, तिलस्मी और जासूसी लेखन से निकल अपने साहित्य सृजन द्वारा तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया. आइये आज चर्चा करते हैं प्रेमचंद जी के समय की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवम धार्मिक और आर्थिक परिस्थियाँ क्या थी और प्रेमचंद जी का उसमें क्या योगदान था।....

प्रेमचंद युग को मोटे तौर पर 1880 से 1936 तक माना जा सकता है। यह युग भारत की दासता का युग था, जबकि पूरे भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें दृढ़तापूर्वक जम गयी थीं। प्रेमचंद का साहित्य जहां एक ओर भारत की अधोगति को चित्रित करता है वहीं दूसरी ओर भारत की भावी उन्नति के पथ को संस्पर्श करता है।

1904 में रूस-जापान युद्ध हुआ। इसी समय के आसपास बंग-भंग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसका पूर्वाभास 1904-05 में ही मिल चुका था। इस आन्दोलन से बंगालियों में तीव्र असंतोष की भावना फैली और यह बंगाल तक ही सीमित ना रह कर उसकी ध्वनि भारत के कोने-कोने में फैल गयी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी कविताओं से राष्ट्रीय चेतना उभारने में बहुत सहायता

पहुंचायी। यह आन्दोलन प्रेमचंद के जीवन में शक्ति के उद्‌गम स्रोत के रूप में ही आया और उनमें सामाजिक सोद्देश्यता की एक नयी लहर व्याप्त हो गयी। उन्होंने भी अपने साहित्य में इन्ही भावनाओं को अभिव्यक्ति देकर भारतवासियों को राष्ट्रीय जागरण की ओर उन्मुख किया।

इन कारणों के अतिरिक्त अनेक अन्य कारण भी थे, जिनसे प्रेमचंद युग में राष्ट्रीयता का पोषण हुआ. 1907 में मिन्टो-योजना सामने आई जिसके द्वारा राष्ट्रीय जीवन को अधिक से अधिक लघु खण्डों में विभाजित करने का प्रयत्न किया गया. इसी समय रूसी राज्य क्रांति का प्रभाव भी भारत पर पड़ा। 'रंगभूमि' और 'प्रेमाश्रम' में यह प्रभाव स्पष्टतया देखा जा सकता है। इस समय जनवादी आन्दोलन की प्रमुख विशेषता थी कि इसमें हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ने साथ-साथ भाग लिया।

अंग्रेजों ने देश की ग्रामीण व्यवस्था को पूर्णतया नष्ट कर दिया था। उन्होंने जमींदारों को मध्यस्थ बना दिया था। जमींदारों को पूरी छूट थी और उन्होंने अपना मनमाना लगान वसूल करना शुरू कर दिया. इसके अतिरिक्त जमींदारों का जीवन विलासिता का जीवन था। जो खर्चे वे स्वयं पूरा करने में असमर्थ थे, उन्हें वे किसानों से वसूल करने लगे। मालगुजारी वसूल करने के लिए अंग्रेज तरह तरह के कानून बनाते थे, जिससे किसानों को आवश्यकता से अधिक धन देना पड़ता था।

प्रेमचंद ने रंगभूमि में जनसेवक का उल्लेख किया है, जो पांडेपुर में सिगरेट का कारखाना खोलना चाहता था। वह नवीन पूंजीपतियों का चिन्ह था। जनता के सामने जब भी आता था तो स्वदेशी प्रचार की आड़ में तम्बाकू का प्रचार करना चाहता था। इन स्वदेशी पूंजीपतियों के कारण भी देश की आर्थिक स्थिति अत्यंत शोचनीय होती जा रही थी।

जहाँ तक धर्म से सम्बन्ध है, प्रेमचंद के समय में एक आन्दोलन आर्य समाज का था। इस युग में अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ और धीरे-धीरे धार्मिक रूढ़ियों में लोगों की आस्था कम हो गयी। प्रेमचंद साहित्य में इसका वास्तविक चित्रण मिलता है।

प्रेमचंद जिस युग में अपने साहित्य का निर्माण कर रहे थे, परंपरागत धर्म को उस रूप में ही न स्वीकार कर ज्यों का त्यों स्वीकार किया। प्रेमचंद ने अपने युग में इस विचारधारा का सूत्रपात किया वह था कि पापाचार का जीवन से पूर्णतया निराकरण हो क्योंकि वह जीवन को कलुषित करता है और उनसे कोई

उपलब्धि नहीं हो सकती, उन्होंने अपने अनेक उपन्यासों में धर्म की पोल को कलंकित रूप में बताकर उससे विमुख रहने को कहा है। प्रेमचंद मानते हैं कि मन चंगा तो कठोती में गंगा।

प्रेमचंद ने माना कि ईश्वर मंदिर-मस्जिद में नहीं है, निर्धनों की झोपड़ियों में है। प्रेमचंद ने मनुष्य सेवा को ही परम धर्म स्वीकार किया है। उन्होंने ईश्वर सेवा की दलील कहीं नहीं दी है। इस प्रकार प्रेमचंद युग में धर्म को एक मानववादी आधार दिया गया और बाह्याडम्बरों को पर्याप्त सीमा तक दूर किया गया।

इस युग में पराधीन देश में कर्म का उपदेश देने के लिए गीता का प्रसार हुआ और गांधी जी, एनी बेसेंट तथा बालगंगाधर तिलक आदि ने अपने-अपने दृष्टिकोण से उसकी टीकाएँ लिखीं। प्रेमचंद ने रंगभूमि में गीता का सन्देश दिया।

प्रेमचंद युग एक ओर उस युग का चित्र प्रस्तुत करता है, जो परम्परागत रूढ़ियों में जकड़ा था और उससे देश का जीवन जीर्ण- शीर्ण हो गया था। प्रेमचंद के इस युग पर बाह्याडम्बर और सामंतवाद का रंग चढ़ा था, किन्तु धीरे धीरे अंग्रेजी राज्य के आधीन होते हुए भी देश में पुनरुत्थान की भावना जाग्रत होने लगी थी। यही वह युग था, जिसमें कथाकार प्रेमचंद का उदय हुआ था। उन्होंने एक सजग, ईमानदार और प्रगतिशील कथाकार होने के नाते इन परिस्थितियों को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया, वरन पूर्ण कलात्मकता से उन्हें अपने उपन्यासों में चित्रित करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार उनके उपन्यासों में ये सभी राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवम आर्थिक परिस्थितियाँ यथार्थ रूप में उल्लेखनीय हैं।

वास्तव में प्रेमचंद उन कथाकारों में से थे, जो यह विश्वास करते थे कि व्यक्ति एक सामाजिक इकाई है। वह समाज की सीमाओं के भीतर ही बनता बिगड़ता है। समाज की सत्ता सर्वोपरि होती है। इसलिए प्रेमचंद जी ने समाज की ज्वलंत समस्याओं की कभी उपेक्षा नहीं की और न कभी उन्हें अविश्वसनीय ढंग से ही चित्रित किया। अपने काल की सभी परिस्थियों का प्रेमचंद जी ने अपनी सूक्ष्म अंतर्दृष्टि से अध्ययन किया, मूल तत्त्वों का अन्वेषण किया और प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना करते हुए सामयिक सामाजिक सत्यों का चित्रण किया. यही वो बाते हैं जो हमें प्रेमचंद जी के साहित्य अध्ययन करते समय याद रखनी चाहियें।

गोदान

प्रेमचंद

होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी दे कर अपनी स्त्री धनिया से कहा-गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूँ। जरा मेरी लाठी दे दे। धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथ कर आई थी। बोली-अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है? होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़ कर कहा-तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिंता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान-पूजा करने लगेंगे, तो घंटों बैठे बीत जायगा। 'इसी से तो कहती हूँ, कुछ जलपान कर लो और आज न जाओगे तो कौन हरज होगा! अभी तो परसों गए थे।'

'तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है भाई! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गए। गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई। जब दूसरे के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुसल है।'

धनिया इतनी व्यवहार-कुशल न थी। उसका विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ। यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ोय मगर लगान का बेबाक होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी और इस विषय पर स्त्री-पुरुष में आए दिन संग्राम छिड़ा रहता था। उसकी छः संतानों में अब केवल तीन जिंदा हैं, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का और दो लड़कियाँ सोना और रूपा, बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन ही में मर गए। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा-दवाई होती तो वे बच जाते, पर वह एक धेले की दवा भी न मँगवा सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवाँ ही साल तो था, पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। सारी देह ढल गई थी, वह सुंदर गेहुँआँ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिंता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का

सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था, जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था और दो-चार घुड़कियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

उसने परास्त हो कर होरी की लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तमाखू का बटुआ ला कर सामने पटक दिए।

होरी ने उसकी ओर आँखें तरेर कर कहा-क्या ससुराल जाना है, जो पाँचों पोसाक लाई है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जा कर दिखाऊँ।

होरी के गहरे साँवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा-ऐसे ही बड़े सजीले जवान हो कि साली-सलहजें तुम्हें देख कर रीझ जाएँगी।

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा-तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

'जा कर सीसे में मुँह देखो। तुम-जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दसा देख-देख कर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीख माँगेंगे?'

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आँच में झुलस गई। लकड़ी सँभलता हुआ बोला-साठे तक पहुँचने की नौबत न आने पाएगी धनिया, इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया ने तिरस्कार किया-अच्छा रहने दो, मत असुभ मुँह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने।

होरी कंधों पर लाठी रख कर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आतंकमय कंपन-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के संपूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय-दान दे रही थी। उसके अंत:करण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकल कर होरी को अपने अंदर छिपाए लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर

भी, मानो झटका दे कर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा। बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना-शक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दु:ख होता है, वह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है?

होरी कदम बढ़ाए चला जाता था। पगडंडी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देख कर उसने मन में कहा-भगवान कहीं गौं से बरखा कर दे और डाँड़ी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। देसी गाएँ तो न दूध दें, न उनके बछवे ही किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चले। नहीं, वह पछाईं गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पाँच सेर दूध होगा? गोबर दूध के लिए तरस-तरस रह जाता है। इस उमिर में न खाया-पिया, तो फिर कब खाएगा? साल-भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाए। बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोंई न होगी। फिर गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दर्सन हो जायँ तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह शुभ दिन आएगा!

हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हें-से हृदय में कैसे समातीं !

जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकल कर आकाश पर छाई हुई लालिमा को अपने रजत-प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था और हवा में गरमी आने लगी थी। दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देख कर राम-राम करते और सम्मान-भाव से चिलम पीने का निमंत्रण देते थे, पर होरी को इतना अवकाश कहाँ था? उसके अंदर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पा कर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते-जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं, नहीं उसे कौन पूछता- पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हल वाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।

अब वह खेतों के बीच की पगडंडी छोड़ कर एक खलेटी में आ गया था, जहाँ बरसात में पानी भर जाने के कारण तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नजर आती थी। आस-पास के गाँवों की गउएँ यहाँ चरने आया करती

थीं। उस उमस में भी यहाँ की हवा में कुछ ताजगी और ठंडक थी। होरी ने दो-तीन साँसें जोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं बैठ जाए। दिन-भर तो लू-लपट में मरना है ही। कई किसान इस गड्ढे का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रकम देते थे, पर ईश्वर भला करे रायसाहब का कि उन्होंने साफ कह दिया, यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठाई जायगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता, तो कहता गाएँ जायँ भाड़ में, हमें रुपए मिलते हैं, क्यों छोड़ें, पर रायसाहब अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है?

सहसा उसने देखा, भोला अपनी गाय लिए इसी तरफ चला आ रहा है। भोला इसी गाँव से मिले हुए पुरवे का ग्वाला था और दूध-मक्खन का व्यवसाय करता था। अच्छा दाम मिल जाने पर कभी-कभी किसानों के हाथ गाएँ बेच भी देता था। होरी का मन उन गायों को देख कर ललचा गया। अगर भोला वह आगे वाली गाय उसे दे तो क्या कहना! रुपए आगे-पीछे देता रहेगा। वह जानता था, घर में रुपए नहीं हैं। अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सकाय बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपए का सूद चढ़ रहा है, लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता जो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती, उसने उसे प्रोत्साहित किया। बरसों से जो साध मन को आंदोलित कर रही थी, उसने उसे विचलित कर दिया। भोला के समीप जा कर बोला-राम-राम भोला भाई, कहो क्या रंग-ढंग हैं? सुना अबकी मेले से नई गाएँ लाए हो?

भोला ने रूखाई से जवाब दिया। होरी के मन की बात उसने ताड़ ली थी-हाँ, दो बछिएँ और दो गाएँ लाया। पहले वाली गाएँ सब सूख गई थी। बँधी पर दूध न पहुँचे तो गुजर कैसे हो?

होरी ने आगे वाली गाय के पुट्टे पर हाथ रख कर कहा-दुधार तो मालूम होती है। कितने में ली?

भोला ने शान जमाई-अबकी बाजार तेज रहा महतो, इसके अस्सी रुपए देने पड़े। आँखें निकल गईं। तीस-तीस रुपए तो दोनों कलोरों के दिए। तिस पर गाहक रुपए का आठ सेर दूध माँगता है।

'बड़ा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई, लेकिन फिर लाए भी तो वह माल कि यहाँ दस-पाँच गाँवों में तो किसी के पास निकलेगी नहीं।'

भोला पर नशा चढ़ने लगा। बोला–रायसाहब इसके सौ रुपए देते थे। दोनों कलोरों के पचास–पचास रुपए, लेकिन हमने न दिए। भगवान ने चाहा तो सौ रुपए इसी ब्यान में पीट लूँगा।

'इसमें क्या संदेह है भाई। मालिक क्या खा के लेंगे? नजराने में मिल जाय, तो भले ले लें। यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अंजुली–भर रुपए तकदीर के भरोसे गिन देते हो। यही जी चाहता है कि इसके दरसन करता रहूँ। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गऊओं की इतनी सेवा करते हो! हमें तो गाय का गोबर भी मयस्सर नहीं। गिरस्त के घर में एक गाय भी न हो, तो कितनी लज्जा की बात है। साल–के–साल बीत जाते हैं, गोरस के दरसन नहीं होते। घरवाली बार–बार कहती है, भोला भैया से क्यों नहीं कहते? मैं कह देता हूँ, कभी मिलेंगे तो कहूँगा। तुम्हारे सुभाव से बड़ी परसन रहती है। कहती है, ऐसा मर्द ही नहीं देखा कि जब बातें करेंगे, नीची आँखें करके कभी सिर नहीं उठाते।'

भोला पर जो नशा चढ़ रहा था, उसे इस भरपूर प्याले ने और गहरा कर दिया। बोला–आदमी वही है, जो दूसरों की बहू–बेटी को अपनी बहू–बेटी समझे। जो दुष्ट किसी मेहरिया की ओर ताके, उसे गोली मार देना चाहिए।

'यह तुमने लाख रुपए की बात कह दी भाई! बस सज्जन वही, जो दूसरों की आबरू समझे।'

'जिस तरह मर्द के मर जाने से औरत अनाथ हो जाती है, उसी तरह औरत के मर जाने से मर्द के हाथ–पाँव टूट जाते हैं। मेरा तो घर उजड़ गया महतो, कोई एक लोटा पानी देने वाला भी नहीं।'

गत वर्ष भोला की स्त्री लू लग जाने से मर गई थी। यह होरी जानता था, लेकिन पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से इतना स्निग्ध है, वह न जानता था। स्त्री की लालसा उसकी आँखों में सजल हो गई थी। होरी को आसन मिल गया। उसकी व्यावहारिक कृषक–बुद्धि सजग हो गई।

'पुरानी मसल झूठी थोड़े है–बिन घरनी घर भूत का डेरा। कहीं सगाई क्यों नहीं ठीक कर लेते?'

'ताक में हूँ महतो, पर कोई जल्दी फँसता नहीं। सौ–पचास खरच करने को भी तैयार हूँ। जैसी भगवान की इच्छा।'

'अब मैं भी फिराक में रहूँगा। भगवान चाहेंगे, तो जल्दी घर बस जायगा।'

श्बस, यही समझ लो कि उबर जाऊँगा भैया! घर में खाने को भगवान का दिया बहुत है। चार पसेरी रोज दूध हो जाता है, लेकिन किस काम का?'

श्मेरे ससुराल में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका आदमी उसे छोड़ कर कलकत्ते चला गया। बेचारी पिसाई करके गुजारा कर रही है। बाल-बच्चा भी कोई नहीं। देखने-सुनने में अच्छी है। बस, लच्छमी समझ लो।'

भोला का सिकुड़ा हुआ चेहरा जैसे चिकना गया। आशा में कितनी सुधा है! बोला-अब तो तुम्हारा ही आसरा है महतो! छुट्टी हो, तो चलो एक दिन देख आएँ।

'मैं ठीक-ठाक करके तब तुमसे कहूँगा। बहुत उतावली करने से भी काम बिगड़ जाता है।'

'जब तुम्हारी इच्छा हो तब चलो। उतावली काहे की-इस कबरी पर मन ललचाया हो, तो ले लो।'

'यह गाय मेरे मान की नहीं है दादा। मैं तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। अपना धरम यह नहीं है कि मित्रों का गला दबाएँ। जैसे इतने दिन बीते हैं, वैसे और भी बीत जाएँगे।'

'तुम तो ऐसी बातें करते हो होरी, जैसे हम-तुम दो हैं। तुम गाय ले जाओ, दाम जो चाहे देना। जैसे मेरे घर रही, वैसे तुम्हारे घर रही। अस्सी रुपए में ली थी, तुम अस्सी रुपए ही देना देना। जाओ।'

'लेकिन मेरे पास नगद नहीं है दादा, समझ लो।'

'तो तुमसे नगद माँगता कौन है भाई?'

होरी की छाती गज-भर की हो गई। अस्सी रुपए में गाय महँगी न थी। ऐसा अच्छा डील-डौल, दोनों जून में छः-सात सेर दूध, सीधी ऐसी कि बच्चा भी दुह ले। इसका तो एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा। द्वार पर बँधेगी तो द्वार की शोभा बढ़ जायगी। उसे अभी कोई चार सौ रुपए देने थे, लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ्त समझता था। कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई, तो साल-दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई, तो होरी का क्या बिगड़ता है! यही तो होगा, भोला बार-बार तगादा करने आएगा, बिगड़ेगा, गालियाँ देगा, लेकिन होरी को इसकी ज्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनुकूल न था। अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अंतर न था। सूखे-बूड़े की विपदाएँ उसके मन को भीरु बनाए रहती थीं। ईश्वर का रुद्र रूप सदैव उसके सामने रहता था, पर यह छल उसकी नीति में छल न था। यह केवल स्वार्थ-सिद्धि थी और यह

कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन-रात करता रहता था। घर में दो-चार रुपए पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कसमें खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रूई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज था और यहाँ तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा-सा मनोरंजन भी था। बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे बुड्ढों से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाय, तो कोई दोष-पाप नहीं।

भोला ने गाय की पगहिया होरी के हाथ में देते हुए कहा-ले जाओं महतो, तुम भी क्या याद करोगे। ब्याते ही छः सेर दूध लेना। चलो, मैं तुम्हारे घर तक पहुँचा दूँ। साइत तुम्हें अनजान समझ कर रास्ते में कुछ दिक करे। अब तुमसे सच कहता हूँ, मालिक नब्बे रुपए देते थे, पर उनके यहाँ गऊओं की क्या कदर। मुझसे ले कर किसी हाकिम-हुक्काम को दे देते। हाकिमों को गऊ की सेवा से मतलब? वह तो खून चूसना-भर जानते हैं। जब तक दूध देती, रखते, फिर किसी के हाथ बेच देते। किसके पल्ले पड़ती, कौन जाने। रूपया ही सब कुछ नहीं है भैया, कुछ अपना धरम भी तो है। तुम्हारे घर आराम से रहेगी तो। यह न होगा कि तुम आप खा कर सो रहो और गऊ भूखी खड़ी रहे। उसकी सेवा करोगे, प्यार करोगे, चुमकारोगे। गऊ हमें आसिरवाद देगी। तुमसे क्या कहूँ भैया, घर में चंगुल-भर भी भूसा नहीं रहा। रुपए सब बाजार में निकल गए। सोचा था, महाजन से कुछ ले कर भूसा ले लेंगे, लेकिन महाजन का पहला ही नहीं चुका। उसने इनकार कर दिया। इतने जानवरों को क्या खिलाएँ, यही चिंता मारे डालती है। चुटकी-चुटकी भर खिलाऊँ, तो मन-भर रोज का खरच है। भगवान ही पार लगाएँ तो लगे।

होरी ने सहानुभूति के स्वर में कहा-तुमने हमसे पहले क्यों नहीं कहा-हमने एक गाड़ी भूसा बेच दिया।

भोला ने माथा ठोक कर कहा-इसीलिए नहीं कहा-भैया कि सबसे अपना दुःख क्यों रोऊँ, बाँटता कोई नहीं, हँसते सब हैं। जो गाएँ सूख गई हैं, उनका गम नहीं, पत्ती-सत्ती खिला कर जिला लूँगा, लेकिन अब यह तो रातिब बिना नहीं रह सकती। हो सके, तो दस-बीस रुपए भूसे के लिए दे दो।

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता,

लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

भोला की संकट-कथा सुनते ही उसकी मनोवृत्ति बदल गई। पगहिया को भोला के हाथ में लौटाता हुआ बोला-रुपए तो दादा मेरे पास नहीं हैं। हाँ, थोड़ा-सा भूसा बचा है, वह तुम्हें दूँगा। चल कर उठवा लो। भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे और मैं लूँगा! मेरे हाथ न कट जाएँगे?

भोला ने आर्द्र कंठ से कहा-तुम्हारे बैल भूखों न मरेंगे। तुम्हारे पास भी ऐसा कौन-सा बहुत-सा भूसा रखा है।

'नहीं दादा, अबकी भूसा अच्छा हो गया था।'

'मैंने तुमसे नाहक भूसे की चर्चा की।'

'तुम न कहते और पीछे से मुझे मालूम होता, तो मुझे बड़ा रंज होता कि तुमने मुझे इतना गैर समझ लिया। अवसर पड़ने पर भाई की मदद भाई न करे, तो काम कैसे चले!'

'मुदा यह गाय तो लेते जाओ।'

'अभी नहीं दादा, फिर ले लूँगा।'

'तो भूसे के दाम दूध में कटवा लेना।'

होरी ने दु:खित स्वर में कहा-दाम-कौड़ी की इसमें कौन बात है दादा, मैं एक-दो जून तुम्हारे घर खा लूँ तो तुम मुझसे दाम माँगोगे?

'लेकिन तुम्हारे बैल भूखों मरेंगे कि नही?

श्भगवान कोई-न-कोई सबील निकालेंगे ही। आसाढ़ सिर पर है। कड़वी बो लूँगा।'

'मगर यह गाय तुम्हारी हो गई, जिस दिन इच्छा हो, आ कर ले जाना।'

'किसी भाई का लिलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वह इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।'

होरी में बाल की खाल निकालने की शक्ति होती, तो वह खुशी से गाय ले कर घर की राह लेता। भोला जब नकद रुपए नहीं माँगता, तो स्पष्ट था कि वह भूसे के लिए गाय नहीं बेच रहा है, बल्कि इसका कुछ और आशय है,

लेकिन जैसे पत्तों के खड़कने पर घोड़ा अकारण ही ठिठक जाता है और मारने पर भी आगे कदम नहीं उठाता, वही दशा होरी की थी। संकट की चीज लेना पाप है, यह बात जन्म-जन्मांतरों से उसकी आत्मा का अंश बन गई थी।

भोला ने गदगद कंठ से कहा-तो किसी को भेज दूँ भूसे के लिए?

होरी ने जवाब दिया-अभी मैं रायसाहब की ड्योढ़ी पर जा रहा हूँ। वहाँ से घड़ी-भर में लौटूँगा, तभी किसी को भेजना।

भोला की आँखों में आँसू भर आए। बोला-तुमने आज मुझे उबार लिया होरी भाई! मुझे अब मालूम हुआ कि मैं संसार में अकेला नहीं हूँ। मेरा भी कोई हितू है। एक क्षण के बाद उसने फिर कहा-उस बात को भूल न जाना।

होरी आगे बढ़ा, तो उसका चित्त प्रसन्न था। मन में एक विचित्र स्फूर्ति हो रही थी। क्या हुआ, दस-पाँच मन भूसा चला जायगा, बेचारे को संकट में पड़ कर अपनी गाय तो न बेचनी पड़ेगी। जब मेरे पास चारा हो जायगा तब गाय खोल लाऊँगा। भगवान करें, मुझे कोई मेहरिया मिल जाए। फिर तो कोई बात ही नहीं।

उसने पीछे फिर कर देखा। कबरी गाय पूँछ से मक्खियाँ उड़ाती, सिर हिलाती, मस्तानी, मंद-गति से झूमती चली जाती थी, जैसे बांदियों के बीच में कोई रानी हो। कैसा शुभ होगा वह दिन, जब यह कामधेनु उसके द्वार पर बँधेगी!

आहुति

प्रेमचंद

आनन्द ने गद्देदार कुर्सी पर बैठकर सिगार जलाते हुए कहा-आज विशम्भर ने कैसी हिमाकत की! इम्तहान करीब है और आप आज वालण्टियर बन बैठे। कहीं पकड़ गये, तो इम्तहान से हाथ धोएँगे। मेरा तो ख्याल है कि वजीफा भी बन्द हो जाएगा।

सामने दूसरे बेंच पर रूपमणि बैठी एक अखबार पढ़ रही थी। उसकी आँखें अखबार की तरफ थीं, पर कान आनन्द की तरफ लगे हुए थे। बोली-यह तो बुरा हुआ। तुमने समझाया नहीं? आनन्द ने मुँह बनाकर कहा-जब कोई अपने को दूसरा गाँधी समझने लगे, तो उसे समझाना मुश्किल हो जाता है। वह उलटे मुझे समझाने लगता है।

रूपमणि ने अखबार को समेटकर बालों को सँभालते हुए कहा–तुमने मुझे भी नहीं बताया, शायद मैं उसे रोक सकती।

आनन्द ने कुछ चिढकर कहा–तो अभी क्या हुआ, अभी तो शायद काँग्रेस आफिस ही में हो। जाकर रोक लो।

आनन्द और विशम्भर दोनों ही यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी थे। आनन्द के हिस्से में लक्ष्मी भी पड़ी थी, सरस्वती भी, विशम्भर फूटी तकदीर लेकर आया था। प्रोफेसरों ने दया करके एक छोटा–सा वजीफा दे दिया था। बस, यही उसकी जीविका थी। रूपमणि भी साल भर पहले उन्हीं के समकक्ष थी, पर इस साल उसने कालेज छोड़ दिया था। स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था। दोनों युवक कभी–कभी उससे मिलने आते रहते थे। आनन्द आता था। उसका हृदय लेने के लिए, विशम्भर आता था यों ही। जी पढ़ने में न लगता या घबड़ाता, तो उसके पास आ बैठता था। शायद उससे अपनी विपत्ति–कथा कहकर उसका चित्त कुछ शान्त हो जाता था। आनन्द के सामने कुछ बोलने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी। आनन्द के पास उसके लिए सहानुभूति का एक शब्द भी न था। वह उसे फटकारता था, जलील करता था और बेवकूफ बनाता था। विशम्भर में उससे बहस करने की सामर्थ्य न थी। सूर्य के सामने दीपक की हस्ती ही क्या? आनन्द का उस पर मानसिक आधिपत्य था। जीवन में पहली बार उसने उस आधिपत्य को अस्वीकार किया था और उसी की शिकायत लेकर आनन्द रूपमणि के पास आया था। महीनों विशम्भर ने आनन्द के तर्क पर अपने भीतर के आग्रह को ढाला, पर तर्क से परास्त होकर भी उसका हृदय विद्रोह करता रहा। बेशक उसका यह साल खराब हो जाएगा। सम्भव है, छात्र–जीवन का ही अन्त हो जाए, फिर इस 14–15 वर्षों की मेहनत पर पानी फिर जाएगा न खुदा ही मिलेगा, न सनम का विसाल ही नसीब होगा। आग में कूदने से क्या फायदा। यूनिवर्सिटी में रहकर भी तो बहुत कुछ देश का काम किया जा सकता है। आनन्द महीने में कुछ–न–कुछ चन्दा जमा करा देता है, दूसरे छात्रों से स्वदेशी की प्रतिज्ञा करा ही लेता है। विशम्भर को भी आनन्द ने यही सलाह दी। इस तर्क ने उसकी बुद्धि को तो जीत लिया, पर उसके मन को न जीत सका। आज जब आनन्द कालेज गया तो विशम्भर ने स्वराज्य–भवन की राह ली। आनन्द कालेज से लौटा तो उसे अपनी मेज पर विशम्भर का पत्र मिला। लिखा था–

प्रिय आनन्द,

मैं जानता हूँ कि मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ वह मेरे लिए हितकर नहीं है, पर न जाने कौन-सी शक्ति मुझे खींचे लिये जा रही है। मैं जाना नहीं चाहता, पर जाता हूँ, उसी तरह जैसे आदमी मरना नहीं चाहता, पर मरता है, रोना नहीं चाहता, पर रोता है। जब सभी लोग, जिन पर हमारी भक्ति है, ओखली में अपना सिर डाल चुके थे, तो मेरे लिए भी अब कोई दूसरा मार्ग नहीं है। मैं अब और अपनी आत्मा को धोखा नहीं दे सकता। यह इज्जत का सवाल है और इज्जत किसी तरह का समझौता नहीं कर सकती।

तुम्हारा-'विशम्भर'

खत पढ़कर आनन्द के जी में आया, कि विशम्भर को समझाकर लौटा लाये, पर उसकी हिमाकत पर गुस्सा आया और उसी तैश में वह रूपमणि के पास जा पहुँचा। अगर रूपमणि उसकी खुशामद करके कहती-जाकर उसे लौटा लाओ, तो शायद वह चला जाता, पर उसका यह कहना कि मैं उसे रोक लेती, उसके लिए असह्य था। उसके जवाब में रोष था, रुखाई थी और शायद कुछ हसद भी था।

रूपमणि ने गर्व से उसकी ओर देखा और बोली-अच्छी बात है, मैं जाती हूँ।

एक क्षण के बाद उसने डरते-डरते पूछा-तुम क्यों नहीं चलते?

फिर वही गलती। अगर रूपमणि उसकी खुशामद करके कहती तो आनन्द जरूर उसके साथ चला जाता, पर उसके प्रश्न में पहले ही यह भाव छिपा था, कि आनन्द जाना नहीं चाहता। अभिमानी आनन्द इस तरह नहीं जा सकता। उसने उदासीन भाव से कहा-मेरा जाना व्यर्थ है। तुम्हारी बातों का ज्यादा असर होगा। मेरी मेज पर यह खत छोड़ गया था। जब वह आत्मा और कर्त्तव्य और आदर्श की बड़ी-बड़ी बातें सोच रहा है और अपने को भी कोई ऊँचे दरजे का आदमी समझ रहा है, तो मेरा उस पर कोई असर न होगा।

उसने जेब से पत्र निकालकर रूपमणि के सामने रख दिया। इन शब्दों में जो संकेत और व्यंग्य था, उसने एक क्षण तक रूपमणि को उसकी तरफ देखने न दिया। आनन्द के इस निर्दय प्रहार ने उसे आहत-सा कर दिया था, पर एक ही क्षण में विद्रोह की एक चिनगारी-सी उसके अन्दर जा घुसी। उसने स्वच्छन्द भाव से पत्र को लेकर पढ़ा। पढ़ा सिर्फ आनन्द के प्रहार का जवाब देने के लिए, पर पढ़ते-पढ़ते उसका चेहरा तेज से कठोर हो गया, गरदन तन गयी, आँखों में उत्सर्ग की लाली आ गयी।

उसने मेज पर पत्र रखकर कहा–नहीं, अब मेरा जाना भी व्यर्थ है।

आनन्द ने अपनी विजय पर फूलकर कहा–मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया, इस वक्त उसके सिर पर भूत सवार है, उस पर किसी के समझाने का असर न होगा। जब साल भर जेल में चक्की पीस लेंगे और वहाँ से तपेदिक लेकर निकलेंगे, या पुलिस के डण्डों से सिर और हाथ–पाँव तुड़वा लेंगे, तो बुद्धि ठिकाने आवेगी। अभी तो जय–जयकार और तालियों के स्वप्न देख रहे होंगे।

रूपमणि सामने आकाश की ओर देख रही थी। नीले आकाश में एक छायाचित्र–सा नजर आ रहा था–दुर्बल, सूखा हुआ नग्न शरीर, घुटनों तक धोती, चिकना सिर, पोपला मुँह, तप, त्याग और सत्य की सजीव मूर्ति।

आनन्द ने फिर कहा–अगर मुझे मालूम हो, कि मेरे रक्त से देश का उद्धार हो जाएगा, तो मैं आज उसे देने को तैयार हूँ, लेकिन मेरे जैसे सौ–पचास आदमी निकल ही आएँ, तो क्या होगा? प्राण देने के सिवा और तो कोई प्रत्यक्ष फल नहीं दीखता।

रूपमणि अब भी वही छायाचित्र देख रही थी। वही छाया मुस्करा रही थी, सरल मनोहर मुस्कान, जिसने विश्व को जीत लिया है।

आनन्द फिर बोला–जिन महाशयों को परीक्षा का भूत सताया करता है, उन्हें देश का उद्धार करने की सूझती है। पूछिए, आप अपना उद्धार तो कर ही नहीं सकते, देश का क्या उद्धार कीजिएगा? इधर फेल होने से उधर के डण्डे फिर भी हलके हैं।

रूपमणि की आँखें आकाश की ओर थीं। छायाचित्र कठोर हो गया था।

आनन्द ने जैसे चौंककर कहा–हाँ, आज बड़ी मजेदार फिल्म है। चलती हो? पहले शो में लौट आएँ।

रूपमणि ने जैसे आकाश से नीचे उतरकर कहा–नहीं, मेरा जी नहीं चाहता।

आनन्द ने धीरे से उसका हाथ पकड़कर कहा–तबीयत तो अच्छी है? रूपमणि ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा न की। बोली–हाँ, तबीयत में हुआ क्या है?

'तो चलती क्यों नहीं?'

'आज जी नहीं चाहता।'

'तो फिर मैं भी न जाऊँगा।'

'बहुत ही उत्तम, टिकट के रुपये काँग्रेस को दे दो।'

'यह तो टेढ़ी शर्त है, लेकिन मंजूर!'

'कल रसीद मुझे दिखा देना।'

'तुम्हें मुझ पर इतना विश्वास नहीं?'

आनन्द होस्टल चला। जरा देर बाद रूपमणि स्वराज्य-भवन की ओर चली।

2 रूपमणि स्वराज्य-भवन पहुँची, तो स्वयंसेवकों का एक दल विलायती कपड़े के गोदामों को पिकेट करने जा रहा था। विशम्भर दल में न था।

दूसरा दल शराब की दूकानों पर जाने को तैयार खड़ा था। विशम्भर इसमें भी न था।

रूपमणि ने मन्त्री के पास आकर कहा-आप बता सकते हैं, विशम्भर नाथ कहाँ हैं?

मन्त्री ने पूछा-वही, जो आज भरती हुए हैं?

'जी हाँ, वही।'

'बड़ा दिलेर आदमी है। देहातों को तैयार करने का काम लिया है। स्टेशन पहुँच गया होगा। सात बजे की गाड़ी से जा रहा है।'

'तो अभी स्टेशन पर होंगे।'

मन्त्री ने घड़ी पर नजर डालकर जवाब दिया-हाँ, अभी तो शायद स्टेशन पर मिल जाएँ।

रूपमणि ने बाहर निकलकर साइकिल तेज की। स्टेशन पर पहुँची, तो देखा, विशम्भर प्लेटफार्म पर खड़ा है।

रूपमणि को देखते ही लपककर उसके पास आया और बोला-तुम यहाँ कैसे आयी। आज आनन्द से तुम्हारी मुलाकात हुई थी?

रूपमणि ने उसे सिर से पाँव तक देखकर कहा-यह तुमने क्या सूरत बना रखी है? क्या पाँव में जूता पहनना भी देशद्रोह है?

विशम्भर ने डरते-डरते पूछा-आनन्द बाबू ने तुमसे कुछ कहा नहीं?

रूपमणि ने स्वर को कठोर बनाकर कहा-जी हाँ, कहा। तुम्हें यह क्या सूझी? दो साल से कम के लिए न जाओगे!

विशम्भर का मुँह गिर गया। बोला-जब यह जानती हो, तो क्या तुम्हारे पास मेरी हिम्मत बाँधने के लिए दो शब्द नहीं हैं?

रूपमणि का हृदय मसोस उठाय मगर बाहरी उपेक्षा को न त्याग सकी। बोली-तुम मुझे दुश्मन समझते हो, या दोस्त।

विशम्भर ने आँखों में आँसू भरकर कहा-तुम ऐसा प्रश्न क्यों करती हो रूपमणि? इसका जवाब मेरे मुँह से न सुनकर भी क्या तुम नहीं समझ सकतीं?

रूपमणि-तो मैं कहती हूँ, तुम मत जाओ।

विशम्भर–यह दोस्त की सलाह नहीं है। रूपमणि! मुझे विश्वास है, तुम हृदय से यह नहीं कह रही हो। मेरे प्राणों का क्या मूल्य है, जरा यह सोचो। एम. ए. होकर भी सौ रुपये की नौकरी। बहुत बढ़ा तो तीन–चार सौ तक जाऊँगा। इसके बदले यहाँ क्या मिलेगा, जानती हो? सम्पूर्ण देश का स्वराज्य। इतने महान् हेतु के लिए मर जाना भी उस जिन्दगी से कहीं बढ़कर है। अब जाओ, गाड़ी आ रही है। आनन्द बाबू से कहना, मुझसे नाराज न हों।

रूपमणि ने आज तक इस मन्दबुद्धि युवक पर दया की थी। इस समय उसकी श्रद्धा का पात्र बन गया। त्याग में हृदय को खींचने की जो शक्ति है, उसने रूपमणि को इतने वेग से खींचा कि परिस्थितियों का अन्तर मिट–सा गया। विशम्भर में जितने दोष थे, वे सभी अलंकार बन–बनकर चमक उठे। उसके हृदय की विशालता में वह किसी पक्षी की भाँति उड़–उडकर आश्रय खोजने लगी।

रूपमणि ने उसकी ओर आतुर नेत्रों से देखकर कहा–मुझे भी अपने साथ लेते चलो।

विशम्भर पर जैसे घड़ों का नशा चढ़ गया।

'तुमको? आनन्द बाबू मुझे जिन्दा न छोड़ेंगे!'

'मैं आनन्द के हाथों बिकी नहीं हूँ!'

'आनन्द तो तुम्हारे हाथों बिके हुए हैं?'

रूपमणि ने विद्रोह भरी आँखों से उसकी ओर देखा, पर कुछ बोली नहीं। परिस्थितियाँ उसे इस समय बाधाओं–सी मालूम हो रही थीं। वह भी विशम्भर की भाँति स्वच्छ क्यों न हुई? सम्पन्न माँ–बाप की अकेली लडकी, भोग–विलास में पली हुई, इस समय अपने को कैदी समझ रही थी। उसकी आत्मा उन बन्धनों को तोड़ डालने के लिए जोर लगाने लगी।

गाड़ी आ गयी। मुसाफिर चढ़ने–उतरने लगे। रूपमणि ने सजल नेत्रों से कहा–तुम मुझे नहीं ले चलोगे?

विशम्भर ने दृढ़ता से कहा–नहीं।

'क्यों?'

'मैं इसका जवाब नहीं देना चाहता!'

'क्या तुम समझते हो, मैं इतनी विलासासक्त हूँ कि मैं देहात में रह नहीं सकती?'

विशम्भर लज्जित हो गया। यह भी एक बड़ा कारण था, पर उसने इनकार किया–नहीं, यह बात नहीं।

'फिर क्या बात है? क्या यह भय है, पिताजी मुझे त्याग देंगे?'

'अगर यह भय हो तो क्या वह विचार करने योग्य नहीं?'

'मैं उनकी तृण बराबर परवा नहीं करती।'

विशम्भर ने देखा, रूपमणि के चाँद–से मुख पर गर्वमय संकल्प का आभास था। वह उस संकल्प के सामने जैसे काँप उठा। बोला–मेरी यह याचना स्वीकर करो, रूपमणि, मैं तुमसे विनती करता हूँ।

रूपमणि सोचती रही।

विशम्भर ने फिर कहा–मेरी खातिर तुम्हें यह विचार छोड़ना पड़ेगा।

रूपमणि ने सिर झुकाकर कहा–अगर तुम्हारा यह आदेश है, तो मैं मानूँगी विशम्भर! तुम दिल से समझते हो, मैं क्षणिक आवेश में आकर इस समय अपने भविष्य को गारत करने जा रही हूँ। मैं तुम्हें दिखा दूँगी, यह मेरा क्षणिक आवेश नहीं है, दृढ़ संकल्प है। जाओ, मगर मेरी इतनी बात मानना कि कानून के पंजे में उसी वक्त आना, जब आत्माभिमान या सिद्धान्त पर चोट लगती हो। मैं ईश्वर से तुम्हारे लिए प्रार्थना करती रहूँगी।

गाड़ी ने सीटी दी। विशम्भर अन्दर जा बैठा। गाड़ी चली, रूपमणि मानो विश्व की सम्पत्ति अंचल में लिये खड़ी रही।

3 रूपमणि के पास विशम्भर का एक पुराना रद्दी–सा फोटो आलमारी के एक कोने में पड़ा हुआ था। आज स्टेशन से आकर उसने उसे निकाला और उसे एक मखमली फ्रेम में लगाकर मेज पर रख दिया। आनन्द का फोटो वहाँ से हटा दिया गया।

विशम्भर ने छुट्टियों में उसे दो–चार पत्र लिखे थे। रूपमणि ने उन्हें पढ़कर एक किनारे डाल दिया था। आज उसने उन पत्रों को निकाला और उन्हें दोबारा पढ़ा। उन पत्रों में आज कितना रस था। वह बड़ी हिफाजत से राइटिंग–बाक्स में बन्द कर दिये गये।

दूसरे दिन समाचारपत्र आया तो रूपमणि उस पर टूट पड़ी। विशम्भर का नाम देखकर वह गर्व से फूल उठी।

दिन में एक बार स्वराज्य–भवन जाना उनका नियम हो गया। जलसों में भी बराबर शरीक होती, विलास की चीजें एक–एक करके सब फेंक दी गयीं। रेशमी साड़ियों की जगह गाढ़े की साड़ियाँ आयीं। चरखा भी आया। वह घण्टों

बैठी सूत काता करती। उसका सूत दिन-दिन बारीक होता जाता था। इसी सूत से वह विशम्भर के कुरते बनवाएगी।

इन दिनों परीक्षा की तैयारियाँ थीं। आनन्द को सिर उठाने की फुरसत न मिलती। दो-एक बार वह रूपमणि के पास आया, पर ज्यादा देर बैठा नहीं शायद रूपमणि की शिथिलता ने उसे ज्यादा बैठने ही न दिया।

एक महीना बीत गया।

एक दिन शाम आनन्द आया। रूपमणि स्वराज्य-भवन जाने को तैयार थी। आनन्द ने भवें सिकोडकर कहा-तुमसे तो अब बातें भी मुश्किल हैं।

रूपमणि ने कुर्सी पर बैठकर कहा-तुम्हें भी तो किताबों से छुट्टी नहीं मिलती। आज की कुछ ताजी खबर नहीं मिली। स्वराज्य-भवन में रोज-रोज का हाल मालूम हो जाता है।

आनन्द ने दार्शनिक उदासीनता से कहा-विशम्भर ने तो सुना, देहातों में खूब शोरगुल मचा रखा है। जो काम उसके लायक था, वह मिल गया। यहाँ उसकी जबान बन्द रहती थी। वहाँ देहातियों में खूब गरजता होगा, मगर आदमी दिलेर है।

रूपमणि ने उसकी ओर ऐसी आँखों से देखाय, जो कह रही थीं, तुम्हारे लिए यह चर्चा अनधिकार चेष्टा है और बोली-आदमी में अगर यह गुण है तो फिर उसके सारे अवगुण मिट जाते हैं। तुम्हें काँग्रेस बुलेटिन पढ़ने की क्यों फुरसत मिलती होगी। विशम्भर ने देहातों में ऐसी जागृति फैला दी है कि विलायती का एक सूत भी नहीं बिकने पाता और न नशे की दूकानों पर कोई जाता है और मजा यह है कि पिकेटिंग करने की जरूरत नहीं पड़ती। अब तो पंचायतें खोल रहे हैं।

आनन्द ने उपेक्षा भाव से कहा-तो समझ लो, अब उनके चलने के दिन भी आ गये हैं।

रूपमणि ने जोश से कहा-इतना करके जाना बहुत सस्ता नहीं है। कल तो किसानों का एक बहुत बड़ा जलसा होने वाला था। पूरे परगने के लोग जमा हुए होंगे। सुना है, आजकल देहातों से कोई मुकदमा ही नहीं आता। वकीलों की नानी मरी जा रही है।

आनन्द ने कड़वेपन से कहा-यही तो स्वराज्य का मजा है कि जमींदार, वकील और व्यापारी सब मरें। बस, केवल मजदूर और किसान रह जाएँ।

रूपमणि ने समझ लिया, आज आनन्द तुलकर आया है। उसने भी जैसे आस्तीन चढ़ाते हुए कहा–तो तुम क्या चाहते हो कि जमींदार और वकील और व्यापारी गरीबों को चूस–चूसकर मोटे होते जाएँ और जिन सामाजिक व्यवस्थाओं में ऐसा महान् अन्याय हो रहा है, उनके खिलाफ जबान तक न खोली जाए? तुम तो समाजशास्त्र के पण्डित हो। क्या किसी अर्थ में यह व्यवस्था आदर्श कही जा सकती है? सभ्यता के तीन मुख्य सिद्धान्तों का ऐसी दशा में किसी न्यूनतम मात्रा में भी व्यवहार हो सकता है?

आनन्द ने गर्म होकर कहा–शिक्षा और सम्पत्ति का प्रभुत्व हमेशा रहा है और हमेशा रहेगा। हाँ, उसका रूप भले ही बदल जाए।

रूपमणि ने आवेश से कहा–अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा–लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे, तो मैं कहूँगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा। अंग्रेजी महाजनों की धनलोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है, जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिये हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं? कम–से–कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जाएँ। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ, जहाँ कम–से–कम विषमता को आश्रय न मिल सके।

आनन्द–यह तुम्हारी निज की कल्पना होगी।

रूपमणि–तुमने अभी इस आन्दोलन का साहित्य पढ़ा ही नहीं।

आनन्द–न पढ़ा है, न पढना चाहता हूँ।

रूपमणि–इससे राष्ट्र की कोई बड़ी हानि न होगी।

आनन्द–तुम तो जैसे वह रही ही नहीं। बिलकुल काया–पलट हो गयी।

सहसा डाकिए ने काँग्रेस बुलेटिन लाकर मेज पर रख दिया। रूपमणि ने अधीर होकर उसे खोला। पहले शीर्षक पर नजर पड़ते ही उसकी आँखों में जैसे नशा छा गया। अज्ञात रूप से गर्दन तन गयी और चेहरा एक अलौकिक तेज से दमक उठा।

उसने आवेश में खड़ी होकर कहा–विशम्भर पकड़ लिए गये और दो साल की सजा हो गयी।

आनन्द ने विरक्त मन से पूछा–किस मुआमले में सजा हुई?

रूपमणि ने विशम्भर के फोटो को अभिमान की आँखों से देखकर कहा–रानीगंज में किसानों की विराट् सभा थी। वहीं पकड़ा है।

आनन्द-मैंने तो पहले ही कहा था, दो साल के लिए जाएँगे, जिन्दगी खराब कर डाली।

रूपमणि ने फटकार बतायी-क्या डिग्री ले लेने से ही आदमी का जीवन सफल हो जाता है? सारा ज्ञान, सारा अनुभव पुस्तकों ही में भरा हुआ है। मैं समझती हूँ, संसार और मानवी चरित्र का जितना अनुभव विशम्भर को दो सालों में हो जाएगा, उतना दर्शन और कानून की पोथियों से तुम्हें दो सौ वर्षों में भी न होगा। अगर शिक्षा का उद्देश्य चरित्रबल मानो, तो राष्ट्र-संग्राम में मनोबल के जितने साधन हैं, पेट के संग्राम में कभी हो ही नहीं सकते। तुम यह कह सकते हो कि हमारे लिए पेट की चिन्ता ही बहुत है, हमसे और कुछ हो ही नहीं सकता, हममें न उतना साहस है, न बल है, न धैर्य है, न संगठन, तो मैं मान जाऊँगी, लेकिन जातिहित के लिए प्राण देने वालों को बेवकूफ बनाना मुझसे नहीं सहा जा सकता। विशम्भर के इशारे पर आज लाखों आदमी सीना खोलकर खड़े हो जाएँगे। तुममें है जनता के सामने खड़े होने का हौसला? जिन लोगों ने तुम्हें पैरों के नीचे कुचल रखा है, जो तुम्हें कुत्तों से भी नीचे समझते हैं, उन्हीं की गुलामी करने के लिए तुम डिग्रियों पर जान दे रहे हो। तुम इसे अपने लिए गौरव की बात समझो, मैं नहीं समझती।

आनन्द तिलमिला उठा। बोला-तुम तो पक्की क्रान्तिकारिणी हो गयीं इस वक्त।

रूपमणि ने उसी आवेश में कहा-अगर सच्ची-खरी बातों में तुम्हें क्रान्ति की गन्ध मिले, तो मेरा दोष नहीं।

'आज विशम्भर को बधाई देने के लिए जलसा जरूर होगा। क्या तुम उसमें जाओगी?'

रूपमणि ने उग्रभाव से कहा-जरूर जाऊँगी, बोलूँगी भी और कल रानीगंज भी चली जाऊँगी। विशम्भर ने जो दीपक जलाया है, वह मेरे जीते-जी बुझने न पाएगा।

आनन्द ने डूबते हुए आदमी की तरह तिनके का सहारा लिया-अपनी अम्माँ और दादा से पूछ लिया है?

'पूछ लूँगी!'

और वह तुम्हें अनुमति भी दे देंगे?'

सिद्धान्त के विषय में अपनी आत्मा का आदेश सर्वोपरि होता है।'

'अच्छा, यह नयी बात मालूम हुई।'

यह कहता हुआ आनन्द उठ खड़ा हुआ और बिना हाथ मिलाये कमरे के बाहर निकल गया। उसके पैर इस तरह लडखड़ा रहे थे, कि अब गिरा, अब गिरा।

कश्मीरी सेब

प्रेमचंद

कल शाम को चौक में दो-चार जरूरी चीजें खरीदने गया था। पंजाबी मेवाफरोशों की दूकानें रास्ते ही में पड़ती हैं। एक दूकान पर बहुत अच्छे रंगदार,गुलाबी सेब सजे हुए नजर आये। जी ललचा उठा। आजकल शिक्षित समाज में विटामिन और प्रोटीन के शब्दों में विचार करने की प्रवृत्ति हो गई है। टमाटो को पहले कोई सेंत में भी न पूछता था। अब टमाटो भोजन का आवश्यक अंग बन गया है। गाजर भी पहले गरीबों के पेट भरने की चीज थी। अमीर लोग तो उसका हलवा ही खाते थे, मगर अब पता चला है कि गाजर में भी बहुत विटामिन हैं, इसलिए गाजर को भी मेजों पर स्थान मिलने लगा है और सेब के विषय में तो यह कहा जाने लगा है कि एक सेब रोज खाइए तो आपको डाक्टरों की जरूरत न रहेगी। डाक्टर से बचने के लिए हम निमकौड़ी तक खाने को तैयार हो सकते हैं। सेब तो रस और स्वाद में अगर आम से बढ़कर नहीं है तो घटकर भी नहीं। हाँ, बनारस के लंगड़े और लखनऊ के दसहरी और बम्बई के अल्फाँसो की बात दूसरी है। उनके टक्कर का फल तो संसार में दूसरा नहीं है, मगर उनमें विटामिन और प्रोटीन है या नहीं, है तो काफी है या नहीं, इन विषयों पर अभी किसी पश्चिमी डाक्टर की व्यवस्था देखने में नहीं आयी। सेब को यह व्यवस्था मिल चुकी है। अब वह केवल स्वाद की चीज नहीं है, उसमें गुण भी है। हमने दूकानदार से मोल-भाव किया और आध सेर सेब माँगे।

दुकानदार ने कहा-बाबूजी बड़े मजेदार सेब आये हैं, खास कश्मीर के। आप ले जाएँ, खाकर तबीयत खुश हो जाएगी।

मैंने रूमाल निकालकर उसे देते हुए कहा-चुन-चुनकर रखना।

दूकानदार ने तराजू उठाई और अपने नौकर से बोला-लौंडे आध सेर कश्मीरी सेब निकाल ला। चुनकर लाना।

लौंडा चार सेब लाया। दूकानदार ने तौला, एक लिफाफे में उन्हें रखा और रूमाल में बाँधकर मुझे दे दिया। मैंने चार आने उसके हाथ में रखे।

घर आकर लिफाफा ज्यों-का-त्यों रख दिया। रात को सेब या कोई दूसरा फल खाने का कायदा नहीं है। फल खाने का समय तो प्रातःकाल है। आज सुबह मुँह-हाथ धोकर जो नाश्ता करने के लिए एक सेब निकाला, तो सड़ा हुआ था। एक रुपये के आकार का छिलका गल गया था। समझा, रात को दूकानदार ने देखा न होगा। दूसरा निकाला। मगर यह आधा सड़ा हुआ था। अब सन्देह हुआ, दुकानदार ने मुझे धोखा तो नहीं दिया है। तीसरा सेब निकाला। यह सड़ा तो न था, मगर एक तरफ दबकर बिल्कुल पिचक गया। चौथा देखा। वह यों तो बेदाग था, मगर उसमें एक काला सूराख था जैसा अक्सर बेरों में होता है। काटा तो भीतर वैसे ही धब्बे, जैसे किड़हे बेर में होते हैं। एक सेब भी खाने लायक नहीं। चार आने पैसों का इतना गम न हुआ जितना समाज के इस चारित्रिक पतन का। दूकानदार ने जान-बूझकर मेरे साथ धोखेबाजी का व्यवहार किया। एक सेब सड़ा हुआ होता, तो मैं उसको क्षमा के योग्य समझता। सोचता, उसकी निगाह न पड़ी होगी। मगर चार-के-चारों खराब निकल जाएँ, यह तो साफ धोखा है। मगर इस धोखे में मेरा भी सहयोग था। मेरा उसके हाथ में रूमाल रख देना मानो उसे धोखा देने की प्रेरणा थी। उसने भाँप लिया कि महाशय अपनी आँखों से काम लेने वाले जीव नहीं हैं और न इतने चौकस हैं कि घर से लौटाने आएँ।

आदमी बेइमानी तभी करता जब उसे अवसर मिलता है। बेइमानी का अवसर देना, चाहे वह अपने ढीलेपन से हो या सहज विश्वास से, बेइमानी में सहयोग देना है। पढ़े-लिखे बाबुओं और कर्मचारियों पर तो अब कोई विश्वास नहीं करता। किसी थाने या कचहरी या म्यूनिसिपिलटी में चले जाइए, आपकी ऐसी दुर्गति होगी कि आप बड़ी-से-बड़ी हानि उठाकर भी उधर न जाएँगे। व्यापारियों की साख अभी तक बनी हुई थी। यों तौल में चाहे छटाँक-आध-छटाँक कस लें, लेकिन आप उन्हें पाँच की जगह भूल से दस के नोट दे आते थे तो आपको घबड़ाने की कोई जरूरत न थी। आपके रुपये सुरक्षित थे। मुझे याद है, एक बार मैंने मुहर्रम के मेले में एक खोंचे वाले से एक पैसे की रेवडियाँ ली थीं और पैसे की जगह अठन्नी दे आया था। घर आकर जब अपनी भूल मालूम हुई तो खोंचे वाले के पास दौड़ा गया। आशा नहीं थी कि वह अठन्नी लौटाएगा, लेकिन उसने प्रसन्नचित्त से अठन्नी लौटा दी और उलटे मुझसे क्षमा माँगी और यहाँ कश्मीरी सेब के नाम से सड़े हुए सेब बेचे जाते हैं? मुझे आशा है, पाठक बाजार में जाकर मेरी तरह आँखें न बन्द कर लिया करेंगे। नहीं उन्हें भी कश्मीरी सेब ही मिलेंगे

दुनिया का सबसे अनमोल रत्न

प्रेमचंद

दिलफिगार एक कँटीले पेड़ के नीचे दामन चाक किये बैठा हुआ खून के आँसू बहा रहा था। वह सौन्दर्य की देवी यानी मलका दिलफरेब का सच्चा और जान देने वाला प्रेमी था। उन प्रेमियों में नहीं, जो इत्र-फुलेल में बसकर और शानदार कपड़ों से सजकर आशिक के वेश में माशूकियत का दम भरते हैं। बल्कि उन सीधे-सादे भोले-भाले फिदाइयों में जो जंगल और पहाड़ों से सर टकराते हैं और फरियाद मचाते फिरते हैं। दिलफरेब ने उससे कहा था कि अगर तू मेरा सच्चा प्रेमी है, तो जा और दुनिया की सबसे अनमोल चीज लेकर मेरे दरबार में आ तब मैं तुझे अपनी गुलामी में कबूल करूँगी। अगर तुझे वह चीज न मिले तो खबरदार इधर रुख न करना, वर्ना सूली पर खिंचवा दूँगी। दिलफिगार को अपनी भावनाओं के प्रदर्शन का, शिकवे-शिकायत का, प्रेमिका के सौन्दर्य-दर्शन का तनिक भी अवसर न दिया गया। दिलफरेब ने ज्यों ही यह फैसला सुनाया, उसके चोबदारों ने गरीब दिलफिगार को धक्के देकर बाहर निकाल दिया और आज तीन दिन से यह आफत का मारा आदमी उसी कँटीले पेड़ के नीचे उसी भयानक मैदान में बैठा हुआ सोच रहा है कि क्या करूँ। दुनिया की सबसे अनमोल चीज मुझको मिलेगी? नामुमकिन! और वह है क्या? कारूँ का खजाना? आबे हयात? खुसरो का ताज? जामे-जम? तख्तेताऊस? परवेज की दौलत? नहीं, यह चीजें हरगिज नहीं। दुनिया में जरूर इनसे भी महँगी, इनसे भी अनमोल चीजें मौजूद हैं मगर वह क्या हैं। कहाँ हैं? कैसे मिलेंगी? या खुदा, मेरी मुश्किल क्योंकर आसान होगी?

दिलफिगार इन्हीं ख्यालों में चक्कर खा रहा था और अक्ल कुछ काम न करती थी। मुनीर शामी को हातिम-सा मददगार मिल गया। ऐ काश कोई मेरा भी मददगार हो जाता, ऐ काश मुझे भी उस चीज का जो दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज है, नाम बतला दिया जाता! बला से वह चीज हाथ न आती मगर मुझे इतना तो मालूम हो जाता कि वह किस किस्म की चीज है। मैं घड़े बराबर मोती की खोज में जा सकता हूँ। मैं समुन्दर का गीत, पत्थर का दिल, मौत की आवाज और इनसे भी ज्यादा बेनिशान चीजों की तलाश में कमर कस सकता हूँ। मगर दुनिया की सबसे अनमोल चीज! यह मेरी कल्पना की उड़ान से बहुत ऊपर है।

आसमान पर तारे निकल आये थे। दिलफिगार यकायक खुदा का नाम लेकर उठा और एक तरफ को चल खड़ा हुआ। भूखा-प्यासा, नंगे बदन, थकन से चूर, वह बरसों वीरानों और आबादियों की खाक छानता फिरा, तलवे काँटों से छलनी हो गये, शरीर में हड्डियाँ ही हड्डियाँ दिखायी देने लगीं मगर वह चीज जो दुनिया की सबसे बेश-कीमत चीज थी, न मिली और न उसका कुछ निशान मिला।

एक रोज वह भूलता-भटकता एक मैदान में जा निकला, जहाँ हजारों आदमी गोल बाँधे खड़े थे। बीच में कई अमामे और चोगे वाले दढ़ियल काजी अफसरी शान से बैठे हुए आपस में कुछ सलाह-मशविरा कर रहे थे और इस जमात से जरा दूर पर एक सूली खड़ी थी। दिलफिगार कुछ तो कमजोरी की वजह से कुछ यहाँ की कैफियत देखने के इरादे से ठिठक गया। क्या देखता है, कि कई लोग नंगी तलवारें लिये, एक कैदी को जिसके हाथ-पैर में जंजीरें थीं, पकड़े चले आ रहे हैं। सूली के पास पहुँचकर सब सिपाही रुक गये और कैदी की हथकड़ियाँ, बेड़ियाँ सब उतार ली गयीं। इस अभागे आदमी का दामन सैकड़ों बेगुनाहों के खून के छींटों से रंगीन था और उसका दिल नेकी के ख्याल और रहम की आवाज से जरा भी परिचित न था। उसे काला चोर कहते थे। सिपाहियों ने उसे सूली के तख्ते पर खड़ा कर दिया, मौत की फाँसी उसकी गर्दन में डाल दी और जल्लादों ने तख्ता खींचने का इरादा किया कि वह अभागा मुजरिम चीखकर बोला-खुदा के वास्ते मुझे एक पल के लिए फाँसी से उतार दो ताकि अपने दिल की आखिरी आरजू निकाल लूँ। यह सुनते ही चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोग अचम्भे में आकर ताकने लगे। काजियों ने एक मरने वाले आदमी की अंतिम याचना को रद्द करना उचित न समझा और बदनसीब पापी काला चोर जरा देर के लिए फाँसी से उतार लिया गया।

इसी भीड़ में एक खूबसूरत भोला-भोला लड़का एक छड़ी पर सवार होकर अपने पैरों पर उछल-उछल फर्जी घोड़ा दौड़ा रहा था और अपनी सादगी की दुनिया में ऐसा मगन था कि जैसे वह इस वक्त सचमुच किसी अरबी घोड़े का शहसवार है। उसका चेहरा उस सच्ची खुशी से कमल की तरह खिला हुआ था जो चन्द दिनों के लिए बचपन ही में हासिल होती है और जिसकी याद हमको मरते दम तक नहीं भूलती। उसका दिल अभी तक पाप की गर्द और धूल से अछूता था और मासूमियत उसे अपनी गोद में खिला रही थी।

बदनसीब काला चोर फाँसी से उतरा। हजारों आँखें उस पर गड़ी हुई थीं। वह उस लड़के के पास आया और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगा। उसे इस वक्त वह जमाना याद आया जब वह खुद ऐसा ही भोला-भाला, ऐसा ही खुश-व-खुर्रम और दुनिया की गन्दगियों से ऐसा ही पाक साफ था। माँ गोदियों में खिलाती थी, बाप बलाएँ लेता था और सारा कुनबा जान न्योछावर करता था। आह! काले चोर के दिल पर इस वक्त बीते हुए दिनों की याद का इतना असर हुआ कि उसकी आँखों से, जिन्होंने दम तोड़ती हुई लाशों को तड़पते देखा और न झपकीं, आँसू का एक कतरा टपक पड़ा। दिलफिगार ने लपककर उस अनमोल मोती को हाथ में ले लिया और उसके दिल ने कहा-बेशक यह दुनिया की सबसे अनमोल चीज है जिस पर तख्ते ताऊस और जामेजम और आबे हयात और जरे परवेज सब न्योछावर हैं।

इस ख्याल से खुश होता कामयाबी की उम्मीद में सरमस्त, दिलफिगार अपनी माशूका दिलफरेब के शहर मीनोसवाद को चला। मगर ज्यो-ज्यों मंजिलें तय होती जाती थीं उसका दिल बैठ जाता था कि कहीं उस चीज की, जिसे मैं दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज समझता हूँ, दिलफरेब की आँखों में कद्र न हुई तो मैं फाँसी पर चढ़ा दिया जाऊँगा और इस दुनिया से नामुराद जाऊँगा। लेकिन जो हो सो हो, अब तो किस्मत-आजमाई है। आखिरकार पहाड़ और दरिया तय करते शहर मीनोसवाद में आ पहुँचा और दिलफरेब की ड्योढ़ी पर जाकर विनती की कि थकान से टूटा हुआ दिलफिगार खुदा के फजल से हुक्म की तामील करके आया है और आपके कदम चूमना चाहता है। दिलफरेब ने फौरन अपने सामने बुला भेजा और एक सुनहरे परदे की ओट से फरमाइश की कि वह अनमोल चीज पेश करो। दिलफिगार ने आशा और भय की एक विचित्र मन:स्थिति में वह बूँद पेश की और उसकी सारी कैफियत बहुत पुरअसर लफ्जों में बयान की। दिलफरेब ने पूरी कहानी बहुत गौर से सुनी और वह भेंट हाथ में लेकर जरा देर तक गौर करने के बाद बोली-दिलफिगार, बेशक तूने दुनिया की एक बेशकीमत चीज ढूँढ़ निकाली, तेरी हिम्मत और तेरी सूझबूझ की दाद देती हूँ! मगर यह दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज नहीं, इसलिए तू यहाँ से जा और फिर कोशिश कर, शायद अब की तेरे हाथ वह मोती लगे और तेरी किस्मत में मेरी गुलामी लिखी हो। जैसा कि मैंने पहले ही बतला दिया था मैं तुझे फाँसी पर चढ़वा सकती हूँ मगर मैं तेरी जाँबख्शी करती हूँ इसलिए

कि तुझमें वह गुण मौजूद हैं, जो मैं अपने प्रेमी में देखना चाहती हूँ और मुझे यकीन है कि तू जरूर कभी-न-कभी कामयाब होगा।

नाकाम और नामुराद दिलफिगार इस माशूकाना इनायत से जरा दिलेर होकर बोला-ऐ दिल की रानी, बड़ी मुद्दत के बाद तेरी ड्योढ़ी पर सजदा करना नसीब होता है। फिर खुदा जाने ऐसे दिन कब आएँगे, क्या तू अपने जान देने वाले आशिक के बुरे हाल पर तरस न खाएगी और क्या अपने रूप की एक झलक दिखाकर इस जलते हुए दिलफिगार को आने वाली सख्तियों के झेलने की ताकत न देगी? तेरी एक मस्त निगाह के नशे से चूर होकर मैं वह कर सकता हूँ जो आज तक किसी से न बन पड़ा हो।

दिलफरेब आशिक की यह चाव-भरी बातें सुनकर गुस्सा हो गयी और हुक्म दिया कि इस दीवाने को खड़े-खड़े दरबार से निकाल दो। चोबदार ने फौरन गरीब दिलफिगार को धक्के देकर यार के कूचे से बाहर निकाल दिया।

कुछ देर तक तो दिलफिगार अपनी निष्ठुर प्रेमिका की इस कठोरता पर आँसू बहाता रहा और सोचने लगा कि कहाँ जाऊँ। मुद्दतों रास्ते नापने और जंगलों में भटकने के बाद आँसू की यह बूँद मिली थी, अब ऐसी कौन-सी चीज है जिसकी कीमत इस आबदार मोती से ज्यादा हो। हजरते खिज्र! तुमने सिकन्दर को आबेहयात के कुएँ का रास्ता दिखाया था, क्या मेरी बाँह न पकड़ोगे? सिकन्दर सारी दुनिया का मालिक था। मैं तो एक बेघरबार मुसाफिर हूँ। तुमने कितनी ही डूबती किश्तियाँ किनारे लगायी हैं, मुझ गरीब का बेड़ा भी पार करो। ऐ आलीमुकाम जिबरील! कुछ तुम्ही इस नीमजान, दु:खी आशिक पर तरस खाओ। तुम खुदा के एक खास दरबारी हो, क्या मेरी मुश्किल आसान न करोगे! गरज यह कि दिलफिगार ने बहुत फरियाद मचायी मगर उसका हाथ पकडने के लिए कोई सामने न आया। आखिर निराश होकर वह पागलों की तरह दुबारा एक तरफ को चल खड़ा हुआ।

दिलफिगार ने पूरब से पच्छिम तक और उत्तर से दक्खिन तक कितने ही जंगलों और वीरानों की खाक छानी, कभी बर्फिस्तानी चोटियों पर सोया, कभी डरावनी घाटियों में भटकता फिरा मगर जिस चीज की धुन थी वह न मिली, यहाँ तक कि उसका शरीर हड्डियों का एक ढाँचा रह गया।

एक रोज वह शाम के वक्त किसी नदी के किनारे खस्ताहाल पड़ा हुआ था। बेखुदी के नशे से चौंका तो क्या देखता है कि चन्दन की एक चिता बनी हुई है और उस पर एक युवती सुहाग के जोड़े पहने सोलहों सिंगार किये बैठी

हुई है। उसकी जाँघ पर उसके प्यारे पति का सर है। हजारों आदमी गोल बाँधे खड़े हैं और फूलों की बरखा कर रहे हैं। यकायक चिता में से खुद-ब-खुद एक लपट उठी। सती का चेहरा उस वक्त एक पवित्र भाव से आलोकित हो रहा था। चिता की पवित्र लपटें उसके गले से लिपट गयीं और दम-के-दम में वह फूल-सा शरीर राख का ढेर हो गया। प्रेमिका ने अपने को प्रेमी पर न्योछावर कर दिया और दो प्रेमियों के सच्चे, पवित्र, अमर प्रेम की अन्तिम लीला आँख से ओझल हो गयी। जब सब लोग अपने घरों को लौटे तो दिलफिगार चुपके से उठा और अपने चाक-दामन कुरते में यह राख का ढेर समेट लिया और इस मुट्ठी भर राख को दुनिया की सबसे अनमोल चीज समझता हुआ, सफलता के नशे में चूर, यार के कूचे की तरफ चला। अबकी ज्यों-ज्यों वह अपनी मंजिल के करीब आता था, उसकी हिम्मतें बढ़ती जाती थीं। कोई उसके दिल में बैठा हुआ कह रहा था-अबकी तेरी जीत है और इस ख्याल ने उसके दिल को जो-जो सपने दिखाए उनकी चर्चा व्यर्थ है। आखकिार वह शहर मीनोसवाद में दाखिल हुआ और दिलफरेब की ऊँची ड्योढ़ी पर जाकर खबर दी कि दिलफिगार सुर्ख-रू होकर लौटा है और हुजूर के सामने आना चाहता है। दिलफरेब ने जाँबाज आशिक को फौरन दरबार में बुलाया और उस चीज के लिए, जो दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज थी, हाथ फैला दिया। दिलफिगार ने हिम्मत करके उसकी चाँदी जैसी कलाई को चूम लिया और मुठ्ठी भर राख को उसकी हथेली में रखकर सारी कैफियत दिल को पिघला देने वाले लफ्जों में कह सुनायी और सुन्दर प्रेमिका के होठों से अपनी किस्मत का मुबारक फैसला सुनने के लिए इन्तजार करने लगा। दिलफरेब ने उस मुठ्ठी भर राख को आँखों से लगा लिया और कुछ देर तक विचारों के सागर में डूबे रहने के बाद बोली-ऐ जान निछावर करने वाले आशिक दिलफिगार! बेशक यह राख जो तू लाया है, जिसमें लोहे को सोना कर देने की सिफत है, दुनिया की बहुत बेशकीमत चीज है और मैं सच्चे दिल से तेरी एहसानमन्द हूँ कि तूने ऐसी अनमोल भेंट मुझे दी। मगर दुनिया में इससे भी ज्यादा अनमोल कोई चीज है, जा उसे तलाश कर और तब मेरे पास आ। मैं तहेदिल से दुआ करती हूँ कि खुदा तुझे कामयाब करे। यह कहकर वह सुनहरे परदे से बाहर आयी और माशूकाना अदा से अपने रूप का जलवा दिखाकर फिर नजरों से ओझल हो गयी। एक बिजली थी कि कौंधी और फिर बादलों के परदे में छिप गयी। अभी दिलफिगार के होश-हवास ठिकाने पर न आने पाये थे कि चोबदार ने मुलायमियत से उसका हाथ पकड़कर यार के कूचे

से उसको निकाल दिया और फिर तीसरी बार वह प्रेम का पुजारी निराशा के अथाह समुन्दर में गोता खाने लगा।

दिलफिगार का हियाव छूट गया। उसे यकीन हो गया कि मैं दुनिया में इसी तरह नाशाद और नामुराद मर जाने के लिए पैदा किया गया था और अब इसके सिवा और कोई चारा नहीं कि किसी पहाड़ पर चढकर नीचे कूद पड़ूँ, ताकि माशूक के जुल्मों की फरियाद करने के लिए एक हड्डी भी बाकी न रहे। वह दीवाने की तरह उठा और गिरता-पड़ता एक गगनचुम्बी पहाड़ की चोटी पर जा पहुँचा। किसी और समय वह ऐसे ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने का साहस न कर सकता था मगर इस वक्त जान देने के जोश में उसे वह पहाड़ एक मामूली टेकरी से ज्यादा ऊँचा न नजर आया। करीब था कि वह नीचे कूद पड़े कि हरे-हरे कपड़े पहने हुए और हरा अमामा बाँधे एक बुजुर्ग एक हाथ में तसबीह और दूसरे हाथ में लाठी लिये बरामद हुए और हिम्मत बढ़ाने वाले स्वर में बोले-दिलफिगार, नादान दिलफिगार, यह क्या बुजदिलों जैसी हरकत है! तू मुहब्बत का दावा करता है और तुझे इतनी भी खबर नहीं कि मजबूत इरादा मुहब्बत के रास्ते की पहली मंजिल है? मर्द बन और यों हिम्मत न हार। पूरब की तरफ एक देश है जिसका नाम हिन्दोस्तान है, वहाँ जा और तेरी आरजू पूरी होगी।

यह कहकर हजरते खिज्र गायब हो गये। दिलफिगार ने शुक्रिये की नमाज अदा की और ताजा हौसले, ताजा जोश और अलौकिक सहायता का सहारा पाकर खुश-खुश पहाड़ से उतरा और हिन्दोस्तान की तरफ चल पड़ा।

मुद्दतों तक काँटों से भरे हुए जंगलों, आग बरसाने वाले रेगिस्तानों, कठिन घाटियों और अलंय पर्वतों को तय करने के बाद दिलफिगार हिन्द की पाक सरजमीन में दाखिल हुआ और एक ठण्डे पानी के सोते में सफर की तकलीफें धोकर थकान के मारे नदी के किनारे लेट गया। शाम होते-होते वह एक चटियल मैदान में पहुँचा जहाँ बेशुमार अधमरी और बेजान लाशें बिना कफन के पड़ी हुई थीं। चील-कौए और वहशी दरिन्दे मरे पड़े हुए थे और सारा मैदान खून से लाल हो रहा था। यह डरावना दृश्य देखते ही दिलफिगार का जी दहल गया। या खुदा, किस मुसीबत में जान फँसी, मरने वालों का कराहना, सिसकना और एड़ियाँ रगड़कर जान देना, दरिन्दों का हड्डियों को नोचना और गोश्त के लोथड़ों को लेकर भागना, ऐसा हौलनाक सीन दिलफिगार ने कभी न देखा था। यकायक उसे ख्याल आया, यह लड़ाई का मैदान है और यह लाशें सूरमा सिपाहियों की हैं। इतने में करीब से कराहने की आवाज आयी। दिलफिगार उस तरफ फिरा तो

देखा कि एक लम्बा-तड़ंगा आदमी, जिसका मर्दाना चेहरा जान निकालने की कमजोरी से पीला हो गया है, जमीन पर सर झुकाये पड़ा हुआ है। सीने से खून का फौव्वारा जारी है, मगर आबदार तलवार की मूठ पंजे से अलग नहीं हुई। दिलफिगार ने एक चीथड़ा लेकर घाव के मुँह पर रख दिया ताकि खून रुक जाए और बोला-ऐ जवाँमर्द, तू कौन है? जवाँमर्द ने यह सुनकर आँखें खोलीं और वीरों की तरह बोला-क्या तू नहीं जानता मैं कौन हूँ, क्या तूने आज इस तलवार की काट नहीं देखी? मैं अपनी माँ का बेटा और भारत का सपूत हूँ। यह कहते-कहते उसकी त्योरियों पर बल पड़ गये। पीला चेहरा गुस्से से लाल हो गया और आबदार शमशीर फिर अपना जौहर दिखाने के लिए चमक उठी। दिलफिगार समझ गया कि यह इस वक्त मुझे दुश्मन समझ रहा है, नरमी से बोला-ऐ जवाँमर्द, मैं तेरा दुश्मन नहीं हूँ। अपने वतन से निकला हुआ एक गरीब मुसाफिर हूँ। इधर भूलता-भटकता आ निकला। बराय मेहरबानी मुझसे यहाँ की कुल कैफियत बयान कर।

यह सुनते ही घायल सिपाही बहुत मीठे स्वर में बोला-अगर तू मुसाफिर है तो आ मेरे खून से तर पहलू में बैठ जा क्योंकि यही दो अंगुल जमीन है जो मेरे पास बाकी रह गयी है और जो सिवाय मौत के कोई नहीं छीन सकता। अफसोस है कि तू यहाँ ऐसे वक्त में आया जब हम तेरा आतिथ्य-सत्कार करने के योग्य नहीं। हमारे बाप-दादा का देश आज हमारे हाथ से निकल गया और इस वक्त हम बेवतन हैं। मगर (पहलू बदलकर) हमने हमलावर दुश्मन को बता दिया कि राजपूत अपने देश के लिए कैसी बहादुरी से जान देता है। यह आस-पास जो लाशें तू देख रहा है, यह उन लोगों की है, जो इस तलवार के घाट उतरे हैं। (मुस्कराकर) और गोया कि मैं बेवतन हूँ, मगर गनीमत है कि दुश्मन की जमीन पर मर रहा हूँ। (सीने के घाव से चीथड़ा निकालकर) क्या तूने यह मरहम रख दिया? खून निकलने दे, इसे रोकने से क्या फायदा? क्या मैं अपने ही देश में गुलामी करने के लिए जिन्दा रहूँ? नहीं, ऐसी जिन्दगी से मर जाना अच्छा। इससे अच्छी मौत मुमकिन नहीं।

जवाँमर्द की आवाज मद्धिम हो गयी, अंग ढीले पड़ गये, खून इतना ज्यादा बहा कि खुद-ब-खुद बन्द हो गया, रह-रहकर एकाध बूँद टपक पड़ता था। आखिरकार सारा शरीर बेदम हो गया, दिल की हरकत बन्द हो गयी और आँखें मुँद गयीं। दिलफिगार ने समझा अब काम तमाम हो गया कि मरने वाले

ने धीमें से कहा–भारतमाता की जय! और उसके सीने से खून का आखिरी कतरा निकल पड़ा। एक सच्चे देशप्रेमी और देशभक्त ने देशभक्ति का हकध अदा कर दिया। दिलफिगार पर इस दृश्य का बहुत गहरा असर पड़ा और उसके दिल ने कहा, बेशक दुनिया में खून के इस कतरे से ज्यादा अनमोल चीज कोई नहीं हो सकती। उसने फौरन उस खून की बूँद को जिसके आगे यमन का लाल भी हेच है, हाथ में ले लिया और इस दिलेर राजपूत की बहादुरी पर हैरत करता हुआ अपने वतन की तरफ रवाना हुआ और सख्तियाँ झेलता आखिरकार बहुत दिनों के बाद रूप की रानी मलका दिलफरेब की ड्योढ़ी पर जा पहुँचा और पैगाम दिया कि दिलफिगार सुर्ख–रू और कामयाब होकर लौटा है और दरबार में हाजिर होना चाहता है। दिलफरेब ने उसे फौरन हाजिर होने का हुक्म दिया। खुद हस्बे मामूल सुनहरे परदे की ओट में बैठी और बोली–दिलफिगार, अबकी तू बहुत दिनों के बाद वापस आया है। ला, दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज कहाँ है?

दिलफिगार ने मेंहदी–रची हथेलियों को चूमते हुए खून का वह कतरा उस पर रख दिया और उसकी पूरी कैफियत पुरजोश लहजे में कह सुनायी। वह खामोश भी न होने पाया था कि यकायक वह सुनहरा परदा हट गया और दिलफिगार के सामने हुस्न का एक दरबार सजा हुआ नजर आया जिसकी एक–एक नाजनीन जुलेखा से बढ़कर थी। दिलफरेब बड़ी शान के साथ सुनहरी मसनद पर सुशोभित हो रही थी। दिलफिगार हुस्न का यह तिलस्म देखकर अचम्भे में पड़ गया और चित्रलिखित–सा खड़ा रहा कि दिलफरेब मसनद से उठी और कई कदम आगे बढ़कर उससे लिपट गयी। गानेवालियों ने खुशी के गाने शुरू किये, दरबारियों ने दिलफिगार को नजरें भेंट कीं और चाँद–सूरज को बड़ी इज्जत के साथ मसनद पर बैठा दिया। जब वह लुभावना गीत बन्द हुआ तो दिलफरेब खड़ी हो गयी और हाथ जोड़कर दिलफिगार से बोली–ऐ जाँनिसार आशिक दिलफिगार! मेरी दुआएँ बर आयीं और खुदा ने मेरी सुन ली और तुझे कामयाब व सुर्ख–रू किया। आज से तू मेरा मालिक है और मैं तेरी लौंडी!

यह कहकर उसने एक रत्नजटित मंजूषा मँगायी और उसमें से एक तख्ती निकाली जिस पर सुनहरे अक्षरों में लिखा हुआ था–

'खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।'

प्रेम की होली

प्रेमचंद

गंगी का सत्रहवाँ साल था, पर वह तीन साल से विधवा थी और जानती थी कि मैं विधवा हूँ, मेरे लिए संसार के सुखों के द्वार बन्द हैं। फिर वह क्यों रोये और कलपे? मेले से सभी तो मिठाई के दोने और फूलों के हार लेकर नहीं लौटते? कितनों ही का तो मेले की सजी दूकानें और उन पर खड़े नर-नारी देखकर ही मनोरंजन हो जाता है। गंगी खाती-पीती थी, हँसती-बोलती थी, किसी ने उसे मुँह लटकाये, अपने भाग्य को रोते नहीं देखा। घड़ी रात को उठकर गोबर निकालकर, गाय-बैलों को सानी देना, फिर उपले पाथना, उसका नित्य का नियम था। तब वह अपने भैया को गाय दुहाने के लिए जगाती थी। फिर कुएँ से पानी लाती, चौके का धन्धा शुरू हो जाता। गाँव की भावजें उससे हँसी करतीं, पर एक विशेष प्रकार की हँसी छोड़कर सहेलियाँ ससुराल से आकर उससे सारी कथा कहतीं, पर एक विशेष प्रसंग बचाकर। सभी उसके वैधव्य का आदर करते थे, जिस छोटे से अपराध के लिए, उसकी भावज पर घुड़कियाँ पड़तीं, उसकी माँ को गालियाँ मिलतीं, उसके भाई पर मार पड़ती, वह उसके लिए क्षम्य था, जिसे ईश्वर ने मारा है, उसे क्या कोई मारे! जो बातें उसके लिए वर्जित थीं उनकी ओर उसका मन ही न जाता था। उसके लिए उसका अस्तित्त्व ही न था। जवानी के इस उमड़े हुए सागर में मतवाली लहरें न थीं, डरावनी गरज न थी, अचल शान्ति का साम्राज्य था।

2 होली आयी, सबने गुलाबी साड़ियाँ पहनीं, गंगी की साड़ी न रंगी गयी। माँ ने पूछा-बेटी, तेरी साड़ी भी रंग दूँ। गंगी ने कहा-नहीं अम्माँ, यों ही रहने दो। भावज ने फाग गाया। वह पकवान बनाती रही। उसे इसी में आनन्द था।

तीसरे पहर दूसरे गाँव के लोग होली खेलने आये। यह लोग भी होली लौटाने जाएँगे। गाँवों में यही परस्पर व्यवहार है। मैकू महतो ने भंग बनवा रखी थी, चरस-गाँजा, माजूम सब कुछ लाये थे। गंगी ने ही भंग पीसी थी, मीठी अलग बनायी थी, नमकीन अलग। उसका भाई पिलाता था, वह हाथ धुलाती थी। जवान सिर नीचा किये पीकर चले जाते, बूढ़े, गंगी से पूछ लेते-अच्छी तरह हो न बेटी, या चुहल करते-क्यों री गंगिया भावज तुझे खाना नहीं देती क्या, जो इतनी दुबली हो गयी है! गंगिया हँसकर रह जाती।। देह क्या उसके बस की थी। न जाने क्यों वह मोटी हुई थी।

भंग पीने के बाद लोग फाग गाने लगे। गंगिया अपनी चौखट पर खड़ी सुन रही थी। एक जवान ठाकुर गा रहा था। कितना अच्छा स्वर था, कैसा मीठा। गंगिया को बड़ा आनन्द आ रहा था। माँ ने कई बार पुकारा–सुन जा। वह न गयी। एक बार गयी भी तो जल्दी से लौट आयी। उसका ध्यान उसी गाने पर था। न जाने क्या बात उसे खींचे लेती थी, बाँधे लेती थी। जवान ठाकुर भी बार–बार गंगिया की ओर देखता और मस्त हो–होकर गाता। उसके साथ वालों को आश्चर्य हो रहा था। ठाकुर को यह सिद्धि कहाँ मिल गयी! वह लोग विदा हुए तो गंगिया चौखटे पर खड़ी थी। जवान ठाकुर ने भी उसकी ओर देखा और चला गया।

गंगिया ने अपने बाप से पूछा–कौन गाता था दादा?

मैकू ने कहा–कोठार के बुद्धूसिंह का लड़का है, गरीबसिंह। बुद्धू रीति व्यवहार में आते–जाते थे। उनके मरनें के बाद अब वही लड़का आने–जाने लगा।

गंगी–यहाँ तो पहले पहल आया है?

मैकू–हाँ और तो कभी नहीं देखा। मिजाज बिलकुल बाप का–सा है और वैसी ही मीठी बोली है। घमण्ड तो छू नहीं गया। बुद्धू के बखार में अनाज रखने को जगह न थी, पर चमार को भी देखते तो पहले हाथ उठाते। वही इसका स्वाभाव है। गोरू आ रहे थे। गंगी पगहिया लेने भीतर चली गयी। वही स्वर उसके कानों में गूँज रहा था।

कई महीने गुजर गये। एक दिन गंगी गोबर पाथ रही थी। सहसा उसने देखा, वही ठाकुर सिर झुकाये द्वार पर से चला जा रहा है। वह गोबर छोड़कर उठ खड़ी हुई। घर में कोई मर्द न था। सब बाहर चले गये थे। यह कहना चाहती थी–ठाकुर! बैठो, पानी पीते जाव। पर उसके मुँह से बात न निकली। उसकी छाती कितने जोर से धड़क रही थी। उसे एक विचित्र घबराहट होने लगी–क्या करे, कैसे उसे रोक ले। गरीबसिंह ने एक बार उसकी ओर ताका और फिर आँखें नीची कर लीं। उस दृष्टि में क्या बात थी कि गंगी के रोएँ खड़े हो गये। वह दौड़ी घर में गयी और माँ से बोली–अम्माँ, वह ठाकुर जा रहे हैं, गरीबसिंह। माँ ने कहा–किसी काम से आये होंगे। गंगी बाहर गयी तो ठाकुर चला गया था। वह फिर गोबर पाथने लगी, पर उपले टूट–टूट जाते थे, आप ही आप हाथ बन्द हो जाते, मगर फिर चौंककर पाथने लगती, जैसे कहीं दूर से उसके कानों में आवाज आ रही हो। वही दृष्टि आँखों के सामने थी। उसमें क्या जादू था? क्या मोहिनी थी? उसने अपनी मूक भाषा में कुछ कहा। गंगी ने भी कुछ सुना। क्या कहा? यह वह नहीं जानती, पर वह दृष्टि उसकी आँखों में बसी हुई थी।

रात को लेटी तब भी वही दृष्टि सामने थी। स्वप्न में भी वही दृष्टि दिखाई दी।

फिर कई महीने गुजर गये। एक दिन सन्ध्या समय मैकू द्वार पर बैठे सन कात रहे थे और गंगी बैलों को सानी चला रही थी कि सहसा चिल्ला उठी–दादा, दादा, ठाकुर।

मैकू ने सिर उठाया तो द्वार पर गरीबसिंह चला आ रहा था। राम–राम हुआ।

मैकू ने पूछा–कहाँ गरीबसिंह! पानी तो पीते जाव।

गरीब आकर एक माची पर बैठ गया। उसका चेहरा उतरा हुआ था। कुछ वह बीमार–सा जान पड़ता था। मैकू ने कहा–कुछ बीमार थे क्या?

गरीब–नहीं तो दादा!

मैकू–कुछ मुँह उतरा हुआ है, क्या सूद–ब्याज की चिन्ता में पड़ गये?

गरीब–तुम्हारे जीते मुझे क्या चिन्ता है दादा!

मैकू–बाकी दे दी न?

गरीब–हाँ दादा, सब बेबाक कर दिया।

मैकू ने गंगी से कहा–बेटी जा, कुछ ठाकुर को पानी पीने को ला। भैया हो तो कह देना चिलम दे जाए।

गरीब ने कहा–चिलम रहने दो दादा! मैं नहीं पीता।

मैकू–अबकी घर ही तमाकू बनी है, सवाद तो देखो। पीते तो हो?

गरीब–इतना बेअदब न बनाओं दादा। काका के सामने चिलम नहीं छुई। मैं तुमको उन्हीं की जगह देता हूँ।

यह कहते–कहते उसकी आँखें भर आयीं। मैकू का हृदय भी गद्‌गद हो उठा। गंगी हाथ की टोकरी लिये मूर्ति के समान खड़ी थी। उसकी सारी चेतना, सारी भावना, गरीबसिंह की बातों की ओर खिंची हुई थी! उसमें और कुछ सोचने की और कुछ करने की शक्ति न थी। ओह! कितनी नम्रता है, कितनी सज्जनता, कितना अदब।

मैकू ने फिर कहा–सुना नहीं बेटी, जाकर कुछ पानी पीने को लाव! गंगी चौंक पड़ी। दौड़ी हुई घर में गयी। कटोरा माँजा, उसमें थोड़ी–सी राब निकाली। फिर लोटा–गिलास माँजकर शर्बत बनाया।

माँ ने पूछा–कौन आया है गंगिया?

गंगी–वह हैं ठाकुर गरीबसिंह। दूध तो नहीं है अम्माँ, रस में मिला देती?

माँ–है क्यों नहीं, हाड़ी में देख।

गंगी ने सारी मलाई उतारकर रस में मिला दी और लोटा-गिलास लिये बाहर निकली। ठाकुर ने उसकी ओर देखा। गंगी ने सिर झुका लिया! यह संकोच उसमें कहाँ से आ गया?

ठाकुर ने रस लिया और राम-राम करके चला गया।

मैकू बोला-कितना दुबला हो गया है।

गंगी-बीमार हैं क्या?

मैकू-चिन्ता है और क्या? अकेला आदमी है, इतनी बड़ी गिरस्ती, क्या करे।

गंगी को रात-भर नींद नहीं आयी। उन्हें कौन-सी चिन्ता है। दादा से कुछ कहा भी तो नहीं। क्यों इतने सकुचाते हैं। चेहरा कैसा पीला पड़ गया है।

सबेरे गंगी ने माँ से कहा-गरीबसिंह अबकी बहुत दुबले हो गये हैं अम्माँ!

माँ-अब वह बेफिक्री कहाँ है बेटी। बाप के जमाने में खाते थे और खेलते थे। अब तो गिरस्ती का जंजाल सिर पर है।

गंगी को इस जवाब से सन्तोष न हुआ। बाहर जाकर मैकू से बोली-दादा, तुमने गरीबसिंह को समझा नहीं दिया-क्यों इतनी चिन्ता करते हो?

मैकू ने आँखें फाड़कर देखा और कहा-जा, अपना काम कर।

गंगी पर मानो बज्रपात हो गया। वह कठोर उत्तर और दादा के मुँह से। हाय! दादा को भी उनका ध्यान नहीं। कोई उसका मित्र नहीं। उन्हें कौन समझाए! अबकी वह आएँगे तो मैं खुद उन्हें समझाऊँगी।

गंगी रोज सोचती-वह आते होंगे, पर ठाकुर न आये। फिर होली आयी। फिर गाँव में फाग होने लगा। रमणियों ने फिर गुलाबी साड़ियाँ पहनीं। फिर रंग घोला गया। मैकू ने भंग, चरस, गाँजा मँगवाया। गंगी ने फिर मीठी और नमकीन भंग बनाई! द्वार पर टाट बिछ गया। व्यवहारी लोग आने लगे। मगर कोठार से कोई नहीं आया। शाम हो गयी। किसी का पता नहीं! गंगी बेकरार थी। कभी भीतर जाती, कभी बाहर आती। भाई से पूछती-क्या कोठार वाले नहीं आये? भाई कहता-नहीं। दादा से पूछती-भंग तो नहीं बची, कोठार वाले आवेंगे तो क्या पीयेंगे? दादा कहते-अब क्या रात को आवेंगे, सामने तो गाँव है। आते होते तो दिखाई देते।

रात हो गयी, पर गंगी को अभी तक आशा लगी हुई थी। वह मन्दिर के ऊपर चढ़ गयी और कोठार की ओर निगाह दौड़ाई। कोई न आता था।

सहसा उसे उसी सिवाने की ओर आग दहकती हुई दिखाई दी। देखते-देखते ज्वाला प्रचण्ड हो गयी। यह क्या! वहाँ आज होली जल रही है। होली तो कल ही जल गयी। कौन जाने वहाँ पण्डितों ने आज होली जलाने की सायत बतायी हो। तभी वे लोग आज नहीं आये। कल आएँगे।

उसने घर आकर मैकू से कहा-दादा, कोठार में तो आज होली जली है।

मैकू-दुत् पगली! होली सब जगह कल जल गयी।

गंगी-तुम मानते नहीं हो, मैं मन्दिर पर से देख आयी हूँ। होली जल रही है। न पतियाते हो तो चलो, मैं दिखा दूँ।

मैकू-अच्छा चल देखूँ।

मैकू ने गंगी के साथ मन्दिर की छत पर आकर देखा। एक मिनट तक देखते रहे। फिर बिना कुछ बोले नीचे उतर आये।

गंगी ने कहा-है होली कि नहीं, तुम न मानते थे?

मैकू-होली नहीं है पगली-चिता है। कोई मर गया है। तभी आज कोठार वाले नहीं आये।

गंगी का कलेजा धक्-से हो गया। इतने में किसी ने नीचे से पुकारा-मैकू महतो, कोठार के गरीबसिंह गुजर गये।

मैकू नीचे चले गये, पर गंगी वहीं स्तम्भित खड़ी रही। कुछ खबर न रही-मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, मालूम हुआ जैसे गरीबसिंह उस सुदूर चिता से निकलकर उसकी ओर देख रहा है-वही दृष्टि थी, वही चेहरा, क्या उसे वह भूल सकती थी? उस दिवस से फिर कभी होली देखने नहीं गयी। होली हर साल आती थी, हर साल उसी तरह भंग बनती थी, हर साल उसी तरह फाग होता थाय हर साल अबीर-गुलाल उड़ती थी, पर गंगी के लिए होली सदा के लिए चली गयी।

रक्षा में हत्या

प्रेमचंद

(प्रेमचंद के जीवन-काल में उनकी अनेक कहानियों का अनुवाद जापानी, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में तो हुआ ही, अनेक भारतीय भाषाओं में भी उनकी कहानियाँ अनूदित होकर प्रकाशित हुईं।

प्रेमचंद ने 1928 में नागपुर (महाराष्ट्र) के श्री आनंदराव जोशी को अपनी कहानियों का मराठी अनुवाद पुस्तकाकार प्रकाशित कराने की अनुमति प्रदान की थी। प्रेमचंद के देहावसान के पश्चात 'हंस' का मई 1937 का अंक 'प्रेमचंद स्मृति अंक' के रूप में बाबूराव विष्णु पराड़कर के संपादन में प्रकाशित हुआ था, जिसमें आनंदराव जोशी का लेख 'प्रेमचंदजी की सर्वोत्तम कहानियाँ' (पृष्ठ 927-929) शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इस लेख में प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट है कि अनुवाद हेतु कहानियों का चयन करने के लिए प्रेमचंद और आनंदराव जोशी के बीच लंबा पत्राचार हुआ था और प्रेमचंद ने अपने पत्रों में अपनी लोकप्रिय कहानियों के शीर्षक एवं स्रोत की स्पष्ट सूचना आनंदराव जोशी को उपलब्ध कराई थी। परिणामस्वरूप आनंदराव जोशी ने प्रेमचंद की 14 कहानियों को मराठी में अनूदित करके जून 1929 में पूना के सुप्रसिद्ध चित्रशाला प्रेस से 'प्रेमचंदाच्या गोष्ठी, भाग-1' शीर्षक से प्रकाशित कराया था, जिसमें सम्मिलित कहानियाँ इस प्रकार हैं। 1. राजा हरदौल, 2. रानी सारंधा, 3. मंदिर और मस्जिद, 4. एक्ट्रेस, 5. अग्नि समाधि, 6. विनोद, 7. आत्माराम, 8. सुजान भगत, 9. बूढ़ी काकी, 10. दुर्गा का मंदिर, 11. शतरंज के खिलाड़ी, 12. पंच परमेश्वर, 13. बड़े घर की बेटी और 14. विध्वंस।

'हंस' के प्रेमचंद स्मृति अंक में प्रकाशित आनंदराव जोशी के उपर्युक्त संदर्भित लेख में उद्धृत प्रेमचंद के पत्रांशों से सुस्पष्ट है कि 'प्रेमचंदाच्या गोष्ठी, भाग-1' के प्रकाशनोपरांत आनंदराव जोशी इस संकलन के द्वितीय भाग के लिए प्रेमचंद की कतिपय अन्य कहानियों के मराठी अनुवाद करने की दिशा में सक्रिय हो गए थे। इसके लिए कहानियों का चयन करने के लिए प्रेमचंद से उनका पत्रचार होता रहा था।

(प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, भाग 2, पृ.141)

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि प्रेमचंद की एक कहानी 'रक्षा में हत्या' का मराठी अनुवाद कर आनंदराव जोशी ने 'प्रेमचंद गोष्ठी, भाग-1' के प्रकाशन से पूर्व अर्थात जून 1929 से पूर्व ही 'आलाप' अंक में प्रकाशित करा दिया था। इसका सीधा-सा अर्थ है कि 'रक्षा में हत्या' शीर्षक कहानी जून 1929 से पूर्व ही हिंदी में प्रकाशित हो चुकी थी, परंतु आश्चर्य का विषय है कि आनंदराव जोशी के प्रेमचंद के नाम लिखे उपर्युक्त संदर्भित पत्र को 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' में संकलित करते समय डॉ. कमल किशोर गोयनका प्रेमचंद की इस कहानी को खोजने की दिशा में प्रवृत्त होने के स्थान पर कहानी पर मात्र

निम्नांकित पाद टिप्पणी प्रकाशित करा कर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं-'इस नाम की कोई कहानी उपलब्ध नहीं है-डॉ. गोयनका' (प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, भाग 2, पृ. 141)

वास्तविकता यह है कि हिंदी पुस्तक भंडार, लहेरियासराय (बिहार) से श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी के संपादन में प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'बालक' के माघ 1983 (जनवरी, 1927) के अंक में प्रेमचंद की यह कहानी पृष्ठ संख्या 2 से 8 तक प्रकाशित हुई थी। विगत 85 वर्षों से 'बालक' के पृष्ठों में अचीन्ही पड़ी, यह दुर्लभ एवं असंदर्भित कहानी 'रक्षा में हत्या' प्रेमचंद की दुर्लभ रचनाओं की खोज के प्रति विद्वानों एवं प्रेमचंद विशेषज्ञों की घोर अपेक्षा का ज्वलंत प्रमाण है।-प्रदीप जैन)

केशव के घर में एक कार्निस के ऊपर एक पंडुक ने अंडे दिए थे। केशव और उसकी बहन 'यामा दोनों बड़े गौर से पंडुक को वहाँ आते-जाते देखा करते। प्रात:काल दोनों आँखें मलते कार्निस के सामने पहुँच जाते और पंडुक या पंडुकी या दोनों को वहाँ बैठा पाते। उनको देखने में दोनों बालकों को न जाने क्या मजा मिलता था। दूध और जलेबी की सुध भी न रहती थी। दोनों के मन में भाँति-भाँति के प्रश्न उठते-अंडे कितने बड़े होंगे, किस रंग के होंगे, कितने होंगे, क्या खाते होंगे, उनमें से बच्चे कैसे निकल आवेंगे, बच्चों के पंख कैसे निकलेंगे, घोंसला कैसा है, पर इन प्रश्नों का उत्तर देने वाला कोई न था। अम्मा को घर के काम-धंधों से फुरसत न थी-बाबूजी को पढ़ने-लिखने से। दोनों आपस ही में प्रश्नोत्तर करके अपने मन को संतुष्ट कर लिया करते थे।

श्यामा कहती-क्यों भैया, बच्चे निकल कर फुर्र से उड़ जाएँगे? केशव पंडिताई भरे अभिमान से कहता-नहीं री पगली, पहले पंख निकलेंगे। बिना परों के बिचारे कैसे उड़ेंगे।

श्यामा-बच्चों को क्या खिलाएगी बिचारी?

केशव इस जटिल प्रश्न का उत्तर कुछ न दे सकता।

इस भाँति तीन-चार दिन बीत गए। दोनों बालकों की जिज्ञासा दिन-दिन प्रबल होती जाती थी। अंडों को देखने के लिए वे अधीर हो उठते थे। उन्होंने अनुमान किया, अब अवश्य बच्चे निकल आए होंगे। बच्चों के चारे की समस्या अब उनके सामने आ खड़ी हुई। पंडुकी बिचारी इतना दान कहाँ पावेगी कि सारे बच्चों का पेट भरे। गरीब बच्चे भूख के मारे चूँ-चूँ कर मर जाएँगे।

इस विपत्ति की कल्पना करके दोनों व्याकुल हो गए। दोनों ने निश्चय किया कि कार्निस पर थोड़ा-सा दाना रख दिया जाए। 'यामा प्रसन्न होकर बोली-तब तो चिड़ियों को चारे के लिए कहीं उड़ कर न जाना पड़ेगा न?

केशव-नहीं, तब क्यों जाएगी।

श्यामा-क्यों भैया, बच्चों को धूप न लगती होगी?

केशव का ध्यान इस कष्ट की ओर न गया था-अवश्य कष्ट हो रहा होगा। बिचारे प्यास के मारे तड़पते होंगे, ऊपर कोई साया भी तो नहीं।

आखिर यही निश्चय हुआ कि घोंसले के ऊपर कपड़े की छत बना देना चाहिए। पानी की प्याली और थोड़ा-सा चावल रख देने का प्रस्ताव भी पास हुआ।

दोनों बालक बड़े उत्साह से काम करने लगे। श्यामा माता की आँख बचा कर मटके से चावल निकाल लाई। केशव ने पत्थर की प्याली का तेल चुपके से जमीन पर गिरा दिया और उसे खूब साफ करके उसमें पानी भरा।

अब चाँदनी के लिए कपड़ा कहाँ से आए? फिर, ऊपर बिना तीलियों के कपड़ा ठहरेगा कैसे और तीलियाँ खड़ी कैसे होंगी?

केशव बड़ी देर तक इसी उधेड़बुन में रहा। अंत को उसने यह समस्या भी हल कर ली। श्यामा से बोला-जा कर कूड़ा फेंकने वाली टोकरी उठा ला। अम्माजी को मत दिखाना।

श्यामा-वह तो बीच से फटी हुई है, उसमें से धूप न जाएगी?

केशव ने झुँझला कर कहा-तू टोकरी तो ला, मैं उसका सूराख बंद करने की कोई हिकमत निकालूँगा न।

श्यामा दौड़ कर टोकरी उठा लाई। केशव ने उसके सूराख में थोड़ा-सा कागज ठूँस दिया और तब टोकरी को एक टहनी से टिकाकर बोला-देख, ऐसे ही घोंसले पर इसकी आड़ कर दूँगा। तब कैसे धूप जाएगी? श्यामा ने मन में सोचा-भैया कितने चतुर हैं!

गर्मी के दिन थे। बाबूजी दफ्तर गए हुए थे। माता दोनों बालकों को कमरे में सुला कर खुद सो गई थी, पर बालकों की आँखों में आज नींद कहाँ? अम्माजी को बहलाने के लिए दोनों दम साधे, आँखें बंद किए, मौके का इंतजार कर रहे थे। ज्यों ही मालूम हुआ कि अम्माजी अच्छी तरह सो गईं, दोनों चुपके से उठे और बहुत धीरे से द्वार की सिटकनी खोल कर बाहर निकल आए। अंडों की रक्षा करने की तैयारियाँ होने लगीं।

केशव कमरे से एक स्टूल उठा लाया, पर जब उससे काम न चला, तो नहाने की चौकी ला कर स्टूल के नीचे रखी और डरते-डरते स्टूल पर चढ़ा। श्यामा दोनों हाथों से स्टूल को पकड़े हुई थी। स्टूल चारों पाए बराबर न होने के कारण, जिस ओर ज्यादा दबाव पाता था, जरा-सा हिल जाता था। उस समय केशव को कितना संयम करना पड़ता था, यह उसी का दिल जानता थ। दोनों हाथों से कार्निस पकड़ लेता और श्यामा को दबी आवाज से डाँटता-अच्छी तरह पकड़, नहीं उतर कर बहुत मारूँगा। मगर बिचारी श्यामा का मन तो ऊपर कार्निस पर था, बार-बार उसका ध्यान इधर चला जाता और हाथ ढीले पड़ जाते। केशव ने ज्यों ही कार्निस पर हाथ रखा, दोनों पंडुक उड़ गए। केशव ने देखा कि कार्निस पर थोड़े-से तिनके बिछे हुए हैं और उस पर तीन अंडे पड़े हैं। जैसे घोंसले पर देखे थे, ऐसा कोई घोंसला नहीं है।

श्यामा ने नीचे से पूछा-कै बच्चे हैं भैया?

केशव-तीन अंडे हैं। अभी बच्चे नहीं निकले।

श्यामा-जरा हमें दिखा दो भैया, कितने बड़े हैं?

केशव-दिखा दूँगा, पहले जरा चीथड़े ले आ, नीचे बिछा दूँ। बिचारे अंडे तिनकों पर पड़े हुए हैं।

श्यामा दौड़ कर अपनी पुरानी धोती फाड़ कर एक टुकड़ा लाई और केशव ने झुक कर कपड़ा ले लिया। उसके कई तह करके उसने एक गद्दी बनाई और उसे तिनकों पर बिछा कर तीनों अंडे धीरे से उस पर रख दिए।

श्यामा ने फिर कहा-हमको भी दिखा दो भैया?

केशव-दिखा दूँगा, पहले जरा वह टोकरी तो दे दो, ऊपर साया कर दूँ।

श्यामा ने टोकरी नीचे से थमा दी और बोली-अब तुम उतर आओ, तो मैं भी देखूँ। केशव ने टोकरी को एक टहनी से टिकाकर कहा-जा दाना और पानी की प्याली ले आ। मैं उतर जाऊँ, तो तुझे दिखा दूँगा।

श्यामा प्याली और चावल भी लाई। केशव ने टोकरी के नीचे दोनों चीजें रख दीं और धीरे से उतर आया।

श्यामा ने गिड़गिड़ाकर कहा-अब हमको भी चढ़ा दो भैया।

केशव-तू गिर पड़ेगी।

श्यामा-न गिरूँगी भैया, तुम नीचे से पकड़े रहना।

केशव–ना भैया, कहीं तू गिर–गिरा पड़े, तो अम्माजी मेरी चटनी ही बना डालें कि तूने ही चढ़ाया था। क्या करेगी देख कर? अब अंडे बड़े आराम से हैं। जब बच्चे निकलेंगे, तो उनको पालेंगे।

दोनों पक्षी बार–बार कार्निस पर आते थे और बिना बैठे ही उड़ जाते थे। केशव ने सोचा, हम लोगों के भय से यह नहीं बैठते। स्टूल उठा कर कमरे में रख आया। चौकी जहाँ–की–तहाँ रख दी।

श्यामा ने आँखों में आँसू भर कर कहा–तुमने मुझे नहीं दिखाया, मैं अम्माजी से कह दूँगी।

केशव–अम्माजी से कहेगी, तो बहुत मारूँगा, कहे देता हूँ।

श्यामा–तो तुमने मुझे दिखाया क्यों नहीं?

केशव–और गिर पड़ती तो चार सिर न हो जाते?

श्यामा–हो जाते, हो जाते। देख लेना, मैं कह दूँगी।

इतने में कोठरी का द्वार खुला और माता ने धूप से आँखों को बचाते हुए कहा–तुम दोनों बाहर कब निकल आए? मैंने मना किया था कि दोपहर को न निकलना, किसने किवाड़ खोला?

किवाड़ केशव ने खोला था, पर श्यामा ने माता से यह बात नहीं की। उसे भय हुआ भैया पिट जाएँगे। केशव दिल में काँप रहा था कि कहीं श्यामा कह न दे। अंडे न दिखाए थे, इससे अब इसको श्यामा पर विश्वास न था। श्यामा केवल प्रेमवश चुप थी या इस अपराध में सहयोग के कारण, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। शायद दोनों ही बातें थीं।

माता ने दोनों बालकों को डाँट–डपट कर फिर कमरे में बंद कर दिया और आप धीरे–धीरे उन्हें पंखा झलने लगी। अभी केवल दो बजे थे। तेज लू चल रही थी। अबकी दोनों बालकों को नींद आ गई।

चार बजे एकाएक श्यामा की नींद खुली। किवाड़ खुले हुए थे। वह दौड़ी हुई कार्निस के पास आई और ऊपर की ओर ताकने लगी। पंडुकों का पता न था। सहसा उसकी निगाह नीचे गई और वह उलटे पाँव बेतहाशा दौड़ती हुई कमरे में जा कर जोर से बोली–भैया, अंडे तो नीचे पड़े हैं। बच्चे उड़ गए?

केशव घबरा कर उठा और दौड़ा हुआ बाहर आया, तो क्या देखता है कि तीनों अंडे नीचे टूटे पड़े हैं और उनमें से कोई चूने की–सी चीज बाहर निकल आई है। पानी की प्याली भी एक तरफ टूटी पड़ी है।

उसके चेहरे का रंग उड़ गया। डरे हुए नेत्रों से भूमि की ओर ताकने लगा। श्यामा ने पूछा–बच्चे कहाँ उड़ गए भैया?

केशव ने रुँधे स्वर में कहा–अंडे तो फूट गए!

श्यामा–और बच्चे कहाँ गए?

केशव–तेरे सिर में। देखती नहीं है, अंडों में से उजला–उजला पानी निकल आया है! वही तो दो–चार दिन में बच्चे बन जाते।

माता ने सुई हाथ में लिए हुए पूछा–तुम दोनों वहाँ धूप में क्या कर रहे हो?

श्यामा ने कहा–अम्माजी, चिड़िया के अंडे टूटे पड़े हैं।

माता ने आ कर टूटे हुए अंडों को देखा और गुस्से से बोली–तुम लोगों ने अंडों को छुआ होगा।

अबकी श्यामा को भैया पर जरा भी दया न आई–उसी ने शायद अंडों को इस तरह रख दिया कि वे नीचे गिर पड़े, इसका उसे दंड मिलना चाहिए। बोली–इन्हीं ने अंडों को छेड़ा था अम्माजी।

माता ने केशव से पूछा– क्यों रे?

केशव भीगी बिल्ली बना खड़ा रहा।

माता–तो वहाँ पहुँचा कैसे?

श्यामा–चौकी पर स्टूल रख कर चढ़े थे अम्माजी।

माता–इसीलिए तुम दोनों दोपहर को निकले थे।

श्यामा–यही ऊपर चढ़े थे अम्माजी।

केशव–तू स्टूल थामे नहीं खड़ी थी।

श्याम–तुम्हीं ने तो कहा था।

माता–तू इतना बड़ा हुआ, तुझे अभी इतना भी नहीं मालूम कि छूने से चिड़ियों के अंडे गंदे हो जाते हैं–चिड़ियाँ फिर उन्हें नहीं सेतीं।

श्यामा ने डरते–डरते पूछा–तो क्या इसीलिए चिड़िया ने अंडे गिरा दिए हैं अम्माजी?

माता–और क्या करती। केशव के सिर इसका पाप पड़ेगा। हाँ–हाँ तीन जानें ले लीं दुष्ट ने!

केशव रुआँसा होकर बोला–मैंने तो केवल अंडों को गद्दी पर रख दिया था अम्माजी!

माता को हँसी आ गई।

मगर केशव को कई दिनों तक अपनी भूल पर पश्चाताप होता रहा। अंडों की रक्षा करने के भ्रम में, उसने उनका सर्वनाश कर डाला था। इसे याद करके वह कभी-कभी रो पड़ता था।

दोनों चिड़ियाँ वहाँ फिर न दिखाई दीं!

सांसारिक प्रेम और देश प्रेम

प्रेमचंद

शहर लन्दन के एक पुराने टूटे-फूटे होटल में जहाँ शाम ही से अँधेरा हो जाता है, जिस हिस्से में फैशनेबुल लोग आना ही गुनाह समझते हैं और जहाँ जुआ, शराब-खोरी और बदचलनी के बड़े भयानक दृश्य हरदम आँख के सामने रहते हैं, उस होटल में, उस बदचलनी के अखाड़े में इटली का नामवर देश-प्रेमी मैजिनी खामोश बैठा हुआ है। उसका सुन्दर चेहरा पीला है, आँखों से चिन्ता बरस रही है, होंठ सूखे हुए हैं और शायद महीनों से हजामत नहीं बनी। कपड़े मैले-कुचैले हैं। कोई व्यक्ति जो मैजिनी को पहले से न जानता हो, उसे देखकर यह ख्याल करने से नहीं रुक सकता कि हो न हो यह भी उन्ही अभागे लोगों में है जो अपनी वासनाओं के गुलाम होकर जलील से जलील काम करते हैं।

मैजिनी अपने विचारों में डूबा हुआ है। आह बदनसीब कौम! मजलूम इटली! क्या तेरी किस्मतें कभी न सुधरेंगी, क्या तेरे सैकड़ों सपूतों का खून जरा भी रंग न लाएगा! क्या तेरे देश से निकाले हुए हजारों जाँनिसारों की आहों में जरा भी तासीर नहीं! क्या तू अन्याय और अत्याचार और गुलामी के फन्दे में हमेशा गिरफ्तार रहेगी। शायद तुझमें अभी सुधरने, स्वतन्त्र होने की योग्यता नहीं आयी। शायद मेरी किस्मत में कुछ दिनों और जिल्लत और बर्बादी झेलनी लिखी है। आजादी, हाय आजादी, तेरे लिए मैंने कैसे-कैसे दोस्त, जान से प्यारे दोस्त कुर्बान किये। कैसे-कैसे नौजवान, होनहार नौजवान, जिनकी माँएँ और बीवियाँ आज उनकी कब्र पर आँसू बहा रही हैं और अपने कष्टों और आपदाओं से तंग आकर उनके वियोग के कष्ट में अभागे, आफत के मारे मैजिनी को शाप दे रही हैं। कैसे-कैसे शेर जो दुश्मनों के सामने पीठ फेरना न जानते थे, क्या यह सब कुर्बानियाँ, यह सब भेंटें काफी नहीं हैं? आजादी, तू ऐसी कीमती चीज है! हो तो फिर मैं क्यों जिन्दा रहूँ? क्या यह देखने के लिए कि मेरा प्यारा वतन, मेरा

प्यारा देश, धोखेबाज, अत्याचारी दुश्मनों के पैरों तले रौंदा जाए, मेरे प्यारे भाई, मेरे प्यारे हमवतन, अत्याचार का शिकार बनें। नहीं मैं यह देखने के लिए जिन्दा नहीं रह सकता!

मैजिनी इन्हीं ख्यालो में डूबा हुआ था कि उसका दोस्त रफेती जो उसके साथ निर्वासित किया गया था, इस कोठरी में दाखिल हुआ। उसके हाथ में एक बिस्कुट का टुकड़ा था। रफेती उम्र में अपने दोस्त से दो-चार बरस छोटा था। भंगिमा से सज्जनता झलक रही थी। उसने मैजिनी का कन्धा पकड़कर हिलाया और कहा-जोजफ, यह लो, कुछ खा लो।

मैजिनी ने चौंककर सर उठाया और बिस्कुट देखकर बोला-यह कहाँ से लाये? तुम्हारे पास पैसे कहाँ थे?

रफेती-पहले खा लो फिर यह बातें पूछना, तुमने कल शाम से कुछ नहीं खाया है।

मैजिनी-पहले यह बता दो, कहाँ से लाये। जेब में तम्बाकू का डिब्बा भी नजर आता है। इतनी दौलत कहाँ हाथ लगी?

रफेती-पूछकर क्या करोगे? वही अपना नया कोट जो माँ ने भेजा था, गिरवीं रख आया हूँ।

मैजिनी ने एक ठण्डी साँस ली, आँखों से आँसू टप-टप जमीन पर गिर पड़े। रोते हुए बोला-यह तुमने क्या हरकत की, क्रिसमस के दिन आते हैं, उस वक्त क्या पहनोगे? क्या इटली के एक लखपती व्यापारी का इकलौता बेटा क्रिसमस के दिन भी ऐसे ही फटे-पुराने कोट में बसर करेगा? ऐं?

रफेती-क्यों, क्या उस वक्त तक कुछ आमदनी न होगी, हम तुम दोनों नये जोड़े बनवाएँगे और अपने प्यारे देश की आने-वाली आजादी के नाम पर खुशियाँ मनाएँगे।

मैजिनी-आमदनी की तो कोई सूरत नजर नहीं आती। जो लेख मासिक पत्रिकाओं के लिए लिखे गये थे, वह वापस ही आ गये। घर से जो कुछ मिलता है, वह कब का खत्म हो चुका। अब और कौन-सा जरिया है।

रफेती-अभी क्रिसमस को हफ्ता भर पड़ा है। अभी से उसकी क्या फिक्र करें और अगर मान लो यही कोट पहना तो क्या? तुमने नहीं मेरी बीमारी में डाक्टर की फीस के लिए मैग्डलीन की अँगूठी बेच डाली थी? मैं जल्दी ही यह बात उसे लिखने वाला हूँ, देखना तुम्हें कैसा बनाती है !

2 क्रिसमस का दिन है, लन्दन में चारों तरफ खुशियों की गर्म बाजारी है। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सब अपने-अपने घर खुशियाँ मना रहे हैं और अपने अच्छे से अच्छे कपड़े पहनकर गिरजाघरों में जा रहे हैं। कोई उदास सूरत नजर नहीं आती है। ऐसे वक्त में मैजिनी और रफेती दोनों उसी छोटी सी अँधेरी कोठरी में सर झुकाये खामोश बैठे हैं। मैजिनी ठण्डी आहें भर रहा है और रफेती रह-रहकर दरवाजे पर आता है और बदमस्त शराबियों को और दिनों से ज्यादा बहकते और दीवानेपन की हरकतें करते देखकर अपनी गरीबी और मुहताजी की फिक्र दूर करना चाहता है। अफसोस! इटली का सरताज जिसकी एक ललकार पर हजारों आदमी अपना खून बहाने के लिए तैयार हो जाते थे, आज ऐसा मुहताज हो रहा है कि उसे खाने का ठिकाना नहीं। यहाँ तक कि आज सुबह से उसने एक सिगार भी नहीं पिया। तम्बाकू ही दुनिया की वह नेमत थी जिससे वह हाथ नहीं खींच सकता था और वह भी आज उसे नसीब न हुआ। मगर इस वक्त उसे अपनी फिक्र नहीं रफेती, नौजवान, खुशहाल और खूबसूरत होनहार रफेती की फिक्र जी पर भारी हो रही है। वह पूछता है कि मुझे क्या हकघ है कि मैं एक ऐसे आदमी को अपने साथ गरीबी की तकलीफे झेलने पर मजबूर करूँ जिसके स्वागत के लिए दुनिया की सब नेमतें बाँहें खोले खड़ी हैं।

इतने में एक चिट्ठीरसा ने पूछा-जोजेफ मैजिनी यहाँ कहीं रहता है? अपनी चिट्ठी ले जा।

रफेती ने खत ले लिया और खुशी के जोश से उछल कर बोला-जोजेफ, यह लो मैग्डलीन का खत है।

मैजिनी ने चौंककर खत ले लिया और बड़ी बेसब्री से खोला। लिफाफा खोलते ही थोड़े से बालों का एक गुच्छा गिर पड़ा, जो मैग्डलीन ने क्रिसमस के उपहार के रूप में भेजा था, मैजिनी ने उस गुच्छे को चूमा और उसे उठाकर अपने सीने की जेब में खोंस लिया। खत में लिखा था-

माई डियर जोजफ,

यह तुच्छ भेंट स्वीकार करो। भगवान करे तुम्हें एक सौ क्रिसमस देखने नसीब हों। इस यादगार को हमेशा अपने पास रखना और गरीब मैग्डलीन को भूलना मत। मैं और क्या लिखूँ। कलेजा मुँह को आया जाता है। हाय, जोजेफ मेरे प्यारे, मेरे स्वामी, मेरे मालिक जोजेफ, तू मुझे कब तक तड़पाएगा! अब जब्त नहीं होता। आँखों में आँसू उमड़े आते हैं। मैं तेरे साथ मुसीबतें झेलूँगी, भूखों मरूँगी, यह सब मुझे गवारा है, मगर तुझसे जुदा रहना गवारा नहीं। तुझे कसम

है, तुझे अपने ईमान की कसम है, तुझे अपने वतन की कसम, तुझे मेरी कसम, यहाँ आजा, यह आँखें तरस रही हैं, कब तुझे देखूँगी। क्रिसमस करीब है, मुझे क्या, जब तक जिन्दा हूँ, तेरी हूँ।

तुम्हारी

मैग्डलीन

3 मैग्डलीन का घर स्विटजरलैण्ड में था। वह एक समृद्ध व्यापारी की बेटी थी और अनिन्द्य सुन्दरी। आन्तरिक सौन्दर्य में भी उसका जोड़ मिलना मुश्किल था। कितने ही अमीर और रईस लोग उसका पागलपन सर में रखते थे, मगर वह किसी को कुछ ख्याल में न लाती थी। मैजिनी जब इटली से भागा तो स्विटजरलैण्ड में आकर शरण ली। मैग्डलीन उस वक्त भोली-भाली, जवानी की गोद में खेल रही थी। मैजिनी की हिम्मत और कुर्बानियों की तारीफें पहले ही सुन चुकी थी। कभी-कभी अपनी माँ के साथ उसके यहाँ आने लगी और आपस का मिलना-जुलना जैसे-जैसे बढ़ा और मैजिनी के भीतरी सौन्दर्य का ज्यों-ज्यों उसके दिल पर गहरा असर होता गया, उसकी मुहब्बत उसके दिल में पक्की होती गयी। यहाँ तक कि उसने एक दिन खुद लाज शर्म को किनारे रखकर मैजिनी के पैरों पर सिर रख दिया और कहा-मुझे अपनी सेवा में स्वीकार कर लीजिए।

मैजिनी पर भी उस वक्त जवानी छाई हुई थी, देश की चिन्ताओं ने अभी दिल को ठण्डा नहीं किया था। जवानी की पुरजोश उम्मीदें दिल में लहरें मार रही थीं, मगर उसने संकल्प कर लिया था कि मैं देश और जाति पर अपने को न्योछावर कर दूँगा और इस संकल्प पर कायम रहा। एक ऐसी सुन्दर युवती के नाजुक-नाजुक होंठों से ऐसी दरख्वास्त सुनकर रद्द कर देना मैजिनी ही जैसे संकल्प के पक्के हियाव के पूरे आदमी का काम था।

मैग्डलीन भीगी-भीगी आँखें लिये उठी मगर निराश न हुई थी। इस असफलता ने उसके दिल में प्रेम की आग और भी तेज कर दी और गोया आज मैजिनी को स्विटजरलैन्ड छोड़े कई साल गुजरे मगर वफादार मैग्डलीन अभी तक मैजिनी को नहीं भूली। दिनों के साथ उसकी मुहब्बत और भी गाढ़ी और सच्ची होती जाती है।

मैजिनी खत पढ़ चुका तो एक लम्बी आह भरकर रफेती से बोला-देखा मैग्डलीन क्या कहती है?

रफेती–उस गरीब की जान लेकर दम लोगे!

मैजिनी फिर ख्याल में डूबा–मैग्डलीन, तू नौजवान है, सुन्दर है, भगवान ने तुझे अकूत दौलत दी है, तू क्यों एक गरीब, दुखियारे, कंगाल, फक्कड़, परदेश में मारे–मारे फिरने वाले आदमी के पीछे अपनी जिन्दगी मिट्टी में मिला रही है! मुझ जैसा मायूस, आफत का मारा हुआ आदमी तुझे क्योंकर खुश रख सकेगा? नहीं, नहीं मैं ऐसा स्वार्थी नहीं हूँ। दुनिया में बहुत से ऐसे हँसमुख खुशहाल नौजवान हैं जो तुझे खुश रख सकते हैं जो तेरी पूजा कर सकते हैं। क्यों तू उनमें से किसी को अपनी गुलामी में नहीं ले लेती! मैं तेरे प्रेम, सच्चे, नेक और नि:स्वार्थ प्रेम का आदर करता हूँ। मगर मेरे लिए, जिसका दिल देश और जाति पर समर्पित हो चुका है, तू एक प्यारी और हमदर्द बहन के सिवा और कुछ नहीं हो सकती। मुझमें ऐसी क्या खूबी है, ऐसे कौन से गुण हैं कि तुझ जैसी देवी मेरे लिए ऐसी मुसीबतें झेल रही है। आह मैजिनी, कम्बख्त मैजिनी, तू कहीं का न हुआ, जिनके लिए तूने अपने को न्योछावर कर दिया, वह तेरी सूरत से नफरत करते हैं। जो तेरे हमदर्द हैं, वह समझते हैं तू सपने देख रहा है।

इस ख्यालों से बेबस होकर मैजिनी ने कलम–दवात निकाली और मैग्डलीन को खत लिखना शुरू किया?

प्यारी मैग्डलीन,

4 तुम्हारा खत उस अनमोल तोहफा के साथ आया। मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूँ कि तुमने मुझ जैसे बेकस और बेबस आदमी को इस भेंट के काबिल समझा। मैं उसकी हमेशा कद्र करूँगा। यह मेरे पास हमेशा एक सच्चे नि:स्वार्थ और अमर प्रेम की स्मृति के रूप में रहेगी और जिस वक्त यह मिट्टी का शरीर कब्र की गोद में जाएगा मेरी आखिरी वसीयत यह होगी कि यह यादगार मेरे जनाजे के साथ दफन कर दी जाय। मैं शायद खुद उस ताकत का अन्दाजा नहीं लगा सकता जो मुझे इस ख्याल से मिलती है, कि दुनिया में जहाँ चारों तरफ मेरे बारे में बदगुमानियाँ फैल रही हैं, कम से कम एक ऐसी नेक औरत है जो मेरी नियत की सफाई और मेरी बुराइयों से पाक कोशिशों पर सच्ची निष्ठा रखती है और शायद तुम्हारी हमदर्दी का यकीन है कि मैं जिन्दगी की ऐसी कठिन परीक्षाओं में सफल होता जाता हूँ।

मगर प्यारी बहन, मुझे कोई तकलीफ नहीं है। तुम मेरी तकलीफों के ख्याल से अपना दिल मत दु:खाना। मैं बहुत आराम से हूँ। तुम्हारे प्रेम जैसी अक्षयनिधि पाकर भी अगर मैं कुछ थोड़े से शारीरिक कष्टों का रोना रोऊँ तो मुझ जैसा अभागा आदमी दुनिया में कौन होगा।

मैंने सुना है, तुम्हारी सेहत रोज-ब-रोज गिरती जाती है। मेरा जी बेअख्तियार चाहता है कि तुझे देखूँ। काश मैं आजाद होता, काश मेरा दिल इस काबिल होता कि तुझे भेंट चढ़ा सकता। मगर एक पजमुर्दा, उदास दिल तेरे काबिल नहीं। मैग्डलीन, खुदा के वास्ते अपनी सेहत का ख्याल रक्खो, मुझे शायद इससे ज्यादा और किसी बात की तकलीफ न होगी कि प्यारी मैग्डलीन तकलीफ में है और मेरे लिए! तेरा पाकीजा चेहरा इस वक्त निगाहों के सामने है। मेगा! देखो मुझसे नाराज न हो। खुदा की कसम, मैं तुम्हारे काबिल नहीं हूँ। आज क्रिसमस का दिन है तुम्हें क्या तेहफा भेजूँ। खुदा तुम पर हमेशा अपनी बेइन्तहा बरकतों का साया रक्खें। अपनी माँ को मेरी तरफ से सलाम कहना। तुम लोगों को देखने की इच्छा है। देखें कब तक पूरी होती है।

तेरा जोजेफ।

5 इस वाकये के बाद बहुत दिन गुजर गये। जोजेफ मैजिनी फिर इटली पहुँचा और रोम में पहली बार जनता के राज्य का एलान किया गया। तीन आदमी राज्य की व्यवस्था के लिए निर्वाचन किये गये। मैजिनी भी उनमें एक था। मगर थोड़े ही दिनों में फ्रांस की ज्यादातियों और पीडमाण्ट के बादशाह की दगाबाजियों की बदौलत इस जनता के राज का खात्मा हो गया और उसके कर्मचारी और मन्त्री अपनी जानें लेकर भाग निकले। मैजिनी अपने विश्वसनीय मित्रों की दगाबाजी और मौका-परस्ती पर पेचोताब खाता हुआ खस्ताहाल और परेशान रोम की गलियों की खाक छानता फिरता था। उसका यह सपना कि रोम को मैं जरूर एक दिन जनता के राज का केन्द्र बनाकर छोड़ूँगा, पूरा होकर फिर तितर-बितर हो गया।

दोपहर का वक्त था, धूप से परेशान होकर वह एक पेड़ की छाया में जरा दम लेने के लिए ठहर गया कि सामने से एक लेडी आती हुई दिखाई दी। उसका चेहरा पीला था, कपड़े बिलकुल सफेद और सादा, उम्र तीस साल से ज्यादा। मैजिनी आत्म-विस्मृति की दशा में था कि यह स्त्री प्रेम से व्यग्र होकर उसके गले लिपट गयी। मैजिनी ने चौककर, देखा, बोला-प्यारी मैग्डलीन, तुम हो! यह कहते-कहते उसकी आँखें भीग गयीं। मैग्डलीन ने रोकर कहा-जोजेफ! और मुँह से कुछ न निकला।

दोनों खामोश कई मिनट तक रोते रहे। आखिर मैजिनी बोला-तुम यहाँ कब आयी, मेगा?

मैग्डलीन –मैं यहाँ कई महीने से हूँ, मगर तुमसे मिलने की कोई सूरत नहीं निकलती थी। तुम्हें काम–काज में डूबा हुआ देखकर और यह समझकर कि अब तुम्हें मुझ जैसी औरत की हमदर्दी की जरूरत बाकी नहीं रही, तुमसे मिलने की कोई जरूरत न देखती थी। (रुककर) क्यों जोजफ, यह क्या कारण है कि अक्सर लोग तुम्हारी बुराई किया करते हैं? क्या वह अन्धे हैं, क्या भगवान ने उन्हें आँखें नहीं दीं?

जोजेफ–मेगा, शायद वह लोग सच कहते होंगे। फिलहाल मुझमें वह गुण नहीं है जो मैं शान के मारे अक्सर कहा करता हूँ कि मुझमें हैं या जिन्हें तुम अपनी सरलता और पवित्रता के कारण मुझमें मौजूद समझती हो। मेरी कमजोरियाँ रोज–ब–रोज मुझे मालूम होती जाती हैं।

मैग्डलीन –तभी तो तुम इस काबिल हो कि मैं तुम्हारी पूजा करूँ। मुबारक है वह इन्सान जो खुदी को मिटाकर अपने को हेच समझने लगे। जोजेफ भगवान के लिए मुझे इस तरह अपने से मत अलग करो। मैं तुम्हारी हो गयी हूँ और मुझे विश्वास है कि तुम वैसे ही पाक साफ हो जैसा हमारा ईसू था। यह ख्याल मेरे मन पर अंकित हो गया है और अगर उसमें जरा कमजोरी आ गयी थी तो तुम्हारी इस वक्त की बातचीत ने उसे और भी पक्का कर दिया। बेशक तुम फरिश्ते हो। मगर मुझे अफसोस है कि दुनिया में क्यों लोग इतने तंग–दिल और अन्धे होते हैं और खासतौर पर वह लोग जिन्हें मैं तंग ख्यालो से ऊपर समझती थी। रेफेती, रसारीनो, पलाइनो, बर्नाबास यह सब के सब तुम्हारे दोस्त हैं। तुम उन्हें अपना दोस्त समझते हो, मगर वह सब तुम्हारे दुश्मन हैं और उन्होंने मुझसे मेरे सामने सैकड़ों ऐसी बातें तुम्हारे बारे में कही हैं जिनका मैं मरकर भी यकीन नहीं कर सकती। वह सब गलत झूठ बकते हैं, हमारा प्यारा जोजेफ वैसा ही है जैसा मैं समझती थी बल्कि उससे भी अच्छा। क्या यह भी तुम्हारी एक जाती खूबी नहीं है कि तुम अपने दुश्मनों को भी अपना दोस्त समझते हो?

जोजफ से अब सब्र न हो सका। मैग्डलीन के मुरझाये हुए पीले–पीले हाथो को चूमकर कहा–प्यारी मेगा, मेरे दोस्त बेकसूर हैं और मैं खुद दोषी हूँ। (रोकर) जो कुछ उन्होंने कहा वह सब मेरे ही इशारे और मर्जी के अनुसार था, मैंने तुमसे दगा की मगर मेरी प्यारी बहन, यह सिर्फ इसलिए था कि तुम मेरी तरफ से बेपरवाह हो जाओं और अपनी जवानी के बाकी दिन खुशी से बसर करो। मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। मैंने तुम्हें जरा भी न समझा था। मैं तुम्हारे प्रेम की गहराई से

अपरिचित था क्योंकि मैं जो चाहता था उसका उल्टा असर हुआ। मगर मेगा, मैं माँफी चाहता हूँ।

मैग्डलीन –हाय, जोजेफ, तुम मुझसे माफी माँगते हो, ऐं, तुम जो दुनिया के सब इन्सानों से ज्यादा नेक, ज्यादा सच्चे और ज्यादा लायक हो! मगर हाँ, बेशक तुमने मुझे बिलकुल न समझा था जोजेफ! यह तुम्हारी गलती थी। मुझे ताज्जुब तो यह है कि तुम्हारा ऐसा पत्थर का दिल कैसे हो गया।

जोजफ–मेगा, ईश्वर जानता है जब मैंने रफेती को यह सब सिखा–पढ़ाकर तुम्हारे पास भेजा है, उस वक्त मेरे दिल की क्या कैफियत थी। मैं जो दुनिया में नेकनामी को सबसे ज्यादा कीमती समझता हूँ और मैं जिसने दुश्मनों के जाती हमलों को कभी पूरी तरह काटे बिना न छोड़ा, अपने मुँह से सिखाऊँ कि जाकर मुझे बुरा कहो! मगर यह केवल इसलिए था कि तुम अपने शरीर का ध्यान रक्खो और मुझे भूल जाओ।

सच्चाई यह थी कि मैजिनी ने मैग्डलीन के प्रेम को रोज–ब–रोज बढ़ते देखकर एक खास हिकमत की थी। उसे खूब मालूम था कि मैग्डलीन के प्रेमियों में से कितने ही ऐसे हैं जो उससे ज्यादा सुन्दर, ज्यादा दौलतमन्द और ज्यादा अक्लवाले हैं, मगर वह किसी को ख्याल में नहीं लाती। मुझमें उसके लिए जो खास आकर्षण है, वह मेरे कुछ खास गुण हैं और अगर मेरे ऐसे मित्र, जिनका आदर मैग्डलीन भी करती है, उससे मेरी शिकायत करके इन गुणों का महत्व उसके दिल से मिटा दें तो वह खुद–ब–खुद मुझे भूल जाएगी। पहले तो उसके दोस्त इस काम के लिए तैयार न होते थे मगर इस डर से कि कही मैग्डलीन ने घुल–घुलकर जान दे दी तो मैजिनी जिन्दगी भर हमें माफ न करेगा, उन्होंने यह अप्रिय काम स्वीकार कर लिया था। वह स्विटजरलैण्ड गये और जहाँ तक उनकी जबान में ताकत थी, अपने दोस्त की पीठ पीछे बुराई करने में खर्च की। मगर मैग्डलीन पर मुहब्बत का रंग ऐसा गहरा चढ़ा हुआ था कि इन कोशिशों का इसके सिवाय और कोई नतीजा न हो सकता था जो हुआ। वह एक रोज बेकरार होकर घर से निकल खड़ी हुई और रोम में आकर एक सराय में ठहर गयी। यहाँ उसका रोज का नियम था कि मैजिनी के पीछे–पीछे उसकी निगाह से दूर घूमा करती मगर उसे आश्वस्त और अपनी सफलता से प्रसन्न देखकर उसे छेड़ने का साहस न करती थी। आखिरकार जब फिर उस पर असफलताओं का वार हुआ और वह फिर दुनिया में बेकस और बेबस हो गया तो मैग्डलीन ने समझा, अब

इसको किसी हमदर्द की जरूरत है और पाठक देख चुके हैं जिस तरह वह मैजिनी से मिली।

6 मैजिनी रोम से फिर इंगलिस्तान पहुँचा और यहाँ एक अरसे तक रहा। सन् 1870 में उसे खबर मिली कि सिसली की रिआया बगावत पर आमादा है और उन्हें मैदाने जंग में लाने के लिए एक उभारने वाले की जरूरत है। बस वह फौरन सिसली पहुँचा मगर उसके जाने के पहले शाही फौज ने बागियों को दबा दिया था। मैजिनी जहाज से उतरते ही गिरफ्तार करके एक कैदखाने में डाल दिया गया। मगर चूँकि अब वह बहुत बुड्ढा हो गया था, शाही हुक्काम ने इस डर से कि कहीं वह कैद की तकलीफों से मर जाय तो जनता को सन्देह होगा कि बादशाह की प्रेरणा से वह कत्ल कर डाला गया, उसे रिहा कर दिया। निराश और टूटा हुआ दिल लिये मैजिनी स्विटजरलैण्ड की तरफ रवाना हुआ। उसकी जिन्दगी की तमाम उम्मीदें खाक में मिल गयीं। इसमें शक नहीं कि इटली के एकताबद्ध हो जाने के दिन बहुत पास आ गये थे मगर उसकी हुकूमत की हालत उससे हरगिज बेहतर न थी जैसी आस्ट्रिया या नेपल्स के शासन-काल में। अन्तर यह था कि पहले वह एक दूसरी कौम की ज्यादातियों से परेशान थे, अब अपनी कौम के हाथों। इन निरन्तर असफलताओं ने दृढ़व्रती मैजिनी के दिल में यह ख्याल पैदा किया कि शायद जनता की राजनीतिक शिक्षा इस हद तक नहीं हुई, कि वह अपने लिए एक प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था की बुनियाद डाल सके और इसी नियत से वह स्विट्जरलैण्ड जा रहा था कि वहाँ से एक जबर्दस्त कौमी अखबार निकाले, क्योंकि इटली में उसे अपने विचारों को फैलाने की इजाजत न थी। वह रात भर नाम बदलकर रोम में ठहरा। फिर वहाँ से अपनी जन्मभूमि जिनेवा में आया और अपनी नेक माँ की कब्र पर फूल चढ़ाये। इसके बाद स्विटजरलैण्ड की तरफ चला और साल भर तक कुछ विश्वसनीय मित्रों की सहायता से अखबार निकालता रहा। मगर निरन्तर चिन्ता और कष्टों ने उसे बिलकुल कघ्मजोर कर दिया था। सन् 1870 में वह सेहत के ख्याल से इंगलिस्तान आ रहा था कि आल्पस पर्वत की तलहटी में निमोनिया की बीमारी ने उसके जीवन का अन्त कर दिया और वह एक अरमानों से भरा हुआ दिल लिये स्वर्ग को सिधारा। इटली का नाम मरते दम उसकी जबान पर था। यहाँ भी उसके बहुत से समर्थक और हमदर्द शरीक थे। उसका जनाजा बड़ी धूम से निकला। हजारों आदमी साथ थे और एक बड़ी सुहानी खुली हुई जगह पर पानी के एक साफ चश्में के किनारे पर कौम के लिए मर मिटने वाले को सुला दिया गया।

7 मैंजिनी को कब्र में सोये हुए आज तीन दिन गुजर गये। शाम का वक्त था, सूरज की पीली किरणें इस ताजा कब्र पर हसरतभरी आँखों से ताक रही हैं। तभी एक अधेड़ खूबसूरत औरत, सुहाग के जोड़े पहने, लडखड़ाती हुई आयी। यह मैग्डलीन थी। उसका चेहरा शोक में डूबा हुआ था, बिल्कुल मुर्झाया हुआ, कि जैसे अब इस शरीर में जान बाकी नहीं रही। वह इस कब्र के सिरहाने बैठ गयी और अपने सीने पर खुँसे हुए फूल उस पर चढ़ाये, फिर घुटनों के बल बैठकर सच्चे दिल से दुआ करती रही। जब खूब अँधेरा हो गया, बर्फ पड़ने लगी तो वह चुपके से उठी और खामोश सर झुकाये करीब के एक गाँव में जाकर रात बसर की और भोर की बेला अपने मकान की तरफ रवाना हुई।

मैग्डलीन अब अपने घर की मालिक थी। उसकी माँ बहुत जमाना हुआ, मर चुकी थी। उसने मैंजिनी के नाम से एक आश्रम बनवाया और खुद आश्रम की ईसाई लेडियों के लिबास में वहाँ रहने लगी। मैंजिनी का नाम उसके लिए एक निहायत पुरदर्द और दिलकश गीत से कम न था। हमदर्दों और कद्रदानों के लिए उसका घर उनका अपना घर था। मैंजिनी के खत उसकी इंजील और मैंजिनी का नाम उसका ईश्वर था। आस-पास के गरीब लड़कों और मुफलिस बीवियों के लिए यही बरकत से भरा हुआ नाम जीविका का साधन था। मैग्डलीन तीन बरस तक जिन्दा रही और जब मरी तो अपनी आखिरी वसीयत के मुताबिक उसी आश्रम में दफन की गयी। उसका प्रेम मामूली प्रेम न था, एक पवित्र और निष्कलंक भाव था और वह हमको उन प्रेम-रस में डूबी हुई गोपियों की याद दिलाता है जो श्रीकृष्ण के प्रेम वृन्दावन की कुंजों और गलियों में मँडराया करती थीं, जो उससे मिले होने पर भी उससे अलग थीं और जिनके दिलों में प्रेम के सिवा और किसी चीज की जगह न थी। मैंजिनी का आश्रम आज तक कायम है और गरीब और साधु-सन्त अभी तक मैंजिनी का पवित्र नाम लेकर वहाँ हर तरह का सुख पाते हैं।

7

प्रेमचन्दोत्तर युग

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है। सन् '40 से '50 तक की कालावधि के उपन्यास मुख्यत: फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से, सन् '50 से '60 तक के उपन्यास प्रयोगात्मक विशेषताओं से और सन् '60 से अब तक के उपन्यास आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द समाज की स्वीकृत मान्यताओं के भीतर संघर्ष करते रहे। किन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद पश्चिम के पुराने मूल्यों का तेजी के साथ विघटन हुआ। फ्रायड ने काम-सम्बन्धी मान्यताओं को नैतिकता-अनैतिकता से परे बताकर सामाजिक नैतिकता के आगे प्रश्नचि" लगा दिया। पूंजीवादी समाज में व्यक्ति-चेतना उभर कर सामने आई। मार्क्स ने समष्टि चेतना पर विशेष बल दिया। हिन्दी उपन्यास इन विचारधाराओं से प्रभावित हुए बिना न रहा। फलस्वरूप सन् '50 के बाद उपन्यासकारों का ध्यान व्यक्ति और समाज की मुक्ति की ओर गया। किन्तु स्वतंत्रता के बीस वर्षों बाद भी मानव जीवन में एक विशेष प्रकार की कुण्ठा, निराशा, त्रास, अर्थहीनता आदि की अनुभूति होने के कारण सन् '60 के बाद के उपन्यासों में इन्हीं मनोदशाओं का चित्रण किया गया। प्रेमचन्द-युग में ही जैनेन्द्र ने फ्रायड से प्रभावित होकर मानव-चरित्र के स्थान पर व्यक्ति-चरित्र की सृष्टि की थी। किन्तु सन् '51 में अज्ञेय के 'शेखर: एक जीवनी' के प्रकाशन के साथ ही हम उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ पाते हैं। अज्ञेय के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं।: 'शेखर: एक जीवनी' (दो भाग),

'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी'। पहले दो उपन्यासों में व्यक्तिपात्रों के मनो विश्लेषण की प्रवृत्ति है। तीसरी रचना में कोई सम्बद्ध कथानक नहीं है। अज्ञेय ने उपन्यास को पात्र-प्रधान बनाया और सामाजिक मानव के स्थान पर व्यक्ति-मानव के अन्तर्मन का विश्लेषण करने का यत्न किया।

इलाचन्द्र जोशी को उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा 'संन्यासी' (1914) उपन्यास-प्रकाशन के द्वारा मिली। इस उपन्यासो में ही पहली बार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की विकृति देखी जा सकती है। 'संयासी' के अतिरिक्त 'पर्दे की रानी' (1941), 'प्रेत और छाया' 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ' (1950) 'सुबह के भूले' (1957), 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी' (1955) और 'ऋतुचक्र' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों की विकास-यात्रा में 'मुक्तिपथ' एक नए मोड़ की सूचना देता है। 'मुक्तिपथ' के पूर्ववर्ती उपन्यास ग्रन्थियों के विश्लेषण पर आधारित है। उनकी भाव-भूमियाँ एकांगी, संकुचित और छोटी हैं। 'मुक्तिपथ' तथा उसके बाद जो उपन्यास लिखे गये, उनमें परिदृश्य का विस्तार और सामाजिकता का समावेश दिखाई पड़ता है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा, ईमानदारी और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपालने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व बना लिया। ऐतिहासिक दृष्टि से यशपाल को प्रेमचन्द उपन्यास-परम्परा की अगली कड़ी के रूप में माना जा सकता है। यशपाल का प्रारम्भिक जीवन क्रांतिकारी दल से सम्बद्ध था। वे इसके सक्रिय सदस्य थे, इसके लिए उन्हें चौदह वर्ष का कारावास भी मिला। कारावास काल में उनका सारा समय अध्ययन-मनन में व्यतीत हुआ। इसी समय मार्क्सवादी विचारधारा का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। साहित्य के क्षेत्र में उतरने पर उन्होंने इसी विचारधारा को आगे बढ़ाया। उनके उपन्यास हैं। 'अमिता', 'दिव्या', 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'पार्टी कामरेड' (1946), 'मनुष्य के रूप में' (1949), 'झूठा सच': प्रथम भाग, 'वतन और देश' (1958), दूसरा भाग 'देश का भविष्य' (1960)।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' यशपाल की परम्परा में आते हैं। चढ़ती धूप, नई इमारत, उल्का और मरुप्रदीप उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। पर इनमें द्वन्द्वात्मक चेतना पूरे तौर पर नहीं उभरती। भगवतीचरण वर्मा प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं। सन् '50 तक यह परम्परा चलती रही प्रेम चन्द ने अपने साहित्य में समसामयिक समस्याओं को चित्रित किया और वर्मा जी परिवर्तमान ऐतिहासिक धारा को मध्यमवर्ग के माध्यम से अंकित करते रहे हैं। मुख्यत:

'40 के बाद लिखे गये उपन्यासों में। इनमें टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाव' 'भूले-बिसरे-चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गुसाईं', मुख्य हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क को प्रेमचन्द-परम्परा का उपन्यासकार कहा जाता है। पर वे समग्र रूप से प्रेमचन्दीय परम्परा से नहीं जुड़ पाते। जहाँ तक मध्यवर्गीय परिवारों और व्यक्तियों की परिस्थितियों, समस्याओं और परिवेश का सम्बन्ध है, वहाँ तक वे प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं प्रेमचन्द की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी, इसलिए प्रामाणिक भी। प्रेमचन्द के वैविध्य और जीवन-चेतना का इनमें अभाव है। 'सितारों के खेल' के बाद इनके कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। गिरती दीवारें, 'गर्म राख' 'बड़ी-बड़ी आँखे', पत्थर अल पत्थर', 'शहर में घूमता आइना' और 'एक नन्हीं किन्दील'। 'गिरती दीवारें' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। गर्म राख, बड़ी-बड़ी आँखे, पत्थर अल पत्थर सुगठित उपन्यासों की श्रेणी में रखे जायेंगे। अन्तिम दोनों उपन्यास 'गिरती दीवारें' का विस्तार हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के आवर्त में पड़ा व्यक्ति कभी अपने को उनके अनुरूप ढालता है कभी उनसे आहत होता है, कभी छोटे-मोटे सुधारों के द्वारा समाज का परिष्कार करता है। वहाँ समाज प्रधान है, व्यक्ति गौण। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने व्यक्ति की सनकों, अन्तर्द्वंद्वों को समाज से अधिक महत्व दिया है।

अमृतलाल नागरके उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक सम्बन्धों को चित्रित किया गया है। 'नवाबी मसनद', 'सेठ बाँकेमल', 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' उनके प्रकाशित उपन्यास हैं। अपने विस्तार और गहराई के कारण 'बूंद और समुद्र' विशेष महत्वपूर्ण बन पड़ा है।

'50 के बाद के दशक को आंचलिक उपन्यासों का दशक मान लिया जाता है। वस्तुतः इस समय के उपन्यासों वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनों हैं। वैयक्तिक इसलिए कि वह पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्त होकर खुले वातावरण में सांस लेना चाहता है, सामाजिक इसलिए कि अभी समाज को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने में लम्बी मंजिल तय करनी थी। देश के विभाजन के कारण जो नई समस्याएं उत्पन्न हुई, उन्हें भी औपन्यासिक रूप दिया गया। प्रवृत्तिक दृष्टि से इस दशक के उपन्यासों को तीन प्रवृत्तियों में बांटा जा सकता है। ग्रामांचल के उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास और प्रयोगशील उपन्यास।

ग्रामांचल को ही समग्रता से चित्रित करने वाले उपन्यासों को ही आंचलिक कहकर आंचलिकता के अर्थ को सीमित कर दिया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' के प्रकाशन के पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952) प्रकाशित हो चुका था। पर इसे आंचलिक नहीं कहा गया। यद्यपि इसमें आंचलिकता का कम रंग नहीं है। नागार्जुन के उपन्यासों में दरभंगा-पूर्णिया जिले का राजनीतिक-सांस्कृतिक साक्षात्कार होता है। इनका मार्क्सवादी दृष्टिकोण गाँव की कहानी पर आरोपित प्रतीत होता है। कथानक स्वयं विकसित न होकर पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार चलता है। इसके फलस्वरूप उपन्यासों की सर्जनात्मकता शिथिल और अवरुद्ध हो जाती है। 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दु:खमोचन', 'वरुण के बेटे' आदि उनके प्रकाशित उपन्यास हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों को ही सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी गयी क्योंकि स्वयं रेणु ने ही 'मैला आंचल' को आंचलिक उपन्यास कहा। 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद 'परती परिकथा' प्रकाशित हुआ।

उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरे और मनुष्य' (1955) में बम्बई के पश्चिमी तट पर बसे हुए बरसोवा गांव के मछुओं की जीवन-गाथा वर्णित है। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' में जरायमपेशा नटों की जिन्दगी को उजागर किया गया है। नट-जीवन और आधुनिक जीवन की असंगतियों को चित्रित करते हुए लेखक ने उज्ज्वल भविष्य का संकेत किया है कि शोषण की घुटन सदैव नहीं रहेगी। भैरवप्रसाद गुप्त का 'सत्ती मैया का चौरा' मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखा गया ग्रामांचल का ही उपन्यास है।

सातवें दशक में भी ग्रामांचल को आधार बना कर राही मासूम रजा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र आदि ने उपन्यास लिखे। राही का 'आधा गांव' शिया मुसलमानों की जिन्दगी पर लिखा गया है और शिवप्रसाद सिंह की 'अलग-अलग वैतरणी' में आधुनिकता-बोध को सन्निविष्ट करने का प्रयास किया गया है। किन्तु इनके मूल स्वर त्रासद (ट्रेजिक) हैं। रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' तथा 'सूखता हुआ तालाब' और देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये' ग्रामांचलीय उपन्यास हैं। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' पारंपरिक अर्थ में उपन्यास नहीं हैं। यद्यपि इसकी कथा ग्रामांचल से सम्बद्ध है। फिर भी यह आंचलिक नहीं है। रिपोर्ताज शैली में लिखे गये इस उपन्यास में स्वतंत्र देश की नवीन व्यवस्थाओं का मखौल उड़ाया गया है।

छठे दशक में देवराज मुख्यत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार की श्रेणी में आते हैं। धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास है, यद्यपि वह पांचवे दशक में प्रकाशित हुआ। भारती और देवराज दोनों के उपन्यासों का वातावरण महाविद्यालयीय है। 'गुनाहों का देवता' अपनी कैशोर्य भावुकता तथा रूमानियत के कारण काफी लोकप्रिय हुआ। 'पथ को खोज', 'बाहर भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी' और 'मैं, वे और आप' देवराज के उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों की मूलवर्तिनी धारा है। विवाह के बाहर का प्रेम।

मन्मथनाथ गुप्त, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र यादव आदि नवीन सामाजिक चेतना के उपन्यासकार हैं। भैरवप्रसाद गुप्त के 'मशाल', 'गंगा मैया', 'सती मैया का चौरा', अमृतराय के 'बीज', 'नागफनी का देश', 'हाथी के दांत' संघर्ष और प्रगति के मिथक के सूचक हैं। लक्ष्मीनारायण लाल के 'धरती की आँखें', काले फूलों का पौधा', रूपाजीवा' में उपर्युक्त स्तर की सामाजिक चेतना को उभारने की कोशिश है। 'काले फूलों का पौधा' चरित्र-चित्रण, संस्कृति-संघर्ष और नव्यतर तकनीक के कारण विशिष्ट बन पड़ा है।

'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग' और 'एक इंच मुस्कान' राजेन्द्र यादव के उपन्यास हैं। 'एक इंच मुस्कान' यादव और मन्नू भंडारी का सहयोगी लेखन है। इसमें खंडित व्यक्तित्त्व वाले आधुनिक व्यक्तियों की प्रेम-त्रासदी (ट्रेजिडी) है। आधुनिक जीवन की इस त्रासदी को अंकित करने के कारण यह उपन्यास यादव के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कहीं अधिक समकालीन और महत्वपूर्ण है।

कविता में नए प्रयोगों के साथ-साथ कहानी-उपन्यास आदि में भी नये प्रयोग हुए हैं। अब कहानी का तत्त्व क्षीण हो गया है, कथानक का पुराना रूप विघटित होकर नया हो गया है। अब जिन्दगी पूरे तौर पर विश्लेषित न होकर चेतना प्रवाह, स्वप्न सृष्टि के साथ जुड़ गई है, प्रतीक, कालांतर आदि के द्वारा उपन्यासों में नए शिल्प के दर्शन हुए हैं। इस प्रयोग-संपर्क में प्रभाकर माचवे के परन्तु', 'साँचा' और आभा', भारती का 'सूरज का सांतवा घोड़ा', गिरधर गोपाल का 'चाँदनी रात के खंडहर', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' आदि अनेक प्रकार की विसंगतियों से भरे हुए प्रयोगशील उपन्यास हैं। उद्योगीकरण, महानगरीय सभ्यता, बदले हुए मानसिक

परिवेश और भ्रष्ट व्यवस्था के कारण आज व्यक्ति यांत्रिक, अजनबी, अकेला या विद्रोही हो गया है। इसकी अभिव्यक्ति मुख्यत: साठोत्तरी साहित्य में होती है, भले ही उपन्यास, नाटक की अपेक्षा इसका तेवर कविता और कहानी में ही अधिक तेजस्वितापूर्ण दिखाई देता है। इस प्रकार के उपन्यासों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

(1) यौन विकृतियों में पनाह खोजने वाले उपन्यास: मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अन्तराल', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स' राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' और 'शहर था शहर नहीं था', श्री कान्त वर्मा का 'दूसरी बार', ममता कालिया का 'बेघर', गिरिराज किशोर का 'यात्राएं' मणिमधुकर का 'सफेद मेमने', कृष्णा सोबती का' सूरजमुखी अंधेरे के' आदि उपन्यास इसी कोटि के हैं। इन उपन्यासों के प्राय: सभी नायक मानसिक दृष्टि से अनिर्णयात्मक, आत्म-निर्वासित और नपुंसक हैं। वे मुक्त होने की प्रक्रिया में ऐसी उलझन में फंस जाते हैं, जहां से उन्हें निष्कृति नहीं मिलती। इन उपन्यासों से आधुनिकता का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें स्त्री-शरीर 'नशे' या 'ड्रग' का काम करता है। राकेश को छोड़कर शेष उपन्यासों में प्रामाणिकता की भी कमी है।

(2) दी हुई मानवीय स्थितियों में बेमेल व्यक्तियों को चित्रित करने वाले उपन्यास–इस श्रेणी में उषा प्रियंवदा का 'रुकोगी नहीं राधिका'और मन्नू भंडारी के 'आय बंटी'की गणना की जाएगी। इन उपन्यासों की आधारभूमियां ठोस और प्रामाणिक हैं।

(3) व्यवस्था की घुटन को अपनी नियति मानने या उसके विरुद्ध युद्ध करने वाले उपन्यास–नरेश मेहता का 'वह पथ बन्धु था', गोविन्द मिश्र का वह 'अपना चेहरा', बदीउज्जमा का 'एक चूहे की मौत', काशीनाथ सिंहका 'अपना मोर्चा,नरेन्द्र कोहली का 'आश्रितों का विद्रोह' आदि उपन्यास इस कोटि के अन्तर्गत आते हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने भी कई प्रयोगशील और प्रतिबद्ध उपन्यास लिखे हैं।

इनके अतिरिक्त गिरिराज किशोर का 'जुगलबन्दी' और 'ढाई आखिर', लेख बख्शी का 'वैशाखियों वाली इमारत', देवराज उपाध्याय का 'दूसरा सूत्र' और 'अजय की डायरी' कमलेश्वर का 'डाक बंगाला' और 'काली आंधी' और मन्नू भंडारी का 'महाभोज' श्री लाल शुक्ल का 'मकान' शिवप्रसाद सिंह

का 'नीला चाँद' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। रमेश चौधरी आरिगमूडि, ओंकार शरद, मार्कण्डेय, मुद्राराक्षस, आनन्द प्रकाश चौबे, श्रीलाल शुक्ल, मोहन सिंह सेंगर, सत्येन्द्र गुप्त, राजेन्द्र अवस्थी, हंसराज रहबर, रामदरश मिश्र, मनहर चौहान, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, शिवानी आदि उपन्यास के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे हैं। यूरोप के पुराने और नये उपन्यासों के अनुवाद का कार्य भी हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास का युग प्रयोग का युग रहा। जीवन-मरण सम्बन्धी पुराने सभी मत मतान्तरों को चुनौती दी गई है। महानगरीय अकेलापन, अत्यधिक निकटता में अजनबी पन, विसंगति, संत्रास यांत्रिक तटस्थता आदि का चित्रण किया गया है। बाह्य यथार्थ की अपेक्षा आन्तरिक यथार्थ को अधिक महत्ता दी गई है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ लाल', लक्ष्मी नारायण लाल का 'हरा समन्दर गोपी चन्दर' जैसे आधुनिक उपन्यासों में कथा का ह्रास हुआ है कथानक का नहीं। उपन्यासों में पीढ़ियों का वैचारिक मतभेद, पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बाप के सम्बन्ध में दोहरा व्यक्तित्त्व, अन्त:बाह्य संघर्ष, मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष, कृषकों का जागरूक होना पुलिस की धांधलियाँ, महाजनों के धन शोषण के तरीके महानगर, कस्बे और गांवों के परिवर्तन को समग्रता में रेखांकित किया गया है। उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली, आत्म कथात्मक शैली, संकेत शैली, प्रतीक शैली द्वारा मानवीय संवेदना को उभारा गया है। विषय और शैली दोनों दृष्टियों से आज के उपन्यास समृद्ध दिखाई देते हैं।

❐❐❐